विष्णु प्रभाकर के नाटकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

VISHNU PRABHAKAR KE NATAKOM KA VISLESHANATMAK ADHYAYAN

THESIS SUBMITTED TO
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
FOR THE DEGREE OF

DOCTOR OF PHILOSOPHY

by
GEETHA. K.A.

Supervising Teacher
Dr. P.A. SHEMIM ALIYAR
Professor, Department of Hindi

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI – 682 022
2000

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **'VISHNU PRABHAKAR KE NATAKOM KA VISLESHANATMAK ADHYAYAN'** is a bona-fide record of work carried out by **Miss. GEETHA.K.A.** for the Degree of **DOCTOR OF PHILOSOPHY** in the Department of Hindi under my supervision and guidance. No part of this thesis has hitherto been submitted for a degree in any University.

DR.P.A. SHEMIM ALIYAR

Department of Hindi,

Cochin University of Science and Technology,

Kochi-682 022.

ACKNOWLEDGEMENT

This research work was carried out in the Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, Kochi-682 022. I sincerely express my gratitude to the Cochin University of Science and Technology for all help and encouragement given to me.

GEETHA.K.A.

Department of Hindi,

Cochin University of Science and Technology,

Kochi-682 022.

Date:21-10-2000

पुरोवाक्

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य साहित्य को अपने सघम सृजन द्वारा समृद्ध बनाने में श्री विष्णु प्रभाकर की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हिन्दी के प्रमुख नाटककारों की श्रेणी में आज उनका भी महत्वपूर्ण स्थान है। साहित्यकार के रूप में वे युग के श्रेष्ठ विचारक,चिन्तक एवं समाज-सुधारक माने जा सकते हैं। आज 88 वर्ष की आयु में भी वे बडी स्फूर्ति के साथ लेखन कार्य में लगे रहते हैं।

मैं ने शोध कार्य के लिए विष्णु प्रभाकर के नाट्य साहित्य को चुना। मैंने उनके नाटक 'डाक्टर' पर एम. फिल का शोध प्रबन्ध तैयार किया। जब मुझे पी. एच.डी केलिए शोध करने का मौका मिला तो मैंने उनके संपूर्ण नाटकों का विश्लेषण करने का विचार किया और विषय रखा- "विष्णु प्रभाकर के नाटकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन।" जहाँ तक मुझे ज्ञात है उनके नाटकों पर कम आलोचनात्मक ग्रन्थ ही लिखे गये है। महीप सिंह द्वारा रचित 'विष्णु प्रभाकर व्यक्ति और साहित्य', डा० राजलक्ष्मी नायडू का 'विष्णु प्रभाकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व' और डा० विश्वनाथ मिश्र एवं डा० कृष्णचन्द्र गुप्त द्वारा संपादित 'विष्णु प्रभाकर' आदि पुस्तकों में भी उनके नाटकों का विश्लेषण बहुत क्षीण मात्रा में ही उपलब्ध है। मैं ने उनके नाटकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करके इस कमी को पूरा करने का बखूब प्रयास किया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है।

पहले अध्याय में विष्णु प्रभाकर का जीवन परिचय देते हुए उनके 'व्यक्ति एवं रचना संसार' के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला गया है।

दूसरे अध्याय 'ऐतिहासिक व पौराणिक नाटकों में अभिव्यक्त समसामयिकता' है। इसमें अतीत के पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त समकालीन समस्याओं का विश्लेषण किया गया है।

तीसरा अध्याय उनके नाटकों में अभिव्यंजित 'नारी चेतना' पर आधारित है।

चौथा अध्याय उनके नाट्य साहित्य में अभिव्यक्त 'मूल्य चेतना' का विश्लेषण है।

पाँचवें अध्याय में उनके नाटकों का शिल्पगत अध्ययन किया गया है। इसमें नाटकीय तत्वों के आधार पर उनके नाटकों का विवेचन-विश्लेषण किया गया है।

उपसंहार में हिन्दी नाट्य साहित्य में उनकी देन का मूल्यांकन किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध हिन्दी विभाग के प्रो०. डा०. पी.ए. शमीम अलियारजी के कुशल निर्देशन में संपन्न हुआ है। उनके प्रति मेरी भावना को शब्दबद्ध करना मेरे बस की बात नहीं। आशा है वे मेरी यह विवशता समझ पायेगी। विषय-विशेषज्ञ डा० एम. षण्मुखन्जी से, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध तैयार करने की दिशा एवं दृष्टि मुझे मिली है। अस्तु मैं उनका एहसानमंद हूँ। अन्य गुरुजनों, लाईब्रेरी के कर्मचारी, अपने मित्र, परिवारवालों का आभारी हूँ जिन्होंने मेरी सहायता की है, प्रेरणा प्रदान की है।

शोध प्रबन्ध तैयार करने के सिलसिले में 01-09-1999 को विष्णु

प्रभाकर से मेरा साक्षात्कार हुआ। इस साक्षात्कार से मैं लाभान्वित हूँ। उनवे लिए मैं सदैव आभारी हूँ।

इस शोध प्रबन्ध के साथ मैं ने पूरी वफादारी निभाई है- ऐसा मेरा विश्वास है। फिर भी कोई त्रुटि आई है तो क्षमाप्रार्थी हूँ।

गीता .के.ए

हिन्दी विभाग

कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय

कोचिन -22

दिनांक :21-10-2000

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

पहला अध्याय 1 - 23

विष्णु प्रभाकर व्यक्ति एवं रचना संसार

जन्म-बचपन-शिक्षा-नौकरी-विवाह-व्यक्तित्व-वेश-भूषा-स्वभाव-
दिनचर्या-अभिरुचि-भोजन-रचना संसार-उपन्यासकार विष्णु-
प्रभाकर-निशिकान्त-तट के बन्धन-स्वप्नमयी-दर्पण का व्यक्ति-
कोई तो-कहानीकार विष्णु प्रभाकर-रहमान का बेटा-जिन्दगी
एक थपेडे-संघर्ष के बाद-धरती अब भी घूम रही है- सफर के
साथी-खण्डित पूजा-मेरी तैंतीस कहानियाँ-मेरी प्रिय कहानियाँ-
पुल टूटने से पहले-जीवन पराग-बाल साहित्यकार विष्णु प्रभाकर-
घमण्ड का फल-जादू की गाय-अभिनय एकांकी-यात्रा साहित्यकार
विष्णु प्रभाकर-ज्योतिपुंज हिमालय-हँसते निर्झर दहकती भट्टी-
जीवनीकार विष्णु प्रभाकर-आवारा मसीहा-संस्मरण साहित्यकार
विष्णु प्रभाकर-निबंन्धकार विष्णु प्रभाकर-एकांकीकार विष्णु प्रभाकर-
सामाजिक समस्या प्रधान एकांकी-राजनैतिक एवं नवनिर्माण से
संबन्धित एकांकी-मनोवैज्ञानिक एकांकी-हास्य-व्यंग्य एकांकी-पौराणिक-
ऐतिहासिक एकांकी-रेडियों एकांकी-नाटककार विष्णु प्रभाकर-डाक्टर-
टगर-बन्दिनी-सत्ता के आर-पार-गान्धार की भिक्षुणी-नव-प्रभात-केरल
का क्रान्तिकारी-टूटते पिरवेश-युगे-युगे क्रान्ति-श्वेत कमल-अब और नहीं-

पृष्ठ संख्या

कुहासा और किरण।

दूसरा अध्याय 24 - 57

ऐतिहासिक व पौराणिक नाटकों में अभिव्यक्त समसामयिकता

रणक्षेत्र की रक्त-रंजित मिट्टी से अंकुरित मानवता की

पौधः-'नव प्रभात' - राजधर्म और मानव धर्म की आपसी

टकराहटः-'सत्ता के आर -पार'- राज सत्ता को चुनौती

देनेवाली जनशक्ति :-'गान्धार की भिक्षुणी' - अमानवीयता से

जूझनेवाला एक फक्कड व्यक्तित्वः- केरल का क्रान्तिकारी।

तीसरा अध्याय 58 -90

विष्णु प्रभाकर के नाटकों में अभिव्यक्त नारी चेतना

अपनी व्यक्ति इयत्ता को बनाये रखने की नारी की

कोशिशः- 'डाक्टर' - चोट खाये नारी मन का

फूत्कारः- 'टगर' - धर्मान्धता की शिकार बननेवाली

नारीः- 'बन्दिनी'- पुरुष की अधिनायकवादी वृत्ति को

चुनौती देनेवाली नारीः- 'अब और नहीं' - नारी की

व्यक्ति चेतना का एक ईमानदार रूपः- 'श्वेतकमल'।

चौथा अध्याय 91 115

विष्णु प्रभाकर के नाटकों की मूल्य चेतना

मानवतावाद की गूँज- राष्ट्रीयता का प्रसार-

पृष्ठ संख्या

राजनैतिक माहौल का मूल्य पतन-नये-पुराने मूल्यों की-
टकराहट-अर्थ की होड में मूल्यों का नकार।

पाँचवाँ अध्याय 116 - 216

नाटकों का शिल्पगत अध्ययन

चरित्र-चित्रण-कथोपकथन-देशकाल एवं-वातावरण-भाषा-रंगमंच।

उपसंहार 217 - 223

संदर्भ ग्रन्थ सूची I - X

पहला अध्याय

विष्णु प्रभाकर व्यक्ति एवं रचना संसार

विष्णु प्रभाकर - व्यक्ति एवं रचना संसार

आधुनिक हिन्दी के बहुचर्चित साहित्य सेवियों में अग्रणी है बहुमुखी प्रतिभाधनी श्री विष्णु प्रभाकर । कहानी, नाटक, जीवनी, संस्मरण, निबन्ध, यात्रा-विवरण आदि विविध साहित्यिक विधाओं पर वे लेखन कार्य करते रहे हैं । हिन्दी के जीवनी साहित्य की एक अभूतपूर्व सृष्टि 'आवारा मसीहा ' के रचनाकार के रूप में विष्णु प्रभाकर की याद हिन्दी साहित्य जगत सदैव करता रहेगा। हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में उनका योगदान नितान्त सराहनीय है।

जन्म :-

विष्णु प्रभाकर का जन्म उत्तर प्रदेश में मुज़फ्फ़रनगर जिले के एक छोटे से कस्बे मीरापूर में 21 जून 1912 को हुआ। जीवन के बारह वर्ष उन्होंने यहीं बिताये। उनके पिता श्री दुर्गाप्रसाद और माता महादेवी हैं। उनके पाँच भाई भी हैं।

बचपन :-

12 वर्ष की आयु तक विष्णु प्रभाकर बहुत लाड-प्यार में पले। इसके बाद जब वे मामाजी के पास शिक्षा प्राप्त करने के लिए पंजाब चले गये तो परिस्थिति एकदम बदल गई। परिवार के और विशेषकर माँ के प्रेम से वे वंचित हो गये। कुछ बातें ऐसी हुई जिनके कारण उनके बाल मन पर गहरी चोट लगी। कभी-कभी अत्यन्त कटु परिस्थिति के कारण उनका स्वभाव और भी जटिल हो गया। इसी एहसास में जाने-अनजाने अवस्था से पूर्व बडे होने की भावना का जन्म हुआ। बहुत छोटी अवस्था में संघर्ष का अनुभव होने के कारण परिपक्वावस्था

शीघ्र ही आ गई। लिखने-पढने का कार्य भी इसी समय से उन्होंने जारी रखा। इस संबन्ध में उन्होंने लिखा है कि - *"मेरी पढने की रुचि के पीछे मेरे मामाजी की प्रेरणा रहती थी। वे मेरी भावनाओं का ख्याल करते थे। पर माँ नहीं बन सकते थे; कोई बन भी नहीं सकता था।"*[1]

शिक्षा : -

उन्होंने सोलह वर्ष की आयु में हिसार के चन्दूलाल एंग्लो वैदिव स्कूल से सन् 1929 ई. में मैट्रिक पास किया। उसके बाद छोटी-मोटी नौकरी करते हुए पंजाब विश्वविद्यालय से हिन्दी भूषण,प्राज्ञ, हिन्दी प्रभाकर तथा बी.ए.की परीक्षाएँ पास की।

नौकरी : -

पारिवारिक विडंबनाओं के कारण वे अपनी शिक्षा पूर्ति के लिए छोटी-मोटी नौकरी करते रहे। स्वतंत्रता संग्राम में उन्होंने भाग लिया था। राजनैतिक गतिविधियों से जुडे रहने के कारण उनको गिरफ्तार किया गया है। किसी भी नौकरी में वे स्थाई रूप से न जुड सके। उन्होंने कई नौकरियाँ स्वीकार की और कुछ समय बाद उसे छोड दी। इस सिलसिले में वे आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र पर निदेशक के रूप में कार्य करते रहे। फिर वहाँ से त्यागपत्र लेने के बाद बंबई के 'हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्रकाशन संस्था' के मालिक नाथुराम प्रेमी ने उनको शरत् चन्द्र चट्टोपाध्याय की जीवनी लिखने के लिए प्रेरित किया। फिर सन् 1968 से लेकर सन् 1973 तक इसी कार्य में वे अधिकतर व्यस्त रहे।

---

1. 'विष्णु प्रभाकर - व्यक्तित्व एवं कृतित्व' - डा०.राजलक्ष्मी नायडू - पृ. सं 21

इस तरह आरंभ से वे स्वतंत्र लेखन की ओर अग्रसर होते रहे।

विवाह : -

26 वर्ष की आयु में उनका विवाह हरिद्वार की सुश्री सुशीला से हुआ। उनके चार बच्चे हुए-अनीता,अतुल,अमीत और अर्चना। वे सब सुशिक्षित, विवाहित एवं कार्यरत भी हैं।

व्यक्ति :-

विष्णु प्रभाकर मूलतः गान्धीवादी तथा आदर्शवादी है। नैतिक मूल्यों को पहचानने में वे गान्धीवाद से सहायता लेते है। उनकी निजी दृष्टि जरूर आदर्श पर टिकी हुई है। आदर्श और यथार्थ दोनें का अपूर्व समन्वय उनकी विशेषता है। इसी विशिष्टता के कारण उनका व्यक्तित्व सबसे पृथक् है। 'मानव' उनका लक्ष्य है। इसके संबन्ध में स्वयं उनका कहना है कि -" *मनुष्य जो कुछ दिखाई देता है, केवल वही नहीं है, इसके अतिरिक्त वह कुछ और भी है, बल्कि वह और कुछ ही अधिक है। आदर्श और यथार्थ का समन्वय मुझे प्रिय है। मानवता मेरा लक्ष्य है।*"[1] वे मानवतावादी आदर्श के बिना जीवित नहीं रह सकते और यथार्थ के बिना चल नहीं सकते। मानवतावादी विष्णु प्रभाकर अपनी कला के प्रति ईमानदार होने के कारण सदा प्रयत्नशील रहे है।

वेश - भूषा : -

आज भी वे खादी की नुकीली टोपी,खादी का ही पायजामा,कुर्ता और जवाहर-जैकेट पहनते हैं। खादी पहनने में उनका विश्वास अटूट है। बचपन से

---

1. 'विष्णु प्रभाकर' -सं -डा० विश्वनाथ मिश्र, डा० कृष्णचन्द्र गुप्त-पृ.सं - 264

उनके मन में खादी संबन्धित जो विचार छा गये उन विचारों को वे बडे होने पर भी नहीं छोड सके। वेश-भूषा से वे साहित्यकार कम नेता अधिक लगते हैं।

स्वभाव :-

विष्णु प्रभाकर स्वभाव से अत्यन्त सज्जन और शान्त है। गंभीरता उनके स्वभाव का एक विशेष गुण है। एकान्तता उनको अधिक प्रिय है। स्वाभिमानी विष्णु प्रभाकर स्वतंत्र साहित्यकार के रूप में जीवन बितानेवाले इने-गिने लोगों में से एक है। विष्णु प्रभाकर का कहना है कि - *"परिवेश से प्रभावित होकर भी मेरे सृजन का मूल स्वर मनुष्य की पहचान और हर प्रकार के शोषण से मुक्ति है। मैं ने चौथक दशक से लिखना शुरू किया था। जानबूझकर कोई प्रयत्न नहीं किया, पर जिस परिप्रेक्ष्य में पला-पनपा वह मुझे आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की ओर ले जा सकता था। लेकिन मैं किसी दल या सिद्धान्त का पक्षधर नहीं बन सका। स्वाधीनता से पूर्व प्रगतिवाद में अवश्य जुडा था पर मार्क्सवादी बनकर नहीं । मैं तो यह मानता हूँ कि साहित्यकार स्वभाव से ही प्रगतिशील होता है। वह मूल्यों को परखता है और उनके सामने प्रश्नचिह्न लगाता है। यह उसकी नियति है। चूँकि वह संवेदनशील है और यह निरन्तर प्रवाहमान प्रक्रिया है। इसलिए वह किसी भी व्यवस्था का प्रचारमंत्री नहीं बन सकता ।"*[1]

दिनचर्या :-

नित्य सबेरे पाँच बजे से पूर्व वे उठ जाते हैं। प्रातः भ्रमण के लिए घर से बाहर निकल पडते हैं और सात बजे से पूर्व ही लौटकर अपने काम में लग जाते

---

1. 'क्या खोया क्या पाया' - विष्णु प्रभाकर - पृ. सं -23 - 24

हैं। इसी समय पढने -लिखने का सभी काम करते है। चिट्ठियों का उत्तर देने में आज भी विष्णु प्रभाकर सजग हैं। डेढ बजे के बाद उठते है। सुबह से लेकर दोपहर तक अपने घर में वे एक सृजनरत साहित्यकार, उत्तरदायी पिता, विनीत अनुज तथा अतिथि सत्कारशील गृहस्वामी आदि कई भूमिकाओं का एक साथ कुशलतापूर्वक निर्वाह करने के बाद दोपहर को 'सस्ता साहित्य मण्डल 'में संपादक का चोला पहनकर शाम तक मण्डल-कार्यालय में काम करते है। इसके बाद कॉफी-हाउस में नये-पुराने साहित्यकारों के बीच जमकर घण्टों चर्चा करते है और सात या आठ बजे लौट आते हैं।

अभिरुचि :-

उनको कई प्रकार की अभिरुचियाँ हैं जैसे-पढने की, लिखने की, घूमने की तथा यात्रा करने की। पैदल विश्व-भ्रमण करना उनकी बडी इच्छा है। लेकिन हिमालय के दुर्गम भागों पर लगभग हजार मील पैदल यात्रा करने के अतिरिक्त या राजस्थान में हल्दी घाटी और चित्तौड के आसपास पद-यात्रा करने के अतिरिक्त और कहीं पैदल जाने का अवसर नही मिला। तीन बार विदेश भी गये है। परन्तु उनका मन अभी भी भरा नहीं है। कुछ वर्ष पूर्व तक डाक-टिकटों और सिक्के इकट्ठे करने का शौक था।

भोजन :-

श्री विष्णु प्रभाकर वैष्णव है। वे अत्यन्त सात्विक भोजन और वह भी अल्प मात्रा में करते हैं। भोजन में उनको खीर आधिक पसंद है। पिछले कई वर्षों से दिन में एक ही बार वे भोजन करते रहे है। अपने स्वास्थ्य की रक्षा के लिए वे

भोजन पर नियन्त्रण रखते हैं।

व्यक्ति अथवा साहित्यकार विष्णु प्रभाकर में कोई अन्तर्विरोध नही है। उनमें साहित्यकार की वह स्वतंत्र अस्मिता मूर्त है जो उन्हें आज के समझौतावादी माहौल से अलग करती है तथा उन्हें और उनकी रचना दोनों को संघर्षशील बनाये रखती है। जीवन से जुडी यह संघर्षशीलता ही उन्हें लंबे लेखनकाल के बावजूद भी अपने समय के समकालीन बांध से जोड रखती है। उनके अनुसार- *"साहित्य मानव आत्मा की बन्धनहीन अभिव्यक्ति है; बन्धन अगर है तो वह अपने विश्वास का आन्तरिक बन्धन है। वह बाहर से आरोपित नहीं किया जा सकता। व्यक्ति की संवेदना जब मानव की संवेदना में रूपायित होती है तभी कोई रचना साहित्य की संज्ञा पाती है। साहित्य भाषा के माध्यम से संप्रेषित होता है। भाषा व्यक्ति को समाज से जोडती है, उसे सामाजिक बनाती है; पर साहित्य मात्र समाज का दर्पण नहीं है वह समाज को समझने पहचानने की दृष्टि है।"*[1]

रचना संसार :-

श्री विष्णु प्रभाकर में साहित्य के प्रति अनुराग बचपन से ही रहा है। शिक्षा प्राप्त करते-करते उन्होंने साहित्य क्षेत्र में पदार्पण किया। आठवीं कक्षा में पढते ही उन्होंने लेखन कार्य का शुभारंभ किया।उन्होंने सन् 1926 ई.से 'बालसखा' में पत्र लिखे। उसके बाद सन् 1934 ई. से उनके लेखन कार्य नियमित रूप से निरन्तर चलता है। साहित्य के क्षेत्र में आने का महत्वपूर्ण कारण उनका परिवेश रहा है। अपने परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण उन्हें छोटी आयु

1.'क्या खोया क्या पाया' - विष्णु प्रभाकर -पृ. सं - 24

में ही नौकरी करनी पडी। उन दिनों वे चाहकर भी शिक्षा प्राप्त नही कर सके। ऐसी स्थिति में उनके अन्दर का संघर्ष प्रतिदिन बढता गया। परिणामस्वरूप कलम का सहारा लेना उनके लिए अनिवार्य हो गया। बचपन से ही उन्हें पढने का शौक था। उन्होंने 'चन्द्रकान्ता संतति' से लेकर प्रेमचन्द, प्रसाद, बंकिम, रवीन्द्र, शरत्, सभी को पढा किन्तु शरत् ने उनको विशेष प्रभावित किया। फिर टामस हार्डी, डिकन्स,टालस्टाय, चेखव, दास्तोयवस्की और गोर्की ने भी प्रभावित किया। इन्हें पढने के पीछे उनका लेखक बनने की चाह दबी रही होगी। प्रारंभ में आर्यसमाज के सुधारवादी दर्शन का प्रभाव भी उन पर पडा। मनुष्य के संस्कारों में घर-परिवार, परिवेश, संघर्ष सभी का हाथ होता है और उनके संस्कारों का लेखकीय संस्कार के निर्माण में भी थोडा-बहुत हाथ रहता है। विष्णु प्रभाकर के साहित्य सृजन की एक और बडी प्रेरणा देश-विदेश भ्रमण रही है। अब तक उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है। जिनमें उपन्यास, कहानी संग्रह,नाटक, एकांकी, जीवनी, यात्रा विवरण, संस्मरण, निबन्ध, बाल साहित्य आदि के अलावा विविध विषयों की भी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। वे अनुवाद और संपादन का कार्य भी करते रहे है। साहित्य कृतियों के लिए उन्हें कई पुरस्कार भी मिले है जैसे 'सोवियत लेण्ड नेहरू पुरस्कार', 'पाब्लो नेरूदा सम्मानम्', 'राष्ट्रीय एकता पुरस्कार', 'उत्तर प्रदेश तुलसी पुरस्कार','हरियाणा सूर पुरस्कार', 'दिल्ली साहित्य कला परिषद् सम्मान', 'रोटरी क्लब दिल्ली नार्थ' तथा 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा ताम्रपत्र' आदि।

उपन्यासकार विष्णु प्रभाकर :-

उनके अनुसार उपन्यास यथार्थ को प्रकट करने का सशक्त माध्यम है। उनकी यह यथार्थ दृष्टि उनके उपन्यासों में देख सकते है। उनके प्रमुख उपन्यास है- 'निशिकान्त', 'तट के बन्धन', 'स्वप्नमयी', 'दर्पण का व्यत्ति' और 'कोई- तो'।

निशिकान्त :-

उनका पहला उपन्यास है 'निशिकान्त' ।इसका कथानक सामाजिकता और सामूहिकता के बिन्दु पर आरंभ होकर वैयक्तिक धरातल पर समाप्त होता है। इसमें सन् 1920 से सन्1936 तक के सामाजिक और राजनैतिक जीवन को आधार बनाकर मध्यवर्ग के एक ऐसे संवेदनशील युवक की कहानी प्रस्तुत की गई है, जिसे समाज की गोलघोटूँ जकड से मुक्त होने के लिए अपने भीतर के पुरातन संस्कारों और बाहर की संकीर्ण सामाजिकता से निरन्तर संघर्ष करना पडता है।

तट के बन्धन :-

दूसरी औपन्यासिक कृति 'तट के बन्धन' में वे भारत और पाकिस्तान में फंसी नारियों की शारीरिक और मानसिक यातनाओं का चित्रण करते हुए नारी जीवन के त्रासदी को बताने की कोशिश करते हैं। साथ ही वे नारी को स्वयं अपने पथ का निर्माण करने की प्रेरणा देते हैं।

स्वप्नमयी :-

इस उपन्यास में भी नारी समस्याओं को ही उजागर करने का प्रयास किया गया है। यह एक ऐसी माँ की कहानी है जो घर और बाहर दोनों

जगह अपना दायित्व निभाने का प्रयास करती है।

दर्पण का व्यक्ति :-

यह उपन्यास उनके अन्य उपन्यासों से सर्वथा अलग है। इसकी पूरी कहानी केवल एक पत्र में सिमटी हुई है। इसमें पुरुषमेधा समाज में नारी की निम्नतर स्थिति, विधवा-विवाह, सुहाग की विडंबना, विवाह-विच्छेद आदि कई वर्तमान सामाजिक समस्याओं का चित्रण और उनके विरोधाभास का भी उल्लेख है।

कोई तो :-

यह मध्यवर्गीय नैतिकता का पर्दाफाश करनेवाला उपन्यास है। मध्यवर्ग ही समाज में करणीय और अकरणीय की सीमा-रेखा को निर्धारित करता है और संस्कृति-सभ्यता के मानदण्ड के मूल्य को स्थापित करता है। लेकिन मूल्य स्थिर नहीं रह सकते और नैतिकता के कारण मूल्यों में वह परिवर्तन करना नहीं चाहता है। ऐसे अवसर में समाज में जो स्थिति पैदा होती है उसकी एक झलक दिखाने का प्रयास लेखक 'कोई तो' में किया गया है।

वे अपने उपन्यासों के माध्यम से प्राचीन परंपराओं तथा रूढियों को तोडना चाहते हैं। इसके लिए वे अपने उपन्यासों में हिन्दु-मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता, राजनैतिक आन्दोलन, अशिक्षा, अज्ञान आदि जीवन की विविध समस्याओं को प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं।

कहानीकार विष्णु प्रभाकर :-

उनके कहानीकार का जन्म सन् 1934 ई. में 'स्नेह' नामक कहानी

से हुआ है। किन्तु 'नई कहानी' और 'समकालीन कहानी' की खेमेबाजी में उन्हें स्थान नहीं मिलता है। उनकी कहानियों का हिन्दी समीक्षा में समुचित स्थान न मिलने का और एक कारण यह है कि उनके नाटककार, एकांकीकार, तथा जीवनीकार के सम्मुख उनका कहानीकार कुछ उपेक्षित रह गया है । उनके द्वारा रचित कहानी संग्रह है - 'रहमान का बेटा', 'जिन्दगी के थपेडे', 'संघर्ष के बाद', 'धरती अब भी घूम रही है', 'सफर के साथी', 'खण्डित पूजा', 'मेरी तैंतीस कहानियाँ', 'पुल टूटने से पहले', 'जीवन पराग' आदि।

रहमान का बेटा :-

इस कहानी संग्रह में संग्रहीत कहानियाँ न केवल सामाजिक महत्व की है, बल्कि उनका सन्देश अधिक व्यापक और प्रखर भी है। इसके अन्तर्गत आनेवाली कहानियाँ है - 'भाई साहब', 'दीप जले ये घर-घर',' वे दोनों', 'गर्विता', 'हरीश-पाण्डे', 'आत्म-ग्लानि', 'खण्डित पूजा', 'बेटे की मौत', 'हमें गिरानेवाले', 'सुराज', 'धरोहर', 'आजादी', 'द्वन्द्व', 'सुनो ओ माँ', 'अरुणोदय' 'क्रान्तिकारी' और 'नया राजा'। इन सभी कहानियों में ऐक्य, स्नेह, सौहार्द, प्रेम, सहानुभूति आदि मानवीय प्रवृत्तियों का उद्‌घाटन किया गया है।

ज़िन्दगी के थपेडे :-

इस संग्रह में कथाक्रम की दृष्टि से सन् 1935 से सन् 1946 तक भारत की राजनैतिक परिस्थितियों की कहानियाँ है। इस में 'दफ्तर में', 'जीवनः एक कहानी', 'कहानी लेखक','अन्तर्वेदना','रहस्य', 'अपरिचित', 'छाती के भीतर','पण्डितजी','परिवर्तन','निशिकान्त','कितना झूठ', 'निशिकान्त का स्वप्न',

'मुक्ति वह रास्ता', 'क्रान्तिकारी', 'यह क्रम', 'अरुणोदय' आदि कहानियाँ संग्रहीत हैं। इन कहानियों में एक व्यक्ति का अध्ययन है और उसके द्वारा एक विशेष समाज तथा विशेष युग का अध्ययन हुआ है।

संघर्ष के बाद :-

इसमें स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थिति का चित्रण है। इस संग्रह की कहानियाँ हैं-'संघर्ष के बाद', 'एक औरत एक माँ' 'मैं जिन्दा रहूँगा', 'नई पौध', 'मार्ग में', 'पर्वत से भी ऊँचा', 'नंगी चट्टान', 'जीवन दीप', 'भारत माता की जय', 'बच्चा माँ का था', 'माँ-बाप', 'तांगेवाला', 'पतिव्रता', 'स्नेह', 'दूसरा वर', 'राय बहादूर की मौत', 'स्वप्नमयी, 'डायन', 'भीगी पलकें' और 'राख'। इन कहानियों में सामाजिक,राजनैतिक, पारिवारिक और मनोवैज्ञानिक समस्याएं रही है।

धरती अब भी घूम रही है :-

यह उनका बहुचर्चित कहानी संग्रह है। इसमें पारिवारिक, सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ शासकीय-व्यवस्था की क्रूरता और नकली मानवता का पर्दाफाश किया गया है। इसके अन्तर्गत आनेवाली कहानियाँ है - 'धरती अब भी घूम रही है', 'अगम-अथाह','रहमान का बेटा','गृहस्थी','नाग-फांस','सम्बल', 'ठेका','जज का फैसला','कितना झूठ','आश्रिता','अधूरी कहानी','मेरा बेटा', 'अभाव', 'हिमालय की बेटी', 'चाची' और 'शरीर से परे'। ये कहानियाँ सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा नारीत्व के रहस्यों को उजागर करनेवाली हैं ।

सफर के साथी :-

इस संग्रह की प्रत्येक कहानी का, जीवन की वास्तविकता से बहुत दूर तक संबन्ध है। इसके अन्तर्गत आनेवाली कहानियाँ है- 'बँटवारा', 'मुहूर्त टल गया', 'अंब्दुल्ला', 'वे दोनों आपरेशन', 'मूड', 'बीमारी', 'मेरा वतन', 'द्वन्द्व' और ' सफर के साथी'। इन कहानियों में सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, पारिवारिक एवं मानसिक समस्याओं को उठाया गया है।

खण्डित पूजा :-

इस संग्रह की सभी कहानियाँ रोचक तथा भावपूर्ण है। इसमें संग्रहीत कहानियाँ इस प्रकार हैं- 'खण्डित पूजा', 'नारी चरित्रम्', 'अपना-अपना सुख', 'युगान्तर','नचिकेता','एक माँ एक देश','वापसी','नींद नहीं आती','मणिकलंक और राजनीति','रात की रानी' और 'लाल गुलाब','आरंभ','उस दिन','सांझ के साए', 'एक पिता की सन्तान', 'भाई साहब', 'बेटे की मौत', 'राजनर्तकी और क्लर्क का बेटा','कलाकार की खोज','यह हार-यह जीत','ये उलझनें','नदी,नारी और निर्माण','रजनी' और 'आकाश की छाया में'। विष्णु प्रभाकर का मानवीय दृष्टिकोण इस कृति में परिलक्षित है।

मेरी तैंतीस कहानियाँ :-

इसमें लेखक सामाजिक आदर्श की स्थापना और व्यक्ति के द्वन्द्व का चित्रण करते है। इसमें संग्रहीत कहानियाँ है- 'आदर्श', 'आवेश और सत्य', 'सच में सुन्दर हूँ', 'वर्षा', 'गुलाब और सनव' 'शतरूपा की मौत', 'अन्ततः पिचका हूआ, 'केला और क्रान्ति', 'एक और दुराचारिणी', 'खिलौने', 'आदर्श','आँसू' और

'अंधियारा','फास्सिल','इन्सान और.....','बिम्ब-प्रतिबिम्ब', 'नफरत केवल नफरत', 'नीलकमल का पलायन', 'लैम्पपोस्ट के नीचे एक लाश', 'अब्दुल्ला', 'तूफान और तूफान', 'इन्द्रधनुष', 'मेरा प्रतिरूप', 'बन्द खिडकी', 'मेरा वतन', 'एक रातः एक शव' 'तिरछी पगडंडियाँ', 'चट्टान पर से देखा इन्द्रजाल' 'राजकुमार और मछली', 'एकमात्र रास्ता', 'चितकवरी दिल्ली', 'वे', 'मुड', 'आकर्षण और मुक्ति', 'कायर', 'अरूप-रूप' और 'तीन तारीखें'।

मेरी प्रिय कहानियाँ :-

यह सोलह कहानियों का संग्रह है जैसे-'धरती अब भी घूम रही है', 'ठेका', 'भोगा हुआ यथार्थ', 'बेमाता', 'जरूरत', 'राजम्मा', 'ढोलक पर थाप', 'खिलौने', 'फास्सिल इनसान और...', 'आभाव', 'शतरूपा की मौत', 'आकाश की छाया में', 'नाग फांस', 'शरीर से परे', 'एक रातः एक शव' और 'एक और दुराचारिणी'। ये कहानियाँ किसी न किसी रूप में संघर्ष को व्यक्त करती हैं।

पुल टूटने से पहले :-

इस संग्रह की कहानियाँ यथार्थ को उसकी समग्रता में पकडते हुए उसके झूठ और पाखण्ड को व्यक्त करती है। इसमें संग्रहीत कहानियाँ हैं- 'पुल टूटने से पहले', 'भटकन और भटकन', 'एक मौत समन्दर किनारे', 'एक रातः एक शव', 'बेमाता', 'राजम्मा', 'फास्सिल इन्सान और 'ढोलक पर थाप', 'बस इतना- भर ही', 'एक अनचिह्ना इरादा', 'भोगा हुआ यथार्थ', 'राग और अनुराग', 'सलीब' और 'अंधेरे आंगनवाला मकान'। इन कहानियों में अनुभव की सघनता और अभिव्यक्ति का खुलापन है।

जीवन पराग :-

इस संग्रह की कहानियों में जीवन की मार्मिक धटनाओं का उल्लेख हुआ है। ये कहानियाँ मानव स्वभाव को उद्‌घाटित करनेवाली है। इस संग्रह की कहानियाँ है-'भला आदमी', 'इतनी-सी बात', 'मुत्ति' 'प्रेम की भेंट', 'अतिथि', 'चोर की ममता', 'अनोखा दण्ड', 'अहंकार का नाश', 'घृणा पर विजय', 'डाक्टर और चोर', 'दो मित्र', 'मूक शिक्षण', 'इन्सान', 'चोरी का अर्थ', 'गुण-ग्राहक', 'सेवा भाव', 'पश्चात्ताप', 'सौ रुपये का नोट', 'वीर माता', 'सबसे बडा शिल्पी', 'ऋणी', 'सहानुभूति', 'कर्तव्यनिष्ठा', 'बडा दिल', 'किसका बेटा', 'अपनी-अपनी समझ', 'सहिष्णुता', 'सेवा', 'पत्थर', 'शान्ति की राह', 'निर्भयता' और 'तर्क का बोझ'।

इस प्रकार उनकी कहानियाँ समकालीन कथा लेखन में अपनी एक अलग पहचान स्थापित करती है।

बाल साहित्यकार विष्णु प्रभाकर :-

हिन्दी में बाल साहित्य को नई दिशा देकर उसे समृद्ध बनानेवाले और बच्चों तक पहुँचानेवाले लेखकों में विष्णु प्रभाकर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। छठवें दशक से वे बाल साहित्य की रचना करते रहे है। उनके बाल साहित्य के अन्तर्गत कहानी, नाटक, एकांकी आदि है। 'घमण्ड का फल', 'जादू की गाय', 'अभिनय एकांकी' आदि रचनाए विशेष उल्लेखनीय है।

घमण्ड का फल :-

इसमें लेखक ने छोटे-छोटे शीर्षकों के आधार पर कथायें लिखी है।ये

कथायें बालक मन को प्रभावित करनेवाली हैं,क्योंकि कथाओं में छोटी-छोटी धटनाओं को उल्लेखित करती है। इस संग्रह की कहानियाँ हैं-'घमण्ड का फल', 'विद्या विनयेन शोभते','यक्ष और यूधिष्ठिर','दान की माहिमा','धर्म का रहस्य', 'लालच का फल','झूठा गर्व','अहम का परिणाम','अहमदाबाद के भामाशाह' आदि।

जादू की गाय :-

यह बच्चों के लिए लिखा गया एक नाटक है। एक दृश्य में लिखा हुआ इस नाटक के द्वारा लेखक मानव के लालची स्वभाव एवं स्वार्थता पर प्रकाश डालते है।

अभिनय एकांकी :-

यह विष्णु प्रभाकर का छोटा-सा नाटक है। इसके अन्तर्गत आनेवाले पांच अलग-अलग नाटक है- 'ईमानदार लडका', 'न्याय', 'पंच-परमेश्वर', 'बहादुर बेटा', 'साहसी सन्दीप' आदि। उनके कुछ बहुचर्चित बाल नाटक है- 'हडताल', 'पुस्तक कीट', 'ऍसे-ऍसे', 'बाल वर्ष जिन्दाबाद', 'पानी आ गया' आदि

यात्रा साहित्यकार विष्णु प्रभाकर :-

उनकी साहित्यिक प्रवृत्ति एवं घुमंतू वृत्ति सहज ही एक दूसरे की पूरक है। कई रचनाओं के दौरान वे देश के सुदूर प्रदेशों की अनेक यात्राएं बराबर जारी रखते है। उनकी साहित्यिक वृत्तियों में आये पात्र, धटनाएं एवं स्थानों की विविधता इस बात का द्योतक है। उनके प्रमुख यात्रा विवरण हैं- 'ज्योतिपुंज हिमालय', 'हँसते निर्झर दहकती भट्टी' आदि।

ज्योतिपुंज हिमालय : -

इस यात्रा-वृत्त में लेखक ने हिमालय पर्वत की अपनी तीन यात्राओं का तिथ्यानुसार वर्णन किया है। विभिन्न स्थानों के 16 छायाचित्र भी दिये गये हैं। इसमें लेखक अपने धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एंव भौगोलिक विचार प्रस्तुत करते है।

हँसते निर्झर दहकती भट्टी :-

इसमें लेखक की छोटी-मोटी यात्राओं की झलक देखने को मिलती है। इसके अन्तर्गत 21 लेखों का समावेश है जैसे- 'मैं यही मरना चाहता हूँ','डांयरी का एक पृष्ठ','सौन्दर्य का दर्द','जहाँ आकाश नहीं दिखाई देता','केदारनाथ- दर्शन','एक स्कालर प्रिंस से भेंट','राह चलते वैशाली के खण्डहर','निद्रा का सौन्दर्य','इस्पात का संगीत','मित्रों की सैर','ये मुस्कुराते उद्यान','यमुना के नैहर में','दक्षिणी पूर्वी देशों का सांस्कृतिक जीवन', 'गोर्की इन्स्टिट्यूट में', 'झीलों का देश','मेरी बद्रीनाथ यात्रा','इनले झील','प्यार की भाषा','यूस मार्ग','जहाँ पाण्डवों ने चौपड खेली' आदि लेखक की सभी यात्राओं की चर्चा इन लेखों के अन्तर्गत हुई हैं।

विष्णु प्रभाकर चौदह वर्ष की साधना एवं खोज के फलस्वरूप बंगाली उपन्यासकार शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय की जीवनी 'आवाश मसीहा' लिखकर जीवनी के क्षेत्र में अपना पदार्पण करते है।

आवारा मसीहा :-

अमर कृति 'आवारा मसीहा' उनकी अक्षयकीर्ति का स्तंभ है। इसमें

शरत् के जीवन की विभिन्न घटनाओं का चित्रण है। इस जीवनी के संबन्ध में उनका कहना है कि- *"मुझे सचमुच इस कृति से प्रेम हो गया था। शरतचन्द्र मेरे प्रिय लेखक रहे है। सबसे अधिक मैं उनसे प्रभावित हुआ हूँ। जीवन में जो कुछ और जितना उन्होंने सहा है, उसका एक अंश मैं ने भी सहा है। उनके अन्दर में करुणा का जो अजस्रस्रोत था, उसकी एक बूँद मुझे भी अनुप्राणित करती है।"* [1] वे शरत् के जीवन के विविध पक्षों को तीन पर्वों में बाँटते है जैसे- 'दिशाहारा', 'दिशा की खोज' और 'दिशान्त' । 'दिशाहारा' में शरत् के बचपन का रोचक, मनोवैज्ञानिक एवं चरित्राधार प्रस्तुत करने की पीठिका प्रस्तुत की गई है। 'दिशा की खोज' में लेखक के लेखन विकास रचनाओं की पृष्ठभूमि और पात्रों से समरसता का प्रवाह एंव अपने समसामयिक समाज की कुरूपताओं के प्रति मोहभंग की प्रस्तुति है। 'दिशान्त' में शरत् के सर्जन के स्वर्ण युग का वैविध्यपूर्ण वर्णन है। राजनीति से उनका लगाव, गान्धी के प्रति ममता, सुभाष के प्रति चैतन्य दृष्टि आदि का विस्तारपूर्वक उल्लेख है। 'आवारा मसीहा' लिखकर विष्णु प्रभाकर यह सिद्ध कर देने का प्रयास करते है कि वे उच्चकोटि के नाटककार तो है ही, अच्छे जीवनीकार भी हैं।

संस्मरण साहित्यकार विष्णु प्रभाकर :-

वे समय-समय पर संस्मरण लिखते रहे है। उनके प्रकाशित संस्मरण संग्रह है-'जाने-अनजाने','कुछ शब्द:कुछ रेखाएं','यादों की तीर्थयात्रा','मेरे अग्रज: मेरे मीत', 'समान्तर रेखाएं','राह चलते- चलते' और 'मेरे हमसफ़र'।

---

1. 'विष्णु प्रभाकर'- सं -डा० विश्वनाथ मिश्र, डा० कृष्णचन्द्र गुप्त - पृ.सं -120

निबन्धकार विष्णु प्रभाकर :-

उनके निबन्धों की दो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं-'क्या खोया क्या पाया' और 'जनसमाज और संस्कृति एक समग्र दृष्टि'। उनके निबन्ध उनकी मानसिकता को समझने का सर्वश्रेष्ठ स्रोत है।

रेखाचित्रकार विष्णु प्रभाकर :-

उनके रेखाचित्रों में 'जाने अनजाने','सियाराम मेरी नजर में','महापण्डित- राहुल', 'विष्णु प्रभाकर अपनी निगाह में' और 'टीपू सुलतान' आदि उल्लेखनीय है।

एकांकीकार विष्णु प्रभाकर :-

विष्णु प्रभाकर फ्रायड के मनोविश्लेषण पद्धति से प्रभावित होकर इस पद्धति को अपने एकांकियें में अपनाते है। वे सन् 1939 ई.से ही एकांकी लिखते रहे है। उनके आधिकतर एकांकी सामाजिक है, जिनकी नींव यथार्थवाद पर आधारित है। मानव की जन्म-जात प्रवृत्तियों का सूक्ष्म विश्लेषण करके उनकी व्यावहारिकता का अध्ययन करना और उसे आदर्श की और उन्मुख करना उनकी विशेषता है। हिन्दी एकांकी के क्षेत्र में उनका योगदान अविस्मरणीय है। उनके एकांकियों में मूल रूप से सामाजिक उलझनों युवावर्ग में व्याप्त असन्तोष, नर-नारी के पारस्परिक संबन्धों, युद्ध की विभीषिका, प्रेम-विवाह जैसी समस्यायें विद्यमान है। उनके एकांकी संग्रह में 'अशोक एवं अन्य एकांकी', 'मैं भी मानव हूँ', 'प्रकाश और परछाइयाँ' अत्यधिक महत्वपूर्ण है। उनके एकांकियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है कि-

सामाजिक समस्या प्रधान एकांकी :-

इसके अन्तर्गत आनेवाले एकांकी सामाजिक समस्याओं पर आधारित है। 'प्रतिशोध','पाप','बन्धनमुक्त साहस','रक्त-चन्दन','वीर-पूजा','देवताओं की घाटी', 'माँ बँटवारा','नया समाज' आदि इस कोटि में आते है।

राजनैतिक एवं नवनिर्माण से संबन्धित एकांकी :-

इस वर्ग में उनके राजनैतिक विचारों से प्रभावित एकांकी आते है। जैसे- 'हमारा स्वाधीनता संग्राम','हत्या के बाद','कांग्रेज मैन बनो'और 'क्रान्ति'।

मनोवैज्ञानिक एकांकी :-

इन में मानव मन की अन्तर्वृत्तियों का सुन्दर मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। इस क्षेत्र में वे सबसे उत्तम एकांकी साहित्य की रचना कर सके है। 'ममता का विष', 'भावना और संस्कार','उपचेतना का छल','जहाँ दया पाप है','मुरब्बी' आदि उनके मनोवैज्ञानिक एकांकी है।

हास्य - व्यंग्य एकांकी :-

गंभीर तथा हास्य -व्यंग्यमय एकांकी की रचना करने में भी वे सिद्वहस्त है। इसके अन्तर्गत 'प्रो० लाल','भूख','सरकारी नौकरी','कला का मूल्य' आदि आते है।

पौराणिक ऐतिहासिक एकांकी :-

इन एकांकियों में वे सांस्कृतिक पुनरुत्थान पर बल देते है। 'अशोव' 'नहुष-का पतन','जन्माष्टमी', 'शिवरात्री', 'कंस-मर्दन' आदि उनके पौराणिक-ऐतिहासिक एकांकी है।

रेडियो एकांकी :-

विभिन्न नाटकों, कहानियों और उपन्यासों का रेडियो अनुकूलन करने में वे निपुण है। उन्होंने 'ढोलामार ','कमला','आश्रिता','शतरंज के खिलाडी', 'मुक्तिमार्ग' आदि का रेडियो रूपान्तरण किया है। उनके सर्वाधिक सफल रेडियो एकांकी है- 'समरेखा-विषमरेखा','ऊँचा पर्वत गहरा सागर','बदलते परिवेश','साँप और सीढ़ी' 'दस बजे रात','जज का फ़ैसला','दरिन्दा','सडक' आदि।

देश के हलचलों का चित्रण, गान्धीवादी विचार पद्धति का प्रतिपादन और मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि आदि उनके एकांकियों की विशेषताएं है। वे अपने एकांकियों द्वारा मनुष्य की भावनाओं, उनकी उलझनों और संघर्षों को सुलझाने की चेष्टा करते है।

नाटककार विष्णु प्रभाकर :-

वे हिन्दी साहित्य की विविघ विधाओं पर लेखन कार्य करते रहे है। किन्तु हिन्दी साहित्य में उनका विशेष स्थान नाटककार के रूप में ही है। वे सन् 1957 ई०से लेकर नाटक की रचना कर रहे है।वे सभी नाटकों में मनुष्य के व्यक्तिगत और समाजगत वैषम्यों का यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास करते है। उनके संपूर्ण नाटक है-'डाक्टर','टगर','बन्दिनी','अब और नहीं','सत्ता-के आर-पार','गान्धार की भिक्षुणी','नव प्रभात','केरल का क्रान्तिकारी', 'टूटते-परिवेश','युगे-युगे क्रान्ति','श्वेत कमल' और 'कुहासा और किरण'।

डाक्टर :-

इस नाटक में एक पति द्वारा परित्यक्ता पत्नी की क्रिया-प्रतिक्रियाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें शिक्षित और बुद्धिवादी नारी के वैवाहिक संबन्धों में व्याप्त अस्थिरता और गहन अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित किया गया है।

टगर :-

यह एक ऐसी स्त्री की त्रासदी है जो पति द्वारा उपेक्षित होने के बाद अपने जीवन में आनेवाले सभी पुरुषों को अपने मोहजाल में फँसाती है और उनके भ्रष्टाचारी जीवन को बेनकाब कर उन्हें छोडकर वह आगे बढ़ती है। लेकिन अनेक पुरुषों से बदला लेने की धुन में उसने स्वयं को ही बरबाद कर दिया है।

बन्दिनी :-

इसकी घटना अंधविश्वास पर आधारित है।

सत्ता के आर-पार :-

यह नाटक जैन तीर्थंकर ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र महाराज भरत और उनके अनुज महाराज बाहुबली के बीच के सत्ता संघर्ष को प्रस्तुत करता है।

गान्धार की भिक्षुणी :-

इसमें प्राचीन भारत के हूण अत्याचार और मालव उत्थान की कथा है। भिक्षुणी आनन्दी का आत्म संघर्ष, अभिशप्त मातृत्व एवं अपूर्ण प्रेम का वर्णन है।

नव प्रभात :-

विष्णु प्रभाकर ऐतिहासिक पुरुष अशोक की मानवगत संवेदनाओं और दुर्बलताओं का चित्रण करते हुए उन्हें एक 'मानव' के रूप में प्रस्तुत करने का

प्रयास करता है।

केरल का क्रान्तिकारी :-

वेलुत्तम्पी दलवा का अदम्य साहस और अभूतपूर्व साहस का चित्रण है।

टूटते परिवेश :-

नाटक की समस्या यथार्थ जीवन की ज्वलन्त समस्या है। इसमें मध्यवित्तीय परिवार की कहानी प्रस्तुत हुई है जिसमें नया और पुराना दोनों सह-आस्तित्व की विवशता को झेलते है।

युगे-युगो क्रान्ति :-

लेखक विवाह के क्षेत्र में चिरकाल से चली आ रही क्रान्ति का निरूपण करता है।नाटक की सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमें सन् 1875 ई.से लेकर अभी तक के सामाजिक परिवर्तन का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत हुआ है।

श्वेत कमल :-

लेखक एक ऐसी अभिशप्त नारी की दर्दनाक दास्तान प्रस्तुत करते है जिन्हें अपनी सारी खुशियाँ, भविष्य के सारे सपने अपने परिवार की भलाई के लिए कुरबान करना पडता है।

अब और नही :-

यह नाटक नारी शोषण का अन्तहीन सिलसिला प्रस्तुत करता है।

कुहासा और किरण :-

स्वाधीन भारत के सामाजिक और राजनैतिक जीवन से जुडा हुआ यह नाटक वर्तमान भ्रष्टाचार के खिलाफ़ पाठक को चेतावनी देता हे।

ज़ाहिर है विष्णु प्रभाकर हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं पर कार्य करते रहे है। उनके साहित्य में यथार्थ और आदर्श का सुन्दर समन्वय है। उनका मानवतावाद उन्हें जाति-पाँति, धर्म-संप्रदाय आदि से ऊपर उठाते है। बचपन से वे आर्यसमाज और गान्धीवाद से प्रभावित है। उनका संपूर्ण जीवन लेखकीय अस्मिता की पहचान का जीवन है। स्वयं उनका कहना है कि- *"मेरा संकल्प कि मैं कभी झुकूँगा नहीं, कभी समझौता नहीं करूँगा और मैं ने कभी समझौता किया भी नहीं। पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि मैं ने कभी पैसे के लिए माँग ली चीज़ें नहीं लिखी। दूसरों ने क्या किया, क्या कर रहे है इस पर कभी मैं ने सोचा ही नहीं।"*[1] मीरापूर गाँव और हिसार कस्बे का संस्कार कहीं न कहीं उनके अन्दर है जिसे हटा-दबाकर वे नगर संस्कृति और मध्यवर्गीय जीवन को अपने साहित्य का विषय बनाने है। उनकी सरलता, सात्विकता एवं अकृत्रिमता के पीछे यह संस्कार जीवित है और यह उन्हें एक संवेदनशील भरतीय लेखक बनाने में समर्थ सिद्ध होते है। उनके साहित्य सर्वकालिक है। साहित्यकार के रूप में विष्णु प्रभाकर युग के श्रेष्ठ विचारक, चिन्तक एवं समाज सुधारक है। उनके साहित्य का मूल स्वर नारी की मुक्ति तथा धार्मिक शोषण का विरोध है।

1'विष्णु प्रभाकर व्यक्ति और साहित्य'- सं - डा० महीप सिंह -पृ.सं - 85

दूसरा अध्याय

ऐतिहासिक व पौराणिक नाटकों में अभिव्यक्त समसामयिकता

ऐतिहासिक व पौराणिक नाटकों में अभिव्यक्त समसामयिकता

अतीत के वृत्तान्तों को प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत करनेवाला तत्व इतिहास है। इतिहास अतीत के अज्ञात जीवन को सामने लाता है। यह महान व्यक्तियों से संबद्ध होते हुए भी उन सामान्य जनता के जीवन को विस्मृत नहीं कर पाता जो इन व्यक्तित्वों को पूर्ण बनाने में अपना सहयोग देते है। प्राचीन साहित्य में 'इतिहास' के साथ 'पुराण' शब्द का प्रयोग भी मिलता है। पुराणों में प्राचीन राजवंशों और वंशानुचरितों का उल्लेख तथा प्रागैतिहासिक काल के अधिकांश राजवंशों की तालिका भी उपलब्ध होती है। लेकिन वंशों और घटनाओं के क्रम में बहुत अव्यवस्था है। पुराणों में संग्रहीत अनुश्रुतियों में आधिकांश में ऐतिहासिक संकेत होते हुए भी उन्हें प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। भारतीय विद्वान पुराण साहित्य को ऐतिहासिक वाड्मय सिद्ध करते हुए 'पुराण' और 'इतिहास' को समानार्थक मानते हैं।

इतिहासकार अतीत की घटनाओं को व्यवस्थित ढंग से कार्य-कारण संबन्ध स्थापित करते हुए वर्तमान के संदर्भ में देखता है। वह अतीत के पुनर्निर्माण का उद्देश्य लेकर चलते हुए भी घटनाओं में कार्य-कारण संबन्ध स्थापित करने का अनुभव वर्तमान से ही प्राप्त करता है। इस प्रकार इतिहास में भूत ही नहीं वर्तमान भी सन्निविष्ट रहता है। इसमें बीते हुए जीवन को देखकर ही वर्तमान का स्पष्टीकरण और भविष्य के आदर्शों की स्थापना होती है। वर्तमान व्यक्ति के सामने प्रत्यक्ष रहता है,अतीत को समझने के लिए इतिहास का सहारा लिया जाता है तथा भविष्य को कल्पना से निर्मित किया जाता है। साहित्य अतीत के जीवन

को चित्रित करते समय इतिहास पर आश्रित रहता है। इतिहास किसी सम्राट् को युद्ध भूमि में खडा कर सकता है। लेकिन वहाँ आने से पहले उनकी मनोदशा क्या थी, किस तरह के विचारों ने उन्हें उत्तेजित किया इन सबसे परिचित कराना इतिहास की सामर्थ्य से बाहर है और साहित्य में इन बातों की पूरी संभावना रहती है। साहित्य में सत्यों की स्वीकृति होने के कारण उसका महत्व देश काल से परे होता है। इतिहास में सामयिक सत्यों की सत्ता होने के कारण उसका महत्व विशेष देश काल तक ही सीमित रहता है।

साहित्यकार जब इतिहास का आधार लेता है तब उसमें से ऐसे चरित्रों और घटनाओं का चयन करना चाहता है जो वर्तमान सामाजिक समस्याओं का समाधान निकालने में उसकी सहायता कर सकें और जब इतिहास समाज को प्रभावित करनेवाली घटनाओं को ही अपना विषय बनाता है तो निश्चित है कि साहित्य के लिए वह विस्तृत पृष्ठभूमि तैयार करता है। इतिहास अतीत का पुनर्निर्माण करता है तो साहित्य वर्तमान के सूत्र को अतीत से मिलाकर आज की समस्याओं को बीते हुए युग के संदर्भ में देखता है।

नाटक ऐतिहासिक तभी हो सकता है जब उसमें नाटककार के युग से इतर किसी युग का चित्रण होगा। ऐतिहासिक नाटककार इतिहास से ग्रहीत घटनाओं में कार्य कारण संबन्ध नाटकीय कल्पना द्वारा कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है। ऐतिहासिक नाटककार को एक ओर अपने युग से संपृक्त रहना पडता है तो दूसरी ओर अपने अनुभवों के साथ एक भिन्न युग की ओर लौटना होता है।

अपने युग के प्रगाढ परिचय के साथ उस विशेष युग में प्रचलित

राजनीतिक नियमों, परंपराओं, युद्ध नीतियों, कला-कौशल तथा वेश-भूषा का ज्ञान होना उनके लिए अनिवार्य है। ऐतिहासिक नाटककार इतिहास से ऐसे चरित्रों का आदर्श सामने रखता है जिन्होंने राष्ट्रहित के लिए व्यक्तिगत स्वार्थों को तिलांजलि देकर अपने को अर्पण कर दिया है।

ऐतिहासिक नाटक वर्तमान से संबद्ध रहते हुए भी भविष्य की संभावनाओं का भी संकेत देता है। इसमें अतीत की व्याख्या इस प्रकार की जाती है जिससे वर्तमान को गति मिल सके और भविष्य के संकेत-सूत्र भी मिल जाय। यदि नाटककार में ज़रा भी दायित्व बोध है तो वह अपने युग की समस्याओं को नकार नहीं कर सकता। युगीन यथार्थ को व्यक्त करते हुए वह सामयिक समस्याओं का समाधान ढूँढने का प्रयास अवश्य करता है। युगीन यथार्थ के प्रति सचेत समस्त नाटककारों ने चाहे वे किसी भी समय के और किसी भी साहित्य के रहे हों, समसामयिक समस्याओं को व्यक्त किया है। नाटककार विष्णु प्रभाकर भी इतिहास और पुराण से पात्रों को लेकर वर्तमान समस्याओं को उजागर करने की कला में सिद्धहस्त है। इस कोटि में उनके 'नव प्रभात', 'सत्ता के आर-पार', 'गान्धार की भिक्षुणी', 'केरल का क्रान्तिकारी' आदि नाटक आते है। इतिहास के संबन्ध में स्वयं उनका कहना है कि - *"मैं ने इतिहास का उपयोग बहुत ही कम किया है। वही किया है जहाँ वर्तमान के संदर्भ में वह कोई अर्थ रखता हो। जैसे 'नव प्रभात' युद्ध की व्यर्थता दिखाने के लिए, 'सत्ता के आर-पार' सत्ता संघर्ष के कारण और 'गान्धार की भिक्षुणी' राजा-प्रजा के संबन्ध को लेकर आज भी उतने*

ही अर्थवान है जितने अपने युग में थे।[1]

रणक्षेत्र की रक्त-रंजित मिट्टी से अंकुरित मानवता की पौध - 'नव प्रभात'

समसामयिक युग में साम्राज्य-लिप्सा, अर्थ-लिप्सा, वर्ण-वर्ग विद्वेष, अपमान का बदला आदि के लिए युद्ध होते है; जिनकी त्रासद यातनाएं राष्ट्र, समाज तथा मानव को भुगतनी पडती है। युद्ध में वित्त हानि के साथ-साथ अपरिमित रक्तपात होता है, जिसे देखकर कोई युद्ध पिपासु शासक अपनी पाश्विक वृत्तियों से खंडित होकर अहिंसा, करुणा, दया आदि भावों से निमज्जित हो जाता है। राज्य-लिप्सा की भावना किसी शासक के मन में इतनी गहरी और विकृत रूप में धंसी रहती है कि वह हिंस्र बनकर शत्रुराष्ट्र पर ही आक्रमण नही करता बल्कि अपने खूनी रिश्तों को भूलकर अपने भाई-बन्धुओं को भी मिटाता है। किन्तु उस दमन चक्र में कभी-कभी वह भी उलझकर खंडित बन जाता है। शासक अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए कई प्रकार के षड्यंत्रों को अपनाता है। राज्य में अराजकता फैलाकर भी अपनी सत्ता को स्थिर करने में वे हिचकते नहीं। युद्ध की परिणति विजय या पराजय में होती है। कभी-कभी युद्ध-पिपासु विजयी शासक युद्ध में हुए अपरिमित नर-संहार, रक्तपात और विनाश आदि से द्रवित होकर अशान्ति से थककर टूट भी जाता है। तब उसका हृदय परिवर्तन हो सकता है और वह अहिंसा, दया, क्षमा, सहानुभूति आदि भावनाओं से आपूरित होता है। इस प्रकार कलिंग युद्ध की विभीषिका से संत्रस्त आशोक के दोहरे व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति विष्णु प्रभाकर अपने नाटक 'नव-प्रभात' में मनोवैज्ञानिक

1.'क्या खेया क्या पाया' -विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 29

ढंग से प्रस्तुत करते है।

सम्राट् अशोक मगध के शासक थे । कारुवाकी उनकी पत्नी है। महेन्द्र और संघमित्रा उनके भाई-बहन है। राधागुप्त उनके महामात्य है। सम्राट् अशोक के मन में अदम्य राज्य-लिप्सा है। वे राजगद्दी तो अपने भाई सुसीम के सिर का सौदा करके जीते है। अपनी दुर्दम्य राज्य-लिप्सा के कारण वह कलिंग पर आक्रमण करता है और वहाँ के जन-जीवन अस्तव्यस्त कर डालता है। कलिंग युद्ध में अशोक भीषण नर-संहार करता है। इतने रक्तपात और नर-संहार के बाद भी उनकी रक्त-पिपासा नहीं बुझती। वह कलिंग कुमार को बन्दी बनाना चाहता है। उनका महामात्य राधागुप्त कलिंग कुमार को बन्दी बनाकर उनके सामने उपस्थित करता है। इस प्रकार सम्राट् अशोक कलिंग कुमार को बन्दी बनाने में सफल होता है, परन्तु उनका सिर झुकाने में नहीं। अशोक की हर बात का उत्तर कुमार निर्भयता और निर्भीकता से देता है। इससे अशोक के दंभी सम्राट् का मन आहत होता है और वह क्रुद्ध होकर कुमार को प्राणदंड की आज्ञा सुनाता है। उनकी आज्ञा सुनकर कुमार प्रत्युत्तर देता है कि- *"बस यही है तुम्हारी वीरता !यही है तुम्हारा शौर्य !इसी बल पर सम्राट् बने हो ! एक बन्दी का सिर भी नहीं झुका सके। खोपडियाँ ठुकराने के लिए तो अनेक गीदड श्मशान में घूमा करते है, लेकिन वह वीर पुरुषों का मार्ग नहीं है।"*[1]

कुमार के इन शब्दों से अशोक का मन झनझना उठता है। कुमार की बातें उनके मन को मथ डालती है और वह मानसिक संघर्ष की आँधी से

---

1. 'नव प्रभात'-विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 36

व्याकुल बन जाता है। ऐसी मनोदशा में कुमार की बंहन भिक्षुणी के वेश में आकर सम्राट् अशोक की भर्सना करती है कि- *"जो प्रतिशोध की भावना जगाता है वह जीतकर भी हार जाता है। सम्राट् ! शास्त्रों की जीत जीत नहीं होती । जहाँ लोगों का इस प्रकार वध-मरण और देश निकाला हो ऐसा जीतना न जीतने के बराबर है।"*[1] उसकी बातों से प्रभावित होकर उनका मन परिवर्तित होता है।

अशोक का मन कलिंग के महाविनाश से संत्रस्त हो जाता है। परिणामस्वरूप उनके मन में युद्ध के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न होता है। तब वह कुमार को दी गई प्राणदंड की आज्ञा वापस लेता है और उसे क्षमा कर देता है। अशोक की यह इच्छा भी होती है कि यदि राजकुमार चाहे तो अपनी बहन संघमित्रा से उसकी शादी करा दें। परन्तु स्वाभिमानी राजकुमार अशोक की क्षमा को अस्वीकार कर अपने देश के लिए छाती में कटार मारकर आत्मसमर्पण कर देता है। इस धटना से भी विजयी अशोक अपने को हारा हुआ अनुभव करता है। अपनी जीत में उसे हार प्रतीत होती है और वह पश्चात्तापदग्ध अन्तःकरण से बोल उठता है - *"कुमार ! कुमार ! तुम जीत गये। मैं पराजित हो गया। तुम्हारी बहन ने ठीक कहा था कि तुम मेरी दया स्वीकार नहीं करोगे। कभी नहीं करोगे। तुम ने सचमुच वही किया।"*[2] वास्तव में कुमार की आत्महत्या का उद्देश्य कायरता नहीं है; बल्कि अशोक के हृदय में पश्चात्ताप की जो आग सुलगाने लगती है, उसे तेज़ करना है। अंत में अशोक बौद्ध घर्म का अनुयायी बन जाता है।

1.'नव प्रभात' - विष्णु प्रभाकर - पृ. सं. 74-75

2. 'नव प्रभात' - विष्णु प्रभाकर - पृ. सं. 100

राज्य-लिप्सा मानव मन की बहिर्मुख वृत्ति है जो समाज पर अपना प्रभुत्व और आतंक जमाना चाहती है। किन्तु बढती हुई साम्राज्य-लिप्सा युद्धों को जन्म देती है। राष्ट्र से राष्ट्र टकराते विध्वंसक अस्त्र -शस्त्रों की ज्वाला में असंख्य जनों के जीवन की बलि चढाई जाती है और जल-थल अनेक खण्डों में विभाजित हो जाते है। इस प्रकार कभी-कभी शासक लोग अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने केलिए दूसरे देशों का किसी भी प्रकार नष्ट-भ्रष्ट करने में भी हिचकते नहीं। हमारे पुराण और इतिहास के पन्नों में परखने से ऐसे अनेक महापुरुषों की कहानी देखने को मिलती है। 'नव प्रभात' के अशोक इसका उत्तम उदाहरण है। सम्राट् अशोक अपार महत्वाकांक्षी है। कर्लिग युद्ध के प्रमुख कारण अशोक की दुर्दम्य साम्राज्य-लिप्सा, बदला लेने की घृणित भावना और विजय की प्रबल महत्वाकांक्षा है। वह किसी भी प्रकार कर्लिग को अपने कब्ज़े में लाना चाहता है। उस समय वह दूसरों की व्यथा को अनदेखा करता है। उनके सामने एकमात्र लक्ष्य है किसी भी प्रकार विजय पाना। अपनी इस महत्वाकांक्षा के कारण वे आम आदमी के सपनों को पैरों तले रौंदते है। मानव में अधिकार की नशा एक बार चढ जाता है तो वह कभी नहीं उतरता। महत्वाकांक्षा की खुमारी में वे अपने विवेक खो बैठते है। इस संदर्भ में अशोक का दम्भ दृष्टव्य है- *"मैं महत्वाकांक्षी हूँ। मैं विजय चाहता हूँ, किसी भी मूल्य पर विजय। मेरे नाम से गान्धार से लेकर केरल तक, कामाख्या से लेकर सौराष्ट्र तक सारे देश काँपता है। मैं ने कर्लिग को पराजित करने का निश्चय किया है।"*[1]

1.'नवप्रभात' - विष्णु प्रभाकर - पृ सं. - 60

अशोक ने अपनी बलवती महत्वाकांक्षा के अनुसार कलिंग पर हमला किया।इस समय उनके मन पर मात्र प्रतिशोध की भावना शासन करती है।यह युद्ध उनकी वीरता और क्रूरता का द्योतक है।युद्ध के अपरिमित रक्तपात में अशोक की रक्त-पिपासा कारणभूत है। वह चाणक्य की नीति का अनुसरण करते हुए पूरे भारत देश को मौर्य-साम्राज्य के अधीन करना चाहता था। कलिंग इसमें सबसे बडा अवरोध बना हुआ था। चाणक्य की राज्य नीति और चन्द्रगुप्त के पराक्रम हेतु कलिंग विजय अशोक केलिए स्वाभिमान का प्रश्न ही नही बल्कि भविष्य के घातक संकटों से बचाने की रास्ता भी था। क्योंकि मौर्य साम्राज्य के सामने कलिंग अपनी समृद्धि और अपार सैन्य शक्ति के कारण सबसे विकट शक्ति बनकर उभर रहा था। कलिंग पर अशोक का आक्रमण एक पूर्व नियोजित योजना थी,जो राजनीतिक आकांक्षाओं का बर्बर प्रतिफल बनकर इतिहास में दर्ज हो गई है।

उनके कलिंग युद्ध की दानवी नृशंसता का परिणाम यह हुआ है कि असंख्य लोंगों की मृत्यु हुई, कई नारियों की सुहाग की लाली पुछी और लाखों माताओं की गोदी सूनी हो गई। युद्धोपरान्त नगर तो वीरान हो गये और वहाँ के अनेक भवन खंडहर बन गये। सारा वातावरण अनाथों, अपाहिजों और अनाहतों की आहों से कांप उठता है। युद्ध के भीषण ताण्डव के बाद जो लोग वहाँ शेष है वे भी न सुन सकते हैं और न बोल सकते है।उनसे बातें करने पर वे कुछ इस प्रकार देखते हैं कि बोलनेवाला स्वयं पानी-पानी हो जाता है। उनकी दयनीय स्थिति देखकर ऐसा लगता है कि उसी प्रकार अपंगु बनकर जीने से मरना ही
उनके लिंए बेहत्तर है।

कलिंग युद्ध की क्रूरता और बर्बरता से अशोक का हृदय त्रस्त हो उठा है और उसने भविष्य में युद्ध न करने की घोषणा की। भेरी-नाद धर्म-घोष में परिवर्तित कर दिया गया। इस प्रकार साम्राज्य बना रहा और उसका आधार हिंसा के स्थान पर उदारता, सहिष्णुता और मृदुता हो गये। आज का युग भी बहुत कुछ अशोककालीन युग के समान है। साम्राज्य-लिप्सा संसार को त्रस्त कर रखते है। शस्त्र शक्ति का एकमात्र अवलंब है और उसके संघर्षण से मानवता घायल होकर सिसक रही है। यहाँ अशोक जानते है कि हृदय की विशालता ही सच्चे मानवतावाद की स्थापना कर सकती है। हमारी इस छोटी दुनिया में अगर सद्भाव कायम करके रखना है तथा मानवता को जीवित रखना है तो हिंसा का परित्याग करके हृदय की विशालता को प्रश्रय देना ही होगा। इस नाटक में संघमित्रा शौर्य की संज्ञा देते हुए अशोक से कहती है- *"हृदय ! हृदय की विशालता और उदारता का नाम शौर्य है, सम्राट्।"*[1]

विष्णुप्रभाकर 'नव प्रभात' में सम्राट् अशोक के हृदय-परिवर्तन के माध्यम से हिंसा पर मानवीय प्रेम की विजय दिखाने का प्रयास करते है।कलिंग युद्ध के बाद अशोक के मन में आए हुए परिवर्तन इसी की ओर संकेत करते हैं। इस नाटक में एक स्थान पर सम्राट् अशोक अपनी रानी कारुवाकी से कहते हैं- *" मैं निश्चय करता हूँ कि अब दिग्विजय नहीं धर्म विजय होगी;भेरी-घोष धर्म-घोष में परिवर्तित कर दिया जाएगा। अब फिर धरती माता अपनी सन्तान का रक्त पीने को*

1.'नव प्रभात' - विष्णु प्रभाकर पृ.सं - 31

विवश न होगी, अब फिर घायलों के चीत्कार से आकाश नहीं काँपेगा। अब फिर विधवाओं और अनाथों के करुण क्रन्दन से शान्ति की हत्या नहीं होगी। अब फिर वह रक्त-रंजित इतिहास अपने को नहीं दोहराएगा।"[1]

विष्णु प्रभाकर मूलतः गान्धीवादी चिन्तक एवं सर्जक है। गान्धीवादी मूलतः मानवतावादी दर्शन है। इसमें विश्वबन्धुत्व की भावना अन्तर्निहित है। युद्ध की विभीषिका से त्रस्त मानव के लिए गान्धीवाद एक शरण स्थल है। युद्धों से पीडित मानवता गान्धीवाद में ही शान्ति पा सकती है। विष्णु प्रभाकर युद्ध की आग में झुलसती हुई मानवता के दर्द को पहचानते है। इसलिए 'नव प्रभात' में वे युद्ध की विभीषिका को चित्रित करते हैं। इतिहास और पुराण से पात्रों को लेकर वर्तमान समास्याओं का चित्रण करने में लेखक सिद्धहस्त है।

'नव प्रभात' एक ऐतिहासिक नाटक और सम्राट् अशोक एक इतिहास पुरुष है। विष्णु प्रभाकर सम्राट् अशोक की मानवगत संवेदनाओं और दुर्बलताओं का चित्रण करते हुए उन्हें एक 'मानव' के रूप में प्रस्तुत करता है। इस रचना के माध्यम से नाटककार ने इतिहास के भीषण रक्तपात और विनाश का चित्रण करने के साथ-साथ मानव मन के अन्तर्द्वन्द्वों को भी चित्रित किया है। कलिंग युद्ध में हुए मार-काट और नृशंसता से सम्राट् अशोक के हृदय पर लगे प्रबल आघात, युद्ध की विभीषिका एवं उनके दुष्परिणामों को दर्शक एवं पाठक के सामने प्रस्तुत करना नाटककार का लक्ष्य है,जिससे वर्तमान एवं भावी पीढी इस महानाश ,से बचे। कलिंग युद्ध की क्रूरता से अशोक का हृदय भेरी-नाद से धर्म-घोष की

1.'नव प्रभात' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं -109 - 110

ओर उन्मुख हुआ यानि हिंसा तथा रक्तपात के स्थान पर प्रेम और निर्माण कार्य का शुभारंभ हुआ ।

वर्तमान संदर्भ में इस नाटक का विशेष महत्व है क्योंकि वर्तमान शासन व्यवस्था की कुटिल स्वार्थपरता और साम्राज्य-लिप्सा के शुद्धीकरण के लिए यह नाटक उत्तम उदाहरण है, जिससे वर्तमान शासन व्यवस्था के सूत्रधार शिक्षा ग्रहण कर सके। विष्णु प्रभाकर ने नाटक के आमुख में इस बात को स्पष्ट किया है कि - *"शान्ति की आवश्यकता पर इन वर्षों में जितना ज़ोर दिया गया है, उतना पहले शायद ही कभी दिया गया है। सचमुच भावी युद्ध की सर्वनाशिनी कल्पना से कंपित विश्व अशोक के चरित्र को जितना आज समझ सकता है, उतना संभवतः और कभी नहीं।"*[1]

इस नाटक में पुरानी परंपराओं में सम्राट् अशोक की प्रख्यात कथावस्तु को आधार बनाकर युद्ध की भयानकता, इसमें रौंदी हुई मानवता का चित्रण हुआ है। नाटककार कथ्य के अनुरूप ऐतिहासिक पात्र एवं घटना में परिवर्तन करते है। इसमें कलिंग युद्ध के बाद सम्राट् अशोक के मानसिक बदलाव का चित्रण है। पहले वह युद्ध-पिपासु था, लेकिन कलिंग युद्ध के भीषण परिणामों से प्रेरित होकर वह अपने जीवन में एक नई दिशा को अपनाता है। नाटक का शीर्षक 'नव प्रभात' अशोक के जीवन में आए हुए इस परिवर्तन का ही द्योतक है।

अतः विष्णु प्रभाकर इस नाटक के माध्यम से आधुनिक समाज को युद्ध की विभीषिका से सचेत रहने का संकेत करते है। दंभ हेतु युद्ध करना उचित

1'नव प्रभात'- विष्णु प्रभाकर आमुख पृ.सं - 16

नहीं होता क्योंकि बाद में सम्राट् अशोक की भाँति प्रायश्चित्त करना पडता है। लेखक अहिंसा, प्रेम एवं शान्ति को मानवीय कष्ट-निवारण का एकमात्र उपाय बताते है।

राजधर्म और मानवधर्म की आपसी टकराहट - 'सत्ता के आर-पार'

वर्तमान युग अवमूल्यन और विघटन का युग है। आज जीवन के सभी क्षेत्रों में किसी न किसी प्रकार का विघटन दिखाई देता है। आज शासक अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए मूल्यहीन आचरण करते है। सामाजिक उन्नमन का उत्तरदायित्व उन पर है। परन्तु वे सत्तांध बनकर अपना कर्तव्य, आदर्श, संस्कार आदि की अंत्येष्टि करके स्वार्थसिद्धि में जुडे हुए है। उनकी सत्तांधता के शिकंजे में अटककर लोगों की बडी बुरी दुर्गति हो रही है। उनकी असहायता एवं विवशता का फायदा उठाकर उन्हें प्रताडित करना उनकी नीति है। हमारा इतिहास इस बात की साक्षी है कि हर शासक के अत्याचार के पीछे उनकी सत्तांधता ही है। ऐसी हालत में राजा या सम्राट् के लिबास पहनते ही इन्सानियत को भूल बैठे बेशुमार शासकों को हम इतिहास के पन्नों में देख सकते है। अपने अन्दर पशुवृत्ति पैदा होने के कारण वे अपना विवेक खो बैठते हैं। अपने सुख एवं स्वार्थ- सिद्धि के लिए वे दूसरों को दुःखी बनाने में नहीं हिचकते। वे अपने खूनी रिश्तों को भी नकार कर बर्बर होकर हैवान बन जाते हैं। मानवतावादी साहित्यकार इन्सानियत के इस हनन का विरोध करता है। विष्णु प्रभाकर इस नाटक 'सत्ता के आर-पार' में प्रागैतिहासिक काल के भरत और बाहुबली के सत्ताधिकार एवं अध्यात्म चिन्तन के बीच परस्पर संघर्ष की कथा प्रस्तुत करते हैं।

यह नाटक जैन धर्म के पूजनीय आदिनाथ भगवान् ऋषभदेव के पुत्र भरत और बाहुबली के द्वन्द्व की सार्थक प्रस्तुति है। अपने कल्याणकारी स्वरूप और धर्मपरायण नैतिक विचारों के परिणामस्वरूप भगवान् आदिनाथ जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकरों में प्रथम और सर्वोच्च स्थान एवं सम्मान के अधिकारी बन चुके है। तीर्थंकर ऋषभदेव समस्त दायित्वों से मुक्त होकर साधना और अध्यात्म में निमग्न हो चुके है। बाहुबली उनके द्वितीय पुत्र और ज्येष्ठ पुत्र है भरत, जिनके नाम पर हमारा भारत देश 'भारत वर्ष' कहलाता है।

अपने स्वयं की आध्यात्मिक उपलब्धि के लिए वन में जाते वक्त भगवान् ऋषभदेव भरत को अयोध्या का राज्य तथा बाहुबली को पोदनपुरी यानि तक्षशिला के आंचल का राज्य सौंप देते हैं। भरत के राज्यप्रदेश की आयुधशाला में दिग्विजय के शुभकार्य का संकेत देता 'चक्ररत्न' का उद्‌भव होता है। चक्रवर्ती का कर्तव्य यह होता है कि एकछत्र शासन के अन्तर्गत देश के सभी क्षेत्रों और राज्यों को संगठित करना और इसी भावना से प्रेरित होकर भरत गुरु,आचार्य और विद्वत्-जनों के परामर्श पर अपने सैन्य के साथ अमर दिग्विजय प्राप्त करने के लिए चल पडे। सेना के आगे-आगे चक्रवर्ती का विरोध संहारक चक्र चलता है। भरत की सेना एक-एक करके सभी राजाओं को पराजित करते हैं। सभी शासकों ने भरत का चक्तवर्तित्व स्वीकार कर लिया और उनके अधीन हो गये। इस प्रकार संपूर्ण राज्यों अथवा क्षेत्रों को विजित कर जब भरत अपनी सेना के साथ अयोध्या में प्रवेश करते हैं तो 'चक्ररत्न' नगर-द्वार पर स्थिर हो जाता है। गुरुजनों और मंत्रियों से विचार-विमर्श करने के पश्चात् वे इस चक्रवर्तित्व की अपूर्णता की जड तक

पहुँचते हैं कि उनकी सेना ने अन्य राज्यों और राजाओं को अपने अधीन कर लिया था, किन्तु बाहुबली और अन्य भाइयों के राज्यों की ओर अपनी सेना को उन्मुख नहीं किया था। अर्थात् यहाँ पर भरत का दिग्विजय अधूरा ही रह गया था। वह अपने भाइयों के राज्य पर सेना नहीं भेज सकता क्योंकि भाई आखिर भाई होता है। इस भावना से भरत का मन जागृत हुआ और दूसरे ही क्षण उसके मन में यह चिन्ता आयी कि दिग्विजय महोत्सव के अवसर पर अपने भाईयों को सहर्ष आने का निमन्त्रण भेजेगा और भरत को विश्वास था कि वे अपने चक्रवर्ती भाई को नमस्कार करने जरूर आयेंगे और चक्र का प्रतिरोध दूर हो जाएगा । यहीं से आरंभ होता है संघर्ष। सभी भाई भरत के चक्रवर्तित्व में सम्मिलित होने से इन्कार करते हैं। वे युद्ध की विभीषिका एवं परिणामों से बचाने के लिए अपने पिता आदिनाथ के साधनामार्ग को अपनाकर मुनिधर्म में दीक्षित हो गये । लेकिन बाहुबली न तो भरत का निमन्त्रण स्वीकार करते हैं और न पिता की शरण में जाते है और न मंत्रियों से विशेष परामर्श करते है। उन्हें पता था कि यह आमन्त्रण चक्रवर्ती ने अपनी दिग्विजय को संपन्न करने के लिए तथा उन्हें नमस्कार करने के लिए भेजा है। इसलिए बाहुबली राजधर्म का पालन करते हुए अपनी सत्ता की रक्षार्थ युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं और भरत के दूत दक्षिणांक से कहते है-*"आप अच्छी तरह जानते है कि चक्तवर्ती बनने के मार्ग में महाराज भरत हमें बाधा समझ रहे हैं। इसलिए यह प्रश्न भाई-भाई के प्रेम का नहीं है, अधिकारों के संघर्ष का है। प्रेम और अहिंसा की वेदी पर हम अपने प्राणों का विसर्जन कर*

सकते हैं, परन्तु अधिकारों का विसर्जन हम बिना युद्ध के नहीं करेंगे।[1]

अंत में दोनें भाइयों की सेनायें आमने-सामने आकर टकराने को सिद्व हो गई। दो महाशक्तियों के टकराव से उत्पन्न विसंगति के दुष्परिणामों से सामान्य-वर्ग भयभीत है। इस निरंकुश विभीषिका पर नियंत्रण के लिए वे सर्वसाधारण की राय से युद्ध की एक नवीन पद्धति 'धर्मयुद्ध' का आविर्भाव करते हैं। 'धर्मयुद्ध' व्यक्तिगत स्तर पर महाराज बाहुबली में 'दृष्टियुद्ध', 'जलयुद्ध' और 'मल्लयुद्ध' की कसौटी पर सर्वश्रेष्ठ सिद्ध योद्धा को विजयी घोषित करने की नैतिकता पर आधारित है। युद्ध की विभीषिका से बचाने लायक जनता का यह नवीन प्रयोग उनके चिन्तन एवं समझ को व्यक्त करता है। दोनों भाइयों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा में सेनाओं का भी कोई काम नहीं है।

तीनों प्रकार की चुनौतियों में बाहुबली विजय के हकदार बनते है। ऐसी स्थिति में अपनी पराजय से कुंठित भरत अनुज बाहुबली पर अपने 'दिव्य-चक्र' का प्रयोग करते है। लेकिन चक्र बाहुबली का कोई घात नहीं करता है। बाद में बाहुबली सत्ता-मोह छोडकर तप का मार्ग अपना लेते है।

इस नाटक में प्रागैतिहासिक काल के गौरव को पुनर्जीवित करने वे साथ-साथ समसामयिक संदर्भ में भी देखने-परखने की कोशिश की गई है। एक ओर भरत अपने चक्रवर्तित्व- विजय की संपूर्णता के नाते सत्ता पर आधिपत्य के लिए विवश है तो दूसरी ओर महाराज बाहुबली अपनी स्वतंत्र सत्ता की रक्षा के लिए दृढ संकल्प है। यहाँ दोनों भाई आधुनिक मानव का ही प्रतिनिधित्व करते हैं।

1.'सत्ता के आर-पार' - विष्णु प्रभाकर संपूर्ण नाटक भाग 4- पृ. सं- 408

वर्तमान युग में व्यक्ति और सत्ता का संबन्ध अनिवार्य हो गया है। सत्ता का उन्नायक अंग व्यक्ति ही है, किन्तु सांप्रतिक व्यक्ति में राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना अब चुकती जा रही है। आज व्यक्ति सत्ता-स्वार्थ एवं पद-लोलुपता के ताण्डव नृत्य में सम्मिलित हो गया। पद की रक्षा के लिए व्यक्ति को जब अपार कीमत चुकानी पडी तो वह युद्ध करने से भी हिचकते नहीं। फलस्वरूप मानवीय रिश्तों का अवमूल्यन हो गया। यहाँ भरत और बाहुबली के द्वन्द्व-युद्ध के संबन्ध में एक प्रहरी का कहना है- *"युद्ध जीवन के शत्रु है, इसलिए कृषि की शिक्षा देनेवाले भगवान् आदिनाथ ने युद्धों से दूर ही रहने को कहा है। युद्ध होते हैं तो सब विद्याएँ, व्यापार शिल्प सब नष्ट हो जाते हैं। युद्ध होंगे तो जीवन नष्ट होगा ही। कैसा आश्चर्य, पिता ने जीवन दिया, पुत्र उसे नष्ट करने पर तुले हैं। जहाँ सत्ता की भूख है वहाँ युद्ध हैं।"*[1]

सत्ता की भूख व्यक्ति के विवेक को समाप्त कर देती है। सत्ता के नशे में दुनिया भर से युद्ध करता है ; जिसका परिणाम भोगना पडता है सामान्य जनता को। युद्ध तो सर्वग्रासी है। युद्ध में असंख्य निरपराध व्यक्तियों को व्यर्थ ही प्राणों से हाथ धोना पडता है। सत्ता की इस सर्वभक्षी भूख के कारण अनेक व्यत्ति अनाथ और अपाहिज हो जाते हैं। युद्ध मनुष्य को क्रूर बनाकर मानवीय संबन्धों को विच्छिन्न कर देता है साथ ही समाज में अराजकता को जन्म देता है। अराजकता और असुरक्षितता फैलाना मानव की विद्रोहात्मक वृत्ति है। जब प्रचलित व्यवस्था और शासन में अपने अहं की तुष्टि के लिए जगह नहीं. मिलती तब मन

1.'सत्ता के आर-पार'- विष्णुप्रभाकर संपूर्ण नाटक भाग 4 - पृ.सं - 416

इस प्रकार की चेतनाओं के प्रति उन्मुख होता है। यह वृत्ति समाज में विघटन का बीज बोती है तथा सर्वत्र असुरक्षा की भावना का निर्माण होता है। इस नाटक में एक स्थान पर धर्मगुरु का कहना है- *"मैं जानता हूँ दो पर्वतों के घर्षण से जैसे उनके बीच का सब कुछ चूर्ण हो जाता है उसी प्रकार आदिब्रह्मा के दो पुत्रों के संघर्ष में न केवल सैनिक ही हताहत होंगे बल्कि नागरिक जीवन भी नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा। अभी-अभी जो नये समाज की रचना हुई है वह छिन्न-भिन्न हो जाएगी। अराजकता फैल जाएगी।"*[1]

कभी-कभी सत्ता का लोभ व्यक्ति को अपराधी बना देता है। वह सत्ता की प्राप्ति तथा उसकी सुरक्षा के लिए अनेक चालें चलाता है। सत्ता प्राप्ति के लिए ही नहीं, अपितु सत्ता को सुरक्षित रखने के लिए भी सत्ताधीश विविध चालों का प्रयोग करते हैं। भरत के अनुसार एकछत्र शासन के अन्तर्गत देश के सभी छोटे-छोटे राज्यों को संगठित करना चक्रवर्ती का कर्तव्य है, राज्यलिप्सा नही। उनका कहना है- *"शासन-तन्त्र की निर्बाध सत्ता का अर्थ राज्य-लिप्सा नहीं है। क्यों नहीं समझता वह कि छोटे-छोटे राज्य धरती की अस्मिता की रक्षा नहीं कर सकते। उसी असुरक्षा की भावना को मिटाने के लिए मैं ने चक्रवर्तित्व चाहा है। किसी अहंकार या लिप्सा के कारण नहीं।"*[2]

राज्य -लिप्सा की भावना किसी शासक के मन में इतनी गहरी और विकृत रूप में धंसी रहती है कि वह हिंस्र बनकर शत्रुराष्ट्र पर ही आक्रमण नहीं

---

1. 'सत्ता के आर-पार'- विष्णु प्रभाकर संपूर्ण नाटक भाग 4-पृ. सं - 422

2. 'सत्ता के आर-पार'- विष्णु प्रभाकर संपूर्ण नाटक भाग - 4 पृ. सं - 418

करता बल्कि अपने भाई-बन्धुओं को भी मिटाता है। यहाँ भरत को चक्रवर्ती बनने केलिए सभी भाइयों को अपने चरणों में झुकाना है। इसके संबन्ध में भरत राजगुरु से पूछता हे- *"जब तक हम अपने सभी सहोदरों और परम बलशाली, परम सुन्दर, भाई बाहुबली को अपने चरणों पर नहीं झुकाते तब तक हम चक्रवर्ती सम्राट् का विरुद नहीं. धारण कर सकते ?"*[1]

एक ओर जहाँ व्यक्ति राष्ट्रहित के लिए सर्वस्व समर्पित कर देता है, सभी रिश्तों को नकार कर देता है तो दूसरी ओर व्यक्ति की चेतना इसके एकदम विपरीत दिशा में झुकी हुई है। सत्ता के लालच में वह राष्ट्र के हित-अहित को कुछ नहीं समझती यहाँ तक कि अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए दुश्मनों से समझौता करने में भी उसे कोई संकोच नहीं होता । इस नाटक में भरत के मन में द्वन्द्व की भावना है क्योंकि एक ओर उन्हें सत्ता की सुरक्षा करनी है तो दुसरी ओर भाइयों का विरोध सहना पडता। भरत के मानसिक द्वन्द्व को विष्णु प्रभाकर एक नारीमूर्ति के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि- *"राजधर्म बहुत गहन है। वहाँ संसारिक दृष्टि से उचित-अनुचित का, नाते-रिश्तों का कोई अर्थ नहीं है। अर्थ है केवल अपना कर्तव्यपालन करने का और आपका कर्तव्य है टुकडों में बँटी धरती को एक करना ....।"*[2]

राज्य-लिप्सा मानव मन की एक अनिर्बाध चेतना है कि जो आत्म-पर भावबोध से परे होती है। यह वृत्ति अपने आत्मीय, रागात्मक संबन्धो को भी

1.'सत्ता के आर-पार' -विष्णु प्रभाकर संपूर्ण नाटक भाग 4 -पृ.सं- 393

2. 'सत्ता के आर-पार' -विष्णु प्रभाकर संपूर्ण नाटक भाग 4 -पृ.सं- 396

कुचलती है। सत्ता के प्रति मोह समाज पर अपना अधिकार जमाना चाहती हे। बढती हुई सत्तांधता युद्धों को जन्म देती है। इसके संबन्ध में भरत के एक भाई राजकुमार कहते है - *"युद्ध और सत्ता दोनों का अटूट संबन्ध है। जब हम युद्ध को स्वीकार नहीं करना चाहते तो सत्ता को कैसे कर सकते हैं। सत्ता से चिपके रहना चाहते है तो युद्ध से कैसे बच सकते है?"*[1]

युद्ध में पराजित मानव को विजेता के अधीन होना पडता है। कभी-कभी पराजित मानव का मन विजेता के प्रति हिसा तथा घृणा से भर उठता है। तब वह उसके विरुद्ध विद्रोह करने का प्रयास करता है। अगर वह विद्रोह में विजय नहीं प्राप्त कर सकता तो वह किंकर्तव्यमूढ होकर खंडित बन जाता है। यहाँ विजयी बाहुबली के प्रति भरत विद्रोह करने का प्रयास करता है। भरत के प्रहार के समय बाहुबली पूछता है- *"पराजय स्वीकार नहीं कर सके भैया ! खींझ उठे ! कैसी है यह सत्ता ? कैसा है यह चक्रवर्तित्व ? इस नश्वर राज्य के लिए भैया धर्मयुद्ध की मर्यादा भूल गये। उन्होंने चक्र उठा लिया मुझे मारने को यह जानते हुए भी कि चक्र मेरा कुछ नहीं बिगाड सकता। धिक्कार है ऐसी सत्ता को, धिक्कार है उसके मोहजाल में फँसनेवाले को। क्या मैंने ऐसी रक्त-पिपासु मर्यादाहीन सत्ता के लिए युद्ध किया?"*[2]

आध्यात्मिक अनुभूति की महत्ता को व्यक्त करते हुए नाटक में इस तथ्य पर बल दिया गया है कि मन की चंचल वृत्ति के कारण उत्पन्न मानसिक द्वन्द्व पर

1.'सत्ता के आर-पार' - विष्णु प्रभाकर संपूर्ण नाटक भाग 4- पृ.सं - 401

2.'सत्ता के आर-पार'- विष्णु प्रभाकर संपूर्ण नाटक भाग- 4 पृ.सं - 432

अंकुश लगाने केलिए सब से श्रेष्ठ उपाय तप करना ही है। बाहुबली को तप के बल से ऐसी अध्यात्म शक्ति प्राप्त हो जाती है कि संसार का संपूर्ण वैभव उनके पैरों पर लौटने को तैयार हो जाता है। भरत उनके सम्मुख उपस्थित होकर अपना चक्रवर्तित्व उनके चरणों पर समर्पित करते वक्त बाहुबली उनको समझाते हुए कहते है कि-*"भरत चक्रवर्ती, कौन मैं, कौन तू ! सब सबके है। यही ज्ञान मुक्ति है। यही कैवल्य है।"*[1]

प्रस्तुत नाटक सत्ता और अध्यात्म का तत्कालीन व्यक्तिगत स्वरूप स्थापित करने के साथ-साथ उस व्यवहार को वर्तमान स्तर पर मूल्यांकन करने का प्रयास भी करते है। अतीत और वर्तमान के इस पारस्परिक जुडाव के संबन्ध में लेखक भूमिका में स्पष्ट करते है -*"इसी सत्ता की प्रकृति का अध्ययन हमें मानव की मूल प्रकृति और उसके उदात्तीकरण की ओर ले जाता है। यह जड़ की ओर लौटना, जड़ होने के लिए नही है, बल्कि उसके स्वभाव को समझकर उसे वर्तमान संदर्भ में रूपान्तरित करना है।"*[2]

मनुष्य के रूपान्तरण और उदात्तीकरण के प्रतीक बाहुबली पूर्ण रूप से अहं मुक्त होकर ही तप और अध्यात्म की पूर्णता प्राप्त करते है। इस नाटक में विष्णु प्रभाकर आम जनता की दमित मानसिकता को उजागर करने केलिए जनशक्ति के मूर्त रूप की स्थापना करके उनके प्रति अपनी हमदर्दी प्रकट करते हैं। सत्ता यदि मनुष्य को अहंकारी एवं निरंकुश बनाती है तो जनचेतना केन्द्रीय

1.'सत्ता के आर-पार'- विष्णु प्रभाकर संपूर्ण नाटक भाग- 4 पृ.सं - 436

2. 'सत्ता के आर-पार' विष्णु प्रभाकर-भूमिका- पृ. सं - 12

शक्ति के संयम से प्रतिबन्धित करती है। यदि जन-आन्दोलन मुखर हो जाए तो राजसत्ता को उसके सामने नतमस्तक होना पडता है। आदिकाल की उस जनशक्ति के व्यवहारों से आज का जन अपने चारों ओर व्याप्त आतंक, अन्याय और अत्याचार को खत्म करने का मानसिक साहस प्राप्त कर सकता है। आज यही मुक्ति हर मानव की प्रथम अनिवार्यता है जैसे कि उस समय में भरत और बाहुबली की थी।

राजसत्ता को चुनौती देनेवाली जनशक्ति - 'गान्धार की भिक्षुणी'

वर्तमान युग में सत्ताधारी शासकों की नीति में विसंगतियाँ ही विसंगतियाँ दृष्टिगत होती है। वे अपनी सत्तांधता के शिकंजों में सामान्य जनता को उलझाकर उसका रक्तपान करने में लीन हैं। वे भ्रष्टाचारी अवसरवादी, सुविधाभोगी और षड्यंत्रवादी हैं। वे अपनी सत्ता, शासन, पद और प्रतिष्ठा का उपयोग देशहित की अपेक्षा निजहित के लिए करते हैं। वस्तुतः जनता की सेवा करना उनके दुःख दूर करना, सामाजिक समता स्थापित करना, सामाजिक न्याय देना उनका उत्तरदायित्व है, परन्तु वे इन उत्तरदायित्वों से मुक्त होकर अपनी चतुरता एवं धोखाधडी से नई तरकीबों की ईज़ाद कर जनता के शोषण में व्यस्त है। रक्षक ही भक्षक बने है। वह विसंगति देखकर सामान्य जनता में मोहभंग की स्थितियाँ जन्म लेने लगी है। हमारे इतिहास में भी ऐसे अनेक सत्ताधारी शासकों को देखने को मिलते है। विष्णु प्रभाकर का ऐतिहासिक नाटक 'गान्धार की भिक्षुणी' इसका उत्तम उदाहरण है। इसमें लेखक राजसत्ता और वंश-परंपरा के विरुद्ध जनशक्ति और प्रतिभा की प्रतिष्ठा करने का प्रयास करते है।

इस नाटक का मूल कथ्य इतिहास के उस दौर से लिया गया है, जहाँ हूणों का अत्याचार अपने चरम उत्कर्ष पर है। मालवा राज्य हूणों का अधीन हो गया था। गुप्त सम्राट् भानुगुप्त के देहान्त के बाद गुप्त साम्राज्य की राज्यश्री सदा के लिए धूमिल हो गयी। उस समय तोरमाण के पुत्र मिहिरकुल समूचे मालवे पर अधिकार करके कठपुतली- सा अपने परिव्राजक महाराज को गद्दी पर बिठाते है। मिहिरकुल स्वयं एक आततायी हिंसक एवं अनाचारी राजा है। उनवे अधीनस्थ सैन्य शक्ति उनके इन दुर्व्यवहारों का खुलेआम प्रयोग कर रही है। संपूर्ण मालवा उनके नृशंस अत्याचारों से त्रस्त है। लूटपाट, आगजनी, रक्तपात और अन्याय हूणों के लिए सहज विनोद के साधन हैं। शीलहरण भी उनके लिए मात्र वासनापूर्ति का आनंदपूर्ण साधन है। उनकी अनैतिकता की कोई सीमा नहीं है, अतः उनके अत्याचारों की वेदी पर औरतें ही सबसे अधिक बलि चढा रही है। मासूम और अबोध बच्चों को भी वे निर्ममता से वध करने में नहीं हिचकते। यह काल सभ्यता और संस्कृति के पतन का समय है। ऐसी स्थिति में मालवा को बचाने के लिए वहाँ की सारी प्रजा हूणों के खिलाफ़ उठ खडी हुई। उसका अगुआ 'जनता का नेता' जनेन्द्र यशोधर्मन था। वह किसी राजवंश का न तो प्रतिनिधी है और न किसी राजवंशीय परंपरा की कडी। वह जनता के बीच से उभरकर आता है।

नाटक के प्रारंभ में गान्धार की भिक्षुणी आनन्दी ने अपनी सखी मालवी के साथ आकर मालव प्रदेश के लोगों के भीतर हूणों के अन्याय के विरुद्ध क्रोध का दावानल प्रस्फुटित कर दिया है। हूण सरदार द्वारा शील-हरण हो जाने

के बाद नारी सुलभ लज्जा और अपमान से आनन्दी जीवन का अंत करना चाहती है। पर यशोधर्मन की प्रेरणा और सान्त्वना के फलस्वरूप वह उस अन्याय का बदला प्रतिशोध से लेना चाहती है। इसके लिए वह सामान्य जीवन से विचलित गान्धार की भिक्षुणी बन जाती है। गौरव उसकी अवैध सन्तान है। उसे वह तक्षशिला की एक भिक्षुणी को सौंप देती है। इस प्रकार एक माँ होते हुए भी वह अपने बेटे को वात्सल्य दने में असमर्थ थी। उसका कहना है- *"मेरे दिल की धड़कन मुझे कुछ भी तो नहीं करने देती। मेरी छाती के भीतर माँ का प्यार उमड रहा है। मैं माँ हूँ ! नहीं, नहीं, यह मैं क्या सोचने लगी ? मैं माँ नहीं हूँ मैं ने माँ होना कभी नहीं चाहा था, पर हो गई। यह अनचाहा होना ही तो मेरी वेदना का कारण है। मैं उससे नाता तोडकर भी नहीं तोड पा रही थी"।*[1]

आनन्दी का आत्मसंघर्ष, अभिशप्त मातृत्व यशोधर्मन के प्रति अपूर्ण प्रेम आदि नाटक के संघर्ष में मानवीय धरातल को दृढ करता है। अपने अवैध पुत्र के वहशी पिता हूण सरदार की नृशंस हत्या करके जहाँ आनन्दी अपने प्रतिशोध को पूर्ण करके शान्त होती है, वही प्रेमी जनेन्द्र की प्राणरक्षा के लिए स्वयं को बलिदान कर अपने अव्यक्त प्रेम को मूर्त रूप प्रदान करती है। आनन्दी के संबन्ध में स्वयं विष्णु प्रभाकर भूमिका में लिखते हैं- *"नाटक का आरंभ करते समय वह नारी मेरे सामने नहीं थी, पर जैसे ही शब्द कागज़ों पर अंकित होने लगे तो उन शब्दों के पीछे से आनन्दी की आकृति उभर उठी। वह आकृति उस युग की वेदना और बलिदान की आकृति है। उस युग के इतिहास में उसका नाम भले ही न*

1.'गान्धार की भिक्षुणी'-विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग- 5 -पृ. सं - 114

लिखा हो, पर तत्कालीन पीडित जनता की, जनता के उस अद्‌भुत विद्रोह की वह प्रतीक है।[1]

लेखक राजसत्ता एवं वंश परम्परा के विरुद्ध जनशक्ति और प्रतिभा की प्रतिष्ठा करते है। राजा सत्तामद् और अयोग्य होते ही शासन निरंकुश और अन्याय से युक्त हो उठता है। ऐसी परिस्थिति में प्रजा पीडित होती है। असहनीय होते अत्याचार के विरुद्ध जनशक्ति की छटपटाहट यहाँ देखने को मिलती है। इस छटपटाहट से मुक्ति की आकांक्षा दृढ दिखाई देती है। आनन्दी और जनेन्द्र यशोधर्मन संगठित होकर इस शक्ति का प्रयोग करते है। एक स्वस्थ, सुयोग्य और संवेदनशील सत्ता के लिए वे कुल और वंश की अपेक्षा 'प्रतिभा' को अधिक महत्व देते हैं। एक सुयोग्य प्रजापालक शासक वंश परंपरा के द्वारा प्राप्त नहीं किये जा सकते। अपने इस मत को व्यक्त करते हुए यशोधर्मन कहते है- *"एक हाथ में केन्द्रित होकर शक्ति अन्याय और विनाशकारी युद्धों का स्रोत बन जाती है। सत्ता का मोह सद् - असद् के विवेक को नष्ट कर देता है।*[2]

यशोधर्मन के नेतृत्व में जनशक्ति का विद्रोह तूफ़ानी अंधड के समान हूण शक्ति को तहस-नहस कर देता है। इस राजनीतिक परिदृश्य में जनेन्द्र के राजनीतिक सुझाव न केवल उस काल के लिए शुभ सिद्ध हुए हैं वरन् आज के संदर्भ में भी महत्वपूर्ण और वांछनीय है। परंपरागत राजवंश में सत्ता एक व्यक्ति के हाथ में केन्द्रित रहती है और पूर्व नियोजित अधिकारों की प्राप्ति के कारण

1.'गान्धार की भिक्षुणी'-विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग 5 भूमिका - पृ. सं - 79

2.'गान्धार की भिक्षुणी'-विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग- 5 पृ. सं - 141

लोगों को कभी-कभी राजा के अन्यायी, अविवेकी और अनाचारी अस्तित्व और व्यवहार को झेलने के साथ-साथ देश के पतन को भोगने को विवश होती है। क्योंकि प्रत्येक राजा सफल और प्रभावी शासक नहीं बन सकता और अयोग्य शासक के हाथ में सत्ता को सौंपना यानि राज्य को निरन्तर पतन में डुबोये रखने जैसा है। जनेन्द्र की कल्पना राष्ट्र को उन्नति की ओर ले जाता है जैसे - *"मैं चाहता हूँ इस देश के नागरिक सदा अपने शासक चुनते रहें, वंश से नहीं, प्रतिभा से जनेन्द्र का वरण हो।"*[1]

यशोधर्मन एक ओर तो शस्त्र से हूणों को पराजित करता है किन्तु आनन्दी और मिहिरकुल की बेटी शहज़ादी दोनों चाहती है कि हूणों और भारतीयों के बीच सौमनस्य बढे । तोरमाण ने समन्वय की यही नीति अपनायी थी परन्तु उसका पुत्र मिहिरकुल अत्याचारी शासक बना। उनके संबन्ध में भगवतशरण उपाध्याय ने लिखा है - *"वह पिता से भी आधिक नृशंस था और क्रूरता के कार्यों से बडा प्रसन्न होता था । हूएन-त्सांग और कल्हण, दोनों ने उसकी क्रूरता का वर्णन किया है। चीनी यात्री ने लिखा है कि मिहिरकुल बौद्वों के प्रति असहिष्णुता का व्यवहार करता था। उन्हें वह मलवा और उनके विहारों तथा स्तूपों को जलवा देता था। उसका एक विचित्र व्यसन हाथियों का वध करना था। हाथी पहाड की चोटी पर चढाकर नीचे गिरा दिये जाते थे। गिरते हुए हाथियों का कातर चिंघाड उसे बडा प्रिय लगता था।"*[2]

1'गान्धार की भिक्षुणी'-विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग- 5 पृ.सं-140

2'गान्धार की भिक्षुणी'-विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग- 5 भूमिका- पृ.सं-83-84

यशोधर्मन के नेतृत्व में मालवा की जनता ने मिहिरकुल और उनकी हिंसक सेना को पराजित कर दिया तो मिहिरकुल अपने देश वापस लौट गया। लेकिन उनकी बेटी शहज़ादी ने उनके साथ जाना स्वीकार नहीं किया। उसका कहना है कि- *"आप मेरा सुख मुझ से नहीं छीन सकेंगे। मेरा सुख इस मुल्क में रहने में है। और मेरा सुख सिर्फ मेरा नहीं है, वर मेरी कौम और मेरे मुल्क का भी सुख है।"* [1] शहज़ादि को जब यशोधर्मन के सम्मुख लाया जाता है तो वह निर्भीक होकर कहती है कि वह हूणों और भारतवासियों का भावात्मक सम्मिलन चाहती है। वह चाहती है कि हूण भारत में शासक बनकर नहीं, भारत की प्रजा बनकर रहे। जनेन्द्र को विश्वास हे कि युद्ध से एक शक्ति परास्त हो सकती है, उसके अन्दर के ईर्ष्या-द्वेष को खत्म करने का एकमात्र उपाय यही है कि उन्हें अपने में विलय कर लिया जाए। उनका सुझाव है कि- *"निषेध की नीति किसी भी तरह हमको लाभ नहीं पहुँचा सकती। उस नीति का विरोध भी हमारी युद्ध नीति का एक अंग होना चाहिए.....।"* [2]

यशोधर्मन द्वारा वंश परंपरा और सवर्ण-विवाह का विरोध उनकी दुरदर्शिता को व्यक्त करता है। क्योंकि उस समय समाज में बढ़ रही जाति-पाँति के भेद-भाव, सवर्ण विवाह द्वारा अन्तर्जातीय वैवाहिक संबन्धों को नकारना और हूणों को रक्त शुद्धि के बाद आर्यों में सम्मिलित करना जैसी दुर्बल मनोवृत्तियाँ अपना विस्तार कर रही थी. जिनके प्रति जनेन्द्र का विचार सुधारात्मक दृष्टिकोणों से समृद्ध है।

1.'गान्धार की भिक्षुणी'-विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग-5 पृ.सं-133

2.'गान्धार की भिक्षुणी'-विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग-5 पृ.सं-138-139

इस नाटक के जननेता क्रान्तिकारी यशोधर्मन तत्कालीन युग में प्रजा की शक्ति है जिसकी आवश्यकता आज के स्वार्थी, सत्तालोलुप एवं भ्रष्टाचार के विरुद्ध पुनः वांछनीय है। विष्णु प्रभाकर ने भूमिका में लिखा है- *"आज का भारत इस युग की कथा से बहुत कुछ सीख सकता है। सीखने का अर्थ उस युग को वापस लाना नहीं है, पर उसकी भावना को आत्मसात करके तत्कालीन परिस्थितियों से जूझना है।"*[1]

अमानवीयता से जूझनेवाला एक फ़क्कड व्यक्तित्व - 'केरल का क्रान्तिकारी'

वर्तमान युग में राजनैतिक क्षेत्र में असीम सत्ता-लिप्सा के कारण व्यक्ति नीतिपूर्ण व्यवहारों को तिलांजलि देकर अपनी सत्ता सुरक्षा के लिए कुटिल से कुटिल ऐसी चालें चलाता जिसमें मानवता के समस्त प्रतिमान झुठला दिये जाते है तथा दया-धर्म की कल्पना एवं कर्म-कुकर्म की परवाह भी नहीं की जाती। इस प्रकार षड्यत्र रचना मानव मन की कुटिलता है। इसमें झूठ,छल-कपट, धोखाधडी आदि का समावेश होता है। अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए इसमें किसी को धोखा दिया जाता, है किसी को छल-कपट के जाल में फंसाकर उनका जीवन अस्तव्यस्त किया जाता है। शासक अपनी सत्ता एवं प्रभाव को बनाये रखने के लिए पड्यंत्र के साथ-साथ अत्याचार भी करते हैं। शासकों के इस अत्याचारी उत्पीडन से शोषित मानव अवसर पाकर उनके विरुद्ध विद्रोह करने से हिचकते नहीं। भारत के इतिहास में स्वतंत्रता के पूर्व देश के विभिन्न अंचलों में विदेशी सत्ता के विरुद्ध अनेक विद्रोह हुए है। तत्कालीन गोरी सरकार से लोहा लेनेवालों की कोटि में

1.'गान्धार की भिक्षुणी'-विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग -5 भूमिका- पृ.सं-85

उत्तर भारत के झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, कित्तूर की रानी चेनम्मा, कर्नाटक के टीपू सुलतान के साथ केरल का वेलुत्तम्पी दलवा भी मौजूद थे। वे पिछले सदी के आरंभ में बढते हुए ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लोहा लेते थे। 'केरल का क्रान्तिकारी' नाटक में विष्णु प्रभाकर वेलुत्तंपी दलवा के अदम्य साहस और अभूतपूर्व बलिदान का चित्रण करते है।

कुशल प्रशासक वेलुत्तम्पी अपराध और अन्याय पर कडी सज़ा देने के साथ-साथ राजकोष की दुर्दशा दूर करने की पूरी कोशिश करते है। दीवान वेलुत्तंपी के शासनकाल में हुए निर्माण कार्य, न्याय और प्रशासनिक सेवाओं तथा सुधारात्मक कार्यों को न केवल राजा तथा प्रजा सराहते अपितु अंग्रेज़ कंपनी बहादुर के एजेन्ट कर्नल मैकाले और गवर्णर जनरल लॉर्ड वेलस्ली भीं सराहता है।

जब अंग्रेज़ कंपनी दक्षिण में आई तब केरल में अनेक राजा अलग-अलग छोटे राज्यों के प्रभु बने थे। उनमें तिरुवितांकुर की रियासत सबसे बडी थी, बाद में कोचिन रियासत और इसके बाद कालिकट की बारी थी। इन छोटे-छोटे राजाओं की प्रतिद्वन्द्विता ऐसी थी कि वे आखिर कंपनी की मदद लेने को मज़बूर हुए। कंपनी सरकार की मित्रता के लिए वे भारी नज़राने भेंट करने लगी। अंग्रेज़ों का छल-कपट जानते हुए भी केरलीय नरेश अपनी गद्दी की सुरक्षार्थ उनकी सारी शर्तें स्वीकार करते गये। इस सिलसिले में राज्य कंपनी बहादुर को चार लाख प्रतिवर्ष देता था। लेकिन उस समय कोष में उतना पैसा नहीं था। विवश होकर तंपी को यह निश्चय करना पडा कि सैनिकों का वेतन कुछ कम कर दिया जाए। किन्तु यह समाचार पाते ही सेना में विद्रोह भड़क

उठा। तम्पी मैकाले की मदद से विद्रोह को दबाते है लेकिन गवर्णर वैलेज़्ली इस अवसर का पूरा लाभ उठाते है। इस सहायता के बदले गवर्णर नई संधि का प्रस्ताव करते है। इस संधि की शर्तें बडी अपमानजनक है। इस शर्त के अनुसार तिरुवितांकुर राज्य को अंग्रेज़ी कंपनी केलिए आठ लाख रुपये प्रतिवर्ष नज़राने के रूप में सौंपने के समझौते पर हस्ताक्षर करना पडा। पहला नज़राना इससे कम था। इस अपमान की घूँट को तम्पी चुपचाप पी गये। मगर वे भीतर ही भीतर बडी क्रान्ति की तैयारियाँ कर रहे थे । इसके लिए तंपी कोचिन के दिवान पालियत्त अच्चन से सैनिक सहायता की प्रतीक्षा कर रहे थे। कालिकट नरेश सामूतिरि से भी आश्वासन मिलता था। कुछ विदेशी सहायता की आशा भी थी। लेकिन ऍन वक्त पर वे छले गये। कर्नल मैकाले छल-प्रपंच में माहिर है। राजमहल के कई कर्मचारी तम्पी के खिलाफ़ महाराज के कान भर सके तथा कंपनी सरकार को गुप्त खबरें भी पहुँचाते रहे। इस प्रकार तंपी के भरसक प्रयासों को कतिपय देशद्रोही मुखबिरों की जासूसी खबरें धराशायी कर देती है। अंग्रेज़ों की राजनीति के समक्ष तंपी परास्त हो जाता है। परन्तु इस पराजय में भी अपने आप को महाराजा द्वारा राजद्रोही घोषित करवा देता है। क्योंकि इससे राज्य तो फिरंगियों के कोप से बच जाता है। उनका कहना है- *"महाराज ! राज्य को बचाना है। आप मुझे विद्रोही घोषित करेंगे और तुरन्त करेंगे। फिरंगियों की सेना किसी भी क्षण यहाँ पहुँच सकती है। यह मेरा और आप का प्रश्न नही हैं। पूरे राज्य का प्रश्न है। राज्य को बचाने केलिए आपको साहस बटोरना होगा और मुझे कडे से कडा दण्ड देना होगा। फिर भी प्रार्थना करता हूँ कि मुझे तुरन्त जाने की*

अनुमति दीजिए। मैं फिरंगियों के हाथ में नहीं पडना चाहता । मैं उनके आने से पहले यहाँ से निकल जाना चाहता हूँ।"[1]

बाद में वे मण्णटि क्षेत्रम् के आसपास एक छोटे से देवी मंदिर में शरण लेते है। जब चारों ओर से फिरंगियों की सेना उनको घेर लेती तो वे अपने सीने में कटार मारकर आत्महत्या करते है।

यह नाटक अंग्रेज़ी शासन व्यवस्था से मुक्ति की आरंभिक पहल है, वेलुत्तम्पी दलवा जिसकी शुरूआत करके केरलवासियों के हौसले बुलन्द करते है। केरल राज्य की परंपरागत शासन व्यवस्था श्री पद्मनाभदेव और उनके प्रतिनिधियों के द्वारा सात्विक एवं धर्मनिष्ठ व्यवहारों के अधीन चलती रही। फिर टीपू सुल्तान के आक्रमण और फिरंगियों के प्रभावशाली बनने तक केरल में सुख एवं शान्ति का वातावरण छाया रहा। किन्तु अंग्रेज़ों की राजनीति के सामने केरल का शासक विश्वास के हाथों छला गला क्योंकि अंग्रेज़ों की दोस्ती दुश्मनी में छिपकर आती है। इसलिए शासक लोग आँखें मूँदकर अंग्रेज़ी नीति पर विश्वास करने लगे। लेकिन अन्त में वे छले गये।

सन्धियों के बावजूद ब्रिटिश सरकार अपने वचन से हटकर राज्य के प्रशासन और कोष में हस्तक्षेप करने लगी। अंग्रेज़ों के इस बढते लालच और अनीती से केरल में विद्रोह उत्पन्न हुआ, जिसका नेतृत्व वेलुत्तम्पी दलवा ने किया। अंग्रेज़ों की कूटनीति के फलस्वरूप केरल का सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन अस्तव्यस्त हो गया है। इसके संबन्ध में वेलुत्तंपी का कहना है- *"छल कपट*

1.'केरल का क्रान्तिकारी' -विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 72-73

से राज्य हथियाना उनकी परंपरागत नीति है। अगर हमारा राज्य उनके अधिकार में चला गया तो दोस्तों, वे हमारे राजमहलों और देवालयों, को जन-सभाओं को, हमारी परंपराओं और रीति-नीतियों सबको नष्ट कर देंगे। नमक से लेकर सभी वस्तुओं पर कर लगा देंगे, खेतों को नाप कर लगन वसूल करेंगे। छोटे-छोटे अपराधों के लिए कडे से कडा दण्ड देंगे। मन्दिरों पर झण्डे फहरायेंगे। जाति-भेद की चिन्ता किये बिना ब्राह्मण-नारियों से दुर्व्यवहार करेंगे। ऐसे नाना प्रकार के अधर्म करने में उन्हें तनिक भी संकोच नहीं होगा।"[1]

'केरल का क्रान्तिकारी' भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रारंभिक प्रयासों का चित्रांकन है। यह संग्राम वेलुत्तम्पी दलवा के व्यक्तिगत संघर्ष से आरंभ होकर राष्ट्रव्यापी संग्राम में परिवर्तित होता है यह उनकी सीमित स्वायत्तता के फलस्वरूप उत्पन्न प्रतिशोध है। अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध ये हमारे व्यापक और विराट जन आन्दोलन चेतना का आधार थे। राज्य में अनेक षड्यंत्र चल रहे थे। धीरे-धीरे जनता में विद्रोह की भावना पनपते । वेलुत्तम्पी की स्वाधीनता की आकांक्षा को उनकी 'चेतना' अम्मुकुट्टी जन-जन में प्रसारित करती है। तंपी भी जनता के सामने सभी स्थितियाँ प्रकट करता है। इस के फलस्वरूप जन-चेतना का ज्वार उमडता है। कई बार देशी सेना को पराजय का सामना करना पडता है। कोल्लम की पराजय के बाद सेना का खोया हुआ मनोबल दुबारा ऊँचा करने का प्रयास करती हुई अम्मुकुट्टी कहती है- *"हम अपनी मातृभूमि को गुलाम नहीं होने देंगे। हम प्राण देंगे पर गुलामी का पट्टा गले में नहीं डालेंगे। हमारा प्यारा*

1.'केरल का क्रान्तिकारी' विष्णु प्रभाकर- पृ.सं- 53-54

दलवा हमारे साथ है। वह सेना का संचालन करते है। घूम-घूमकर जनता का उत्साह बढाते है, किसलिए ? इसलिए न कि वे फिरंगी हमारी प्यारी मातृभूमि को कलंकित न कर सकें। हमारे नारीकेल और केलों के कुंज उनकी शरणगाह न बनें हमारे समुद्र की नाचती-थिरकती लहरें उनके चरण न धोयें। ठीक है कोच्चि में हमारी हार हुई। रेज़ीडेंट निकल भागने में सफल हो गया। यह भी ठीक है कि कोल्लम में भी हम पराजित हुए।"[1]

दीवान पद पर आसीन तंपी के कठोर न्याय एवं दण्ड-विधान ने राज्य में उनके अनेक शत्रु को जन्म दिये थे। एक ओर यह कठोर दंड-व्यवस्था उनकी सुदृढ शासन व्यवस्था का मुख्य आधार था तो दूसरी ओर राजधानी में पल रहे देशद्रोहियों के लिए आतंक एवं भय का कारण था। इसी कठोर न्याय-दण्ड विधान के भय से वे अंग्रंज़ी व्यवस्था के वफादार हुए।

अंग्रेज़ मैकाले समस्त छल-प्रपंच और कूटनीति से युक्त आदमी है। पहले वह वेलुत्तम्पी को मित्रवत् छलता है। फिर इस प्रकार की परिस्थितियँ निर्मित करता है कि दलवा को अंग्रेज़ी हुकुमत की मनमानी बरदाश्त करने के लिए विवश होना पडता है। धीरे धीरे वह शत्रुता पर उतर आता है और दलवा के विश्वास को घन और पद के लालच में फंसाकर इसे आत्मबलिदान के लिए विवश कर देता है। उसकी क्रूरता इस हद तक बढ जाती है कि तम्पी की लाश को अपमानित करके उसका सार्वजनिक प्रदर्शन करने के पश्चात् अम्मुकुट्टी कहती है- *"वे समझते है कि दलवा के जाने पर दलवा का अन्त हो गया। यह दलवा का अन्त नहीं है।*

1'केरल का क्रान्तिकारी'- विष्णु प्रभाकर- पृ.सं - 45

उनके अपने अन्त का आरंभ है। हाँ, यह स्वाधीनता की लडाई का आरंभ है और हमने इसकी नींव में अपनी सबसे कीमती वस्तु रखी है। और वह कीमती वस्तु है हमारे प्यारे दलवा का रक्त। उसके गौरव की रक्षा होनी चाहिए। और मैं जानती हूँ इतिहास उसकी रक्षा करेगा।"[1]

'केरल का क्रान्तिकारी' राष्ट्र प्रेम और स्वाधीनता की उदात्त भावनाओं पर आधारित ऐतिहासिक नाटक है जिसमें वेलुतंपी दलवा का अदम्य साहस एवं आत्मबलिदान का चित्रण है। राज्य में पनप रहे षड्यंत्रों का भी खुलासा है। आज भारत में वेलुत्तम्पी जैसे अनेक राष्ट्रप्रेमी और स्वतंत्रता सेनानी विद्यमान है जो हमारे ही देश में गुमनाम पडे है। इसके संबन्ध में विष्णु प्रभाकर ने स्वयं भूमिका में लिखा है कि- *"अपने ही देश के बारे में हमारा ज्ञान कितना अधूरा है। दक्षिण तथा पूर्वोत्तर प्रदेश में नाना कारणों से कितने और कैसे-कैसे विद्रोह विदेशी सत्ता के विरुद्ध हुए, इन सब के बारे में जानना तो दूर, सुना तक नहीं हमने।"*[2] ऐसे वीर और राष्ट्र भक्त चरित्रों को उद्घाटित करने की आवश्यकता है। ऐसे महान चरित्रों के प्रकाशन से इतिहास प्रसिद्ध उपेक्षित इन चरित्रों को ऊपर उठाने के साथ-साथ वर्तमान एवं भविष्य की पीढी को राष्ट्रभक्ति एवं स्वाधीनता संघर्ष की गाथा से परिचित कराने में सार्थक सिद्ध होगा।

अतः देश को पिछडेपन से प्रगति की ओर ले जानेवाले महापुरुषों के प्रति विष्णु प्रभाकर के मन में आदर और सम्मान की भावना है। ऐसे लोगों की

---

1 'केरल का क्रान्तिकारी'- विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 98

2 'केरल का क्रान्तिकारी'- विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 7

क्रान्तिकारी दृष्टि उन्हें भाती है। यह नाटक लिखने की सांस्कृतिक प्रेरणा के विषय में स्वयं उनका कहना है- *"देश की अन्य भाषाओं के महान् चरित्रों, महापुरुषों, महान घटनाओं को हिन्दी में लाना बहुत आवश्यक है मैं ने 'केरल का क्रान्तिकारी' इसी उद्देश्य से लिखे है। ट्रावनकोर के दीवान वेलुत्तम्पी के बारे में हिन्दी भाषी कुछ भी नहीं जानते। लेकिन इनसे अंग्रेज़ों के विरुद्ध जो क्रान्ति की थी वह उसे इतिहास में अमर बना देता है जिससे हिन्दी पाठक उसके महान कार्य को जान सके।"*[1] इसी क्रान्ति को मुख्य बिन्दु बनाकर विष्णु प्रभाकर जब नाटक लिखते तब उसका नाम 'केरल का क्रान्तिकारी' रखकर उचित कार्य करते है। जिससे हिन्दी पाठक उसके महान कार्य से अवगत हो गये।

अतः उनके ऐतिहासिक नाटक पूर्ववर्ती ऐतिहासिक नाट्य परंपरा से भिन्न है। ऐतिहासिक नाटकों की पुनर्व्याख्या करना उनका उद्देश्य नहीं बल्कि इतिहास के प्रति उनकी जो नज़रिया होती है उनमें नयापन है। अतीत और वर्तमान को एक ही धरातल पर लाने की कोशिश उन्होंने की है। उनके नाटक में इतिहास का स्वर मौन है; समसामयिकता का स्वर गूँज उठता है।

1'विष्णु प्रभाकर'- सं - डा० विश्वनाथ मिश्र, डा० कृष्णचन्द्र गुप्त पृ.सं - 243

तीसरा अध्याय

विष्णु प्रभाकर के नाटकों में अभिव्यक्त नारी चेतना

विष्णु प्रभाकर के नाटकों में अभिव्यक्त नारी चेतना

समाज में नारी और पुरुष परस्पर पूरक होकर भी दो स्वतंत्र इकाईयाँ है। दोनों का स्वतंत्र अस्तित्व है किन्तु स्वतंत्र अस्मिता नहीं रही। परंपरा से पितृसत्तात्मक समाज में मर्द का प्रभुत्व रहा। नारी स्वातंत्र्य पर विधायक मनु ने एक ओर *"पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने रक्षति स्थविरे पुत्रो न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति"*[1] कहकर नारी को बचपन में पिता का, युवावस्था में पति का और बुढापे में पुत्र की संरक्षकता में सौंपकर उसे गुलामी की जंजीरों से जकड दिया, तो दूसरी ओर *"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वस्तत्राफला क्रियाः"* [2] अर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है वहीं देवता निवास करते हैं और जहाँ नारी की पूजा न होती है वहाँ के सभी कार्य निष्फल होता है- कहकर संरक्षक पुरुष पर उसके सम्मान की रक्षा का दायित्व भी डाल दिया। लेकिन नारी का यह पूजनीय रूप अल्पकाल में ही धूमिल हो गया।

परंपरागत रुढियों से आबद्ध उसकी स्थिति बडी दयनीय रही है। बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, विधवा विवाह निषेध आदि अनेक नारी संबन्धी परंपरागत मान्यताओं के आवरण में उसकी इच्छायें और विकास की संभावनायें बहुत वर्षों तक दबी-दबी रही। उस समय परंपरागत मान्यताओं में जकडी उसके स्वतंत्र अस्तित्व एवं आत्म-निर्भरता की बातें कल्पनातीत थी। सामाजिक उत्थान के साथ-साथ पुरुष की स्वार्थपरता की भावना बढती गई और स्वतंत्रता क्षीण होती गई।

---

1 मनुस्मृति -मनु - अध्याय 9-3 पृ.सं - 105

2 मनुस्मृति -मनु - अध्याय 3 पृ.सं - 50

स्वातंत्र्योत्तर भारत में शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण उसमें नई चेतना की लहरें पैदा हो गई। समाज और परिवार के अनेक बन्धनों में जकडी नारी जागरण के युग में अपने अधिकारों के प्रति सजग हुई है तथा पुरुष के समान ही आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में समानता की माँग करने लगी है। अब वह किसी के इशारों पर नाचनेवाली कठपुतली नहीं और घुट-घुट कर जीना वह नहीं चाहती। आज वह समाज के किसी भी रूढिगत निर्णय को सिर झुकाकर स्वीकार नहीं कर लेती। शिक्षित नारियों में स्वातंत्र्य की भावना तथा अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता आयी है। स्वतंत्रता की चेतना आज पुरुषों में ही नहीं नारी में भी अपने उग्र रूप में प्राप्त होती है। उसका भी अपना अस्तित्व है।

अदिकालीन हिन्दी साहित्य में नारी युद्ध का कारण रही,पूर्व-मध्यकाल में उपेक्षणीय एवं त्याग की वस्तु तथा उत्तर-मध्यकाल में विलास और मनोरंजन की सामग्री। आधुनिक काल में वह माँ, प्रेमिका, सहचरी, दासी, बहन, पत्नी, परित्यक्ता, विधवा, मज़दूरनी जैसे कई रूपों में चित्रित हुई है। हिन्दी नाटकों में नारियों की वर्तमान समस्याओं और समाज में उनकी साम्प्रतिक दशाओं का चित्रण हुआ है। जागरण के फलस्वरूप भारतीय नारियों ने पुरुषों की समकक्षता पानी चाही तो उन्हें विद्रोह ,संघर्ष, टूटन एवं विघटन के दौर से गुज़रना पडा। पुरुषमेधा समाज में अपनी हैसियत बनाने के लिए व्यक्तित्व प्राप्त करने की इच्छा उसमें उत्पन्न हुई।

विष्णु प्रभाकर के नाटकों में नारी जीवन से संबन्धित अनेक समस्याओं और प्रश्नों को अपेक्षाकृत अधिक तीखेपन के साथ प्रस्तुत किया गया है।

वे सदैव नारी स्वातंत्र्य और स्वावलंबी नारी के समर्थक रहे है। उनके समूचे साहित्य का मूल स्वर 'नारी मुत्ति' है। इसके संबन्ध में स्वयं उनका कहना है कि- *"मेरे साहित्य का मूल स्वर नारी मुक्ति तथा धार्मिक शोषण का विरोध है। मैं सामाजिक और आर्थिक समानता का पक्षधर हूँ। अपने कथा साहित्य में मैंने इसी जगत की तलाश की है और मेरे पात्र इसी के लिए संघर्ष करते आपको दिखाई देंगे।"*[1]

आर्यसमाज एवं गान्धीजी के नेतृत्व में चलनेवाले नारी सुधार आन्दोलन का उन पर प्रभाव पडा है। एक ओर आन्तरिक प्रेरणा और दूसरी ओर परिवेश का आग्रह दोनों ही उनको नारी समस्या को उठाने के लिए प्रेरित करते रहे है।उनके अनुसार समाज की अनेक बुराइयों की जड़ में नारी की आर्थिक पराधीनता और उसमें लादे गये कई प्रकार के बन्धन है। युग-युगों से हमारा समाज नारी को कई प्रकार से उत्पीडित करता आया है, जिससे उसका स्वतंत्र अस्तित्व कभी प्रकट नहीं होता। एक स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए नारी का स्वावलंबी एवं स्वतंत्र होना आवश्यक है। यह तभी संभव है जब पुरुष के बन्धन से वह मुक्त होती है। नारी स्वातंत्र्य के संबन्ध में उनका कहना है कि- *"नारी जब तक पुरुष बल विशेषकर सेक्स मोह से मुक्त नहीं होती तब तक कम से कम मैं उसे स्वतंत्र नहीं. मान सकता। सेक्स आकर्षण ही उसके शोषण का प्रमुख कारण है। यही उसके आश्रित होने का प्रधान बिन्दु है। पुरुष के साथ भी यही समस्या है। बलात्कार के बाद समाज के साथ ही साथ नारी भी स्वयं को दुरदुराती है। एक आत्महीनता,*

---

1 'मेरे साक्षात्कार' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 91

आत्मग्लानि की पीडा का कांटा उसे चुभता रहता है। यही उनके शोषण का कारण है। नारी की सच्ची स्वाधीनता या मुक्ति तभी होगी जब वह देह-धर्म को पुरुष के साथ समान स्तर पर बन स्वीकारे। इस युग में भी वह मात्र भोग्या बनकर न रहे"।[1] उन्होंने अपने नाटकों में ऐसी विषयवस्तु को चुना है जहाँ नारी एक अलग अस्मिता चाहती है।

विष्णु प्रभाकर ने 'डाक्टर','टगर','बन्दिनी','अब और नही','श्वेत-कमल' आदि नाटकों में नारी चेतना के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है।

अपनी व्यक्ति-इयत्ता को बनाये रखने की नारी की कोशिश -'डाक्टर'

सदियों से भारत में पुरुषमेधा समाज मौजूद रहा था । पुरुष की सामाजिक स्थिति भी काफी सुदृढ रही है। समाज में पुरुष और नारी दोनों की स्वतंत्रता एवं अस्तित्व के लिए दो अलग-अलग पैमाने रखे गये है। पुरुष नारी पर अपनी मनमानी करता रहा और उसकी स्वतंत्रता पर अंकुश लगाता रहा। नारी को पुरुष की हर आज्ञा का पालन करते हुए उसके संकेतों पर नाचना पडा। पति के रूप में पुरुष अपनी पत्नी को अपने हाथ का खिलौना समझता रहा। लेकिन आधुनिक युग में जब नारी ने उच्च शिक्षा पायी और कामकाजी नारी बन गई तो वह अपनी अलग अस्मिता के बारे में सोचने लगी। अपने अन्दर छिपी हुई ताकत को पहचानने का प्रयास वह करने लगी। परंपरागत रूढियों से अपने आपको मुक्त करने की तरकीबें वह ढूँढने लगी। उस प्रकार पुरुष के सामने आत्मसमर्पण करते हुए एवं सन्धि-पत्र लिखते हुए परिवार की शोषण-नीति में बुरी तरह फंसनेवाली

---

1 'मेरे साक्षात्कार' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 125

नारियों की मानसिकता धीरे-धीरे बदलने लगी। विष्णु प्रभाकर 'डाक्टर ' नाटक में ऐसी नारी मानसिकता का विश्लेषण कर रहा है।

मधुलक्ष्मी का विवाह सतीशचन्द्र शर्मा से होता है। मधुलक्ष्मी कम पढी लिखी लडकी थी। बाद में सतीशच्द्र शर्मा एक इंजीनियर के उच्च पद पर प्रतिष्ठित होता है। मधुलक्ष्मी कम पढी-लिखी होने के कारण अब सतीशचन्द्र शर्मा उसे अपने सोसायटी के काबिल नहीं समझते और उसका त्याग कर देते है तथा वे अपनी दूसरी शादी कर लेते है। पति द्वारा तिरस्कृत एवं परित्यक्ता मधुलक्ष्मी के मन में प्रतिशोध की प्रतिक्रिया होती है। वह अपने भाई की सहायता से उच्च शिक्षा प्राप्त करके एक डाक्टर बन जाती है। अब मधुलक्ष्मी को अपने नाम से बेहद घृणा होती है। इसलिए वह अपना नाम बदल देती है और डा० अनीला नाम धारण कर अपना एक नर्सिंग होम का संचालन भी करती हे। अपने कर्तव्य के प्रति असीम श्रद्धा रखनेवाली डा० अनीला जल्दी ही अपने नर्सिंग होम रुग्णों का आशास्थान बनाती है।

समय का चक्कर कुछ ऐसा चलता है कि सतीशचन्द्र शर्मा अपनी नई पत्नी को एक सीरियस बीमारी की हालत में डा० अनीला के ही पास आपरेशन कराने के लिए पहुँचते है। किन्तु जब डा० अनीला को पता चलता है कि यह इंजीनियर सतीशचन्द्र शर्मा की दूसरी पत्नी उषा है तो डा० अनीला के मन में प्रतिहिंसा की भावना और एक ख्याति प्राप्त डाक्टर होने के कारण उसकी कर्तव्य भावना में भयानक संघर्ष होता है। लेकिन अन्त में डा० अनीला का मानवता प्रेरित डाक्टर, प्रतिशोध नारी पर विजय प्राप्त करता है।

इस नाटक की मधुलक्ष्मी अपने पति के द्वारा केवल इसलिए त्याग दी जाती है कि उसका पति एक उच्च सरकारी ओहदे का मालिक है। किन्तु मधुलक्ष्मी उन नारियों के लिए अपवाद है जो पति द्वारा उपेक्षित होने के बाद भी पति को 'परमेश्वर' मानती है। उसका स्वतंत्र अस्तित्व पति द्वारा निरपराध पत्नी के प्रति किये गये इस अमानवीय व्यवहार को चुनौती के रूप में स्वीकार करता है। उसका कहना है कि *"मैं.....मैं चुनौती के कारण यह सब कुछ कर सकी। चुनौती के कारण मैं ने इतने कष्ट उठाकर, इतनी वेदनायें सहकर, इस नर्सिंग होम का निर्माण किया, आज का दिन देखा ।"*[1]

व्यक्ति स्वातंत्र्य से उपजा उसका आत्मविश्वास उसे डिगने नहीं देता। अपने अहं के बुरी तरह क्षतिग्रस्त और अपमानित हो जाने के बाद मधुलक्ष्मी अपने व्यक्तित्व की पुरानी अस्तित्व रेखाओं को पूर्णतः धूमिल कर एक दिन डा० अनीला के रूप में उपस्थित होती है। अब उसका जीवन निरर्थक न होकर आत्मविश्वास से दीपित है। नर्सिंग होम के रूप में अब उसके पास अपने जीवन की सार्थकता है। व्यक्ति स्वातंत्र्य की अपूर्ण चेतना के इस युग में आज मध्यवर्गीय नारी पुरुष से अपने स्वतंत्र अस्तित्व के प्रति न्याय की मांग कर रही है। वह अपनी व्यक्ति इयत्ता की स्वतंत्र एवं सम्मानजनक प्रतिष्ठा चाहती है। पति द्वारा उपेक्षित होने के बावजूद भी मधुलक्ष्मी का अपनी नियति को बिना कोसे, हृदयहीन पति के सामने सहानुभूति की भीख बिना माँगे, अपने भविष्य का फैसला खुद लेते हुए एक डाक्टर बनना इस बात का सबूत है कि व्यक्ति चेतना की अपूर्ण चेतना ने नारी व्यक्तित्व को

---

1 'डाक्टर'- विष्णु प्रभाकर - पृ.सं. 101

जागरूकता और आत्मविश्वास दिया है।

इस प्रकार आज की मध्यवर्गीय नारी ने अपने स्वतंत्र चिन्तन एवं व्यक्ति-इयत्ता को सुरक्षित रखते हुए पुरुष प्रधान समाज के सामने सफलतापूर्वक अपनी स्थिति स्पष्ट ही नहीं की बल्कि अपने 'स्व' को जागरूक रखते हुए समाज में अपना एक अलग विशिष्ट व्यक्तित्व कायम किया है। इस संघर्ष के दौरान कही भी उसने अपने अहं-भाव को झुकने नहीं दिया और न ही उसे पुरुष की अधिकार भावना के समक्ष बौना होने दिया है। इस नाटक की मधुलक्ष्मी एक स्थान पर कहती है कि-" *डाक्टर होकर मैं इतनी कायर होती जा रही हूँ। नहीं, नहीं, मैं कायर नहीं हूँ, मुझे वह आपरेशन करना है। अवश्य करना है। कोई बात है।*"[1]

अहं भावना मानव की एक सहजात प्रबल मानसिक शक्ति है। अहं से मानव के मन में अहंकार, अभिमान, गर्व, घमंड एवं मैं-पन की भावना आती है। अहं अपनी सुरक्षा के साथ वासनाओं की तृप्ति करना चाहता है। लेकिन जब इस प्रक्रिया में किसी कारणवश विघ्न हो जाता है तब अहं पर आघात होता है। इसमें मानसिक संघर्ष, अन्तर्द्वन्द्व तथा अनेक मनोग्रन्थियाँ निर्मित होती है। इस नाटक में जब मधुलक्ष्मी को सतीशचन्द्र शर्मा अपने सहधर्मचारिणी के रूप से विच्छेदित करता है तब वह प्रतिशोध की अनंत यातनाओं में छटपटाती है। वह अपने पति से बदला लेने की प्रतीक्षा में है। जब शर्मा अपनी मरणासन्न दूसरी पत्नी को डा० अनीला के नर्सिंग होम में दाखिल करता है तब डाक्टर की कर्तव्य भावना और परित्यक्ता पत्नी की प्रतिशोध की भावना के बीच उसके मन में भयंकर अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न होता है।

---

1 'डाक्टर'- विष्णु प्रभाकर - पृ. सं. 82

इसलिए वह आपरेशन करने से पहले ही अन्यत्र भाग जाना चाहती है। आपरेशन के समय भी वह डा० केशव से कहती है कि-*"मुझे यहाँ से भाग जाने दो। मैं उसे मार डालूँगी। मैं उसकी हत्या कर दूँगी। सच कहती हूँ मैं, मेरे अन्दर कोई घुसा बैठा है तो जो मुझसे उसकी हत्या करवा देगा।"*[1]

इस प्रकार पति शर्मा से परित्याग का प्रतिशोध लेने की घडी समीप पाकर वह उग्र रूप धारण कर लेती है। लेकिन साथ ही नारी सुलभ दया और संस्कार की भावना से अभिभूत होकर वह विचलित एवं विक्षिप्त हो जाती है। उसके मन के गहन अन्तर्द्वन्द्व की यातना यह है कि- *"आखिर आपरेशन करना ही होगा, पर मैं वह आपरेशन नहीं करूँगी। नहीं करूँगी।..लेकिन सब इन्तज़ाम हो चुका है। सबको मालूम है कि आज आपरेशन होना है। क्या कहेंगे? .....कुछ भी कहें मैं आपरेशन नहीं करूँगी...लेकिन ओह, मैं क्या करूँ..... मैं क्या करूँ ....।"*[2]

मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के उन क्षणों में उसकी चेतना कर्तव्य और भावना के सन्धि बिन्दु पर भटक जाती हे। कुछ क्षणों के लिए वह भूल जाती है कि एक डाक्टर के लिए कर्तव्य का मूल्य भावना से अधिक होता है। ऐसी स्थिति में अनीला का उपचेतन प्रतिशोध की ज्वाला में भभक उठता है। किन्तु उसकी व्यक्ति भावना और डाक्टर की कर्तव्य भावना के बीच एक भयंकर संघर्ष का दौर चलता है। डा० अनीला की दुविधाग्रस्त मानसिकता के उतार-चढावों के क्षण-क्षण बदलते रूप से उसका मित्र डा० केशव पूर्णतः परिचित है और उनका कहना है-

---

1'डाक्टर' - विष्णु प्रभाकर - पृ सं- 103

2'डाक्टर' - विष्णु प्रभाकर - पृ सं- 81

"पहचानता हूँ अनी, पाँच वर्ष से तुम्हें पहचान रहा हूँ। तुम तिल-तिल कर जलती हो, तुम्हारे हृदय में टीसें उठती हैं, तुम्हारी छाती आहों से छलनी हो रही है और उस सत्य को छिपाने के लिऐ तुम अनथक प्रयत्न करती हो। अन्दर जितनी गहरी पीडा होती है। ऊपर तुम उतनी ही करुण बनती हो, उतनी ही हँसती हो। लेकिन तुम्हारी करुणा, तुम्हारी मुस्कान, तुम्हारा हास्य इन सबका आधार है वही चुनौती। उसी चुनौती ने तुम्हें कायर बना दिया। क्योंकि तुम्हारे भीतर बदला लेने की भावना जाग उठी है.....लेकिन जब तक इसका रूपान्तरण नहीं होगा..... ।"[1]

इस प्रकार गहन अन्तर्द्वन्द्व के बाद शर्मा की वही पत्नी दूसरी पत्नी का आपरेशन सफल कर देती है जो उनकी नज़रों में कम हैसियतवाली थी। अन्त में दादा शर्मा से व्यंग्य रूप में कहता है कि- *"यही थी डा० अनीला, तुम्हारी पहली पत्नी मधुलक्ष्मी शर्मा, जिन्हें तुमने पन्द्रह वर्ष पहले इसलिए छोड दिया था कि तुम्हारे अफ़सर बन जाने के बाद वह तुम्हारे योग्य नहीं रही थी। कम पढी-लिखी थी। सोसायटी में घूम-फिर नहीं सकती थी बैठ-उठ नहीं सकती थी, खा-पी नहीं सकती थी.. ।."*[2]

अतः नाटककार यहाँ नारी शोषण पर मात्र आंसु बहाना नहीं चाहते। लेकिन उस शोषण के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द करने के लिए मधुलक्ष्मी जैसे नारी पात्रों को सजग कर देते है। समाज में पारिवारिक संबन्धों के बदलते स्वरूप की ओर भी नाटक संकेत कर देता है।

---

1 'डाक्टर' - विष्णु प्रभाकर - पृ सं- 102

2 'डाक्टर' - विष्णु प्रभाकर - पृ सं- 130

चोट खाये नारी मन का फूत्कार - 'टगर'

आधुनिक समाज में व्यक्ति-सजगता के फलस्वरूप विवाह संबन्धी परंपरागत मान्यताएँ टूट रही है। आज विवाह जन्म-जन्मान्तर का बन्धन नहीं, बल्कि एक समझौते के रूप में स्वीकार किया जा रहा है, जिसमें किसी भी प्रकार के बन्धन व्यक्ति-चेतना को स्वीकार नहीं। यदि कोई बन्धन उसका मार्ग अवरुद्ध करता है तो वह उन्हें तोडता हुआ आगे बढता जाता है और अपना मार्ग सुगम बनाता है। क्योंकि आज मानव के समक्ष आत्मसुख प्रमुख हो गया है। इस आत्मसुखवादी दृष्टिकोण ने संबन्धों को नया आधार प्रदान किया। ऐसे आत्मसुख की दौड में भागनेवाले एक पति शेखर और उसके द्वारा उपेक्षित पत्नी रश्मी की त्रासदी प्रस्तुत करनेवाला नाटक है 'टंगर' ।

रश्मी के पिता ने अपनी बेटी की पसन्द की लापरवाही करके उसकी शादी अपनी चाह के मुताबिक एक साहित्यिक आदमी शेखर से करा दी । पति-पत्नी दोनों की विचारधाराएं भिन्न थी। जीवन के प्रति दोनों का दृष्टिकोण भी अलग थे। इसलिए उनका दाम्पत्य जीवन एक समान्तर रेखा के समान कभी भी न जुड पाया। शादी के कुछ दिनों तक शेखर रश्मी के शारीरिक सौन्दर्य पर आकृष्ट होता रहा और खूबसूरत शब्दों में इसकी शारीरिक छवि की तारीफ़ करता रहा । लेकिन धीरे-धीरे यह आकर्षण लुप्त हो गया। उसकी ज़िन्दगी की त्रासदी तब शुरु हुई जब पति का मन एक दूसरी औरत पर लग गया। पति ने उसके मन को समझने की कोशिश कभी नहीं की।

शेखर ने उसे इसलिए छोडा था कि वह आधुनिक नहीं है। एक

प्रख्यात लेखक होने के नाते वह रश्मी जैसी साधारण नारी को पत्नी के रूप में स्वीकार करना उचित नहीं समझता था। क्योंकि वह उसके साथ सार्त्र, कामू और काफ्का के संबन्ध में साहित्यिक बातें नहीं कर सकती थी। इसलिए उनके विचार में रश्मी पत्नी के रूप में उनके योग्या नहीं है। शेखर उस परंपरागत पति की कतार में आकर खडा हो जाता है जो पत्नी को अपने हाथ का खिलौना समझता है, जिसे कभी भी तोडा जा सकता है।

पति द्वारा उपेक्षित होने के बावजूद भी रश्मी पूर्ण रूप से हताश नहीं हो जाती है। वह तो परंपरागत आदर्शों से चिपके रहनेवाली नारी नहीं, बल्कि प्रतिशोध की भावना ही उसके मन में पैदा होती है। शिक्षिता नारी होने के नाते पति से परित्यक्त होकर भी वह अपनी अलग स्वतंत्र सामाजिक प्रतिष्ठा बनाना चाहती है। चोट खाया उसका मन एस सर्पिणी के समान फूत्कार उठता है। इसी फूत्कार में नारी रश्मी 'टगर' बन जाती है। वह अपना संपूर्ण व्यक्तित्व बदल देती है, यहाँ तक कि अपना पुराना नाम रश्मी छोडकर 'टगर' नाम को स्वीकार कर लेती है और अपना अतीत भूलकर उसके बाद के जीवन में आनेवाले ठाकुर, माथुर, नाज़िम जैसे पुरुषों को अपनाती है।

रश्मी अपने पति से अलग होकर किसी दूसरे के साथ नये सिरे से जीवन निर्वाह की बात सोचती है और इसी सिलसिले में एक अधेड व्यक्ति ठाकुर को ढूँढ निकालकर उसकी सेक्रेटरी बन जाती है। ठाकुर के बाद उसके जीवन में माथुर तथा उसके बाद नज़िम आ जाते है तो वह उनके साथ एक नया जीवन शुरु कर लेता है। किन्तु शीघ्र ही इसे अपने नये जीवन में कुछ कडकने के समान

महसूस होने लगता हे। क्योंकि उनका अतीत वर्तमान में छाया की भाँति मँडराने सगता है और वह अपने नये जीवन से कुंठित हो जाती है।

इस प्रकार कई पुरुषों के संपर्क में आने के बाद रश्मी यह सत्य समझ लेती है कि सभी पुरुषों का चेहरा एक जैसा है, वे भिन्न-भिन्न मुखौटे पहने हुए हैं। सब नारी को अपने इशारे पर नचाना चाहते है; अपनी सफलता का साधन बनाना चाहते है। उनका प्रेमी ठाकुर बाहरी तौर पर नारी स्वातंत्र्य का गुण गा रहा था लेकिन वह नारी को मात्र भोग की सामग्री समझनेवाला मर्द था। आज का शिक्षित पुरुष भी पत्नी के रूप में ऐसी नारी की कल्पना करता है, जो परंपरागत मूल्यों से जुडी हुई हो। वैचारिक धरातल पर वह नारी स्वतंत्रता और नारी के अधिकारों पर लंबा-चौडा भाषण दे सकता है लेकिन व्यावहारिक रूप से वह नारी में परंपरागत मूल्यों से आच्छादित नारी का रूप देखना ही पसंद करता है।

अपने चारों ओर के पुरुषमेधा समाज से रश्मी को कटु और तीखे अनुभव ही मिलते है। नारी को मात्र भोग की वस्तु समझकर उसके प्रति वासनात्मक दृष्टि रखने की आदिम मानसिकता ही वह उन खूँखार मर्दों में देख पाती है। उसे बहुत दुःख है कि इस वैज्ञानितक युग में नारी विज्ञापन की एक कमोडिटि बनती जा रही है। उसका कहना है कि- *"नारी किसी न-किसी रूप में बिकती ही है। रोज़ अखबारों में देखते होंगे, हर इश्तिहार के साथ नारी का चित्र होता है, तेल हो, मंजन हो, कहडे हों, जूते हों मिठाई हो, धी हो कुछ भी हो नारी के मोहिनि रुप की रिश्वत दिये दिना वे नहीं बिकते।"*[1]

---

1 'टगर' - विष्णु प्रभाकर - पृ सं - 29

रश्मी जिन-जिन पुरुषों के संपर्क में आई उनके चरित्र की असलियत से वह भली-भाँति अवगत थी। ठाकुर हो, माथुर हो या नाज़िम हो सब के सब ने उसको अपने-अपने घृणित काम के लिए उपयोग में लाने का ही प्रयत्न किया है। उनके इस घिनौने व्यवहार से टगर भली-भाँति अवगत है। उनमें एक-एक पुरुष अपने मकसद को पूरा करने केलिए उसे मात्र एक साधन के रूप में मानते है। लेकिन वह जानती है कि सब पुरुष एक प्रकार का मुखौटा पहनकर उसके साथ छल-कपट करता है। नारी एक बार छली जाती है तो उसके मन में प्रतिशोध की ऐसी भावना पैदा होती है कि पुरुष को उसी तरह अपने जाल में फंसाकर बदला करें चाहे वह ठाकुर हो, माथुर हो, नाज़िम हो किसी भी हो।

टगर ठाकुर से प्रेम का नाटक करती हुई उसको अपने जाल में फंसाती हे। उनका सेक्रेटरी बनकर वह धीरे-धीरे उनकी असलियत जानने की कोशिश करती है। वास्तव में ठाकुर दुहरा व्यक्तित्ववाला आदमी है। एक ओर वह कस्बे के लोंगों के सामने तस्कर व्यापारियों की निन्दा करता है तो दूसरी ओर वह इन तस्कर-व्यापारियों के अन्तर्राष्ट्रीय दल के एक प्रमुख सदस्य भी है। अवसर आने पर टगर ने उनकी असलियत के बारे में माथुर से कहा और माथुर पुरी से। परिणामस्वरूप मेजर पुरी की गोली खाकर ठाकुर की मुत्यु हो गई। इस प्रकार ठाकुर से बदला लेने में वह कामयाब होती है।

ठाकुर के बाद माथुर के साथ भी टगर प्रेमपूर्वक व्यवहार करते हुए उनको भी अपने सैन्दर्य जाल में फंसाती है । माथुर भी धोखेबाज है क्योंकि उनकी वाग्दत्ता को मनचाहे दहेज न मिल पाने के कारण छोड दिया गया है। माथुर के

पिता की आर्थिक लालच और उनकी कायरता के कारण सगाई तोड देने पर वह लडकी आत्महत्या कर लेती है। टगर से मिलने के पूर्व माथुर कुसुम नामक एक नर्स से प्रेम करता था। किन्तु टगर को देखते ही उसकी ओर आकृष्ट होने लगा। इस प्रकार प्रेम से वंचित होकर कुसुम भी आत्महत्या कर लेती है। टगर इन सारी बातों को अच्छी तरह जानती है। वह यह भी महसूस करती है कि माथुर अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए उसका उपयोग करता है, मन से प्रेम नहीं करता है। इनका प्रेम मात्र एक बहाना है। टगर उनके साथ प्रेम का नाटक करते हुए अंत में सडक की बनावट के मामले में रिश्वत लेने की वजह से उसे गिरफ्तार करने में पुरी को सहायता देकर माथुर से भी बदला लेती है।

इस प्रकार नाज़िम साहब भी उसको अपने इशारे पर नचाना चाहता है। लेकिन टगर उनके अन्दर के हकीकत से अवगत थी। वह उनके साथ भी प्रेम का खेल खेलती है। उनका बीता हुआ कल इतना अच्छा नहीं था कि उनकी पत्नी की मृत्यु के पीछे उनका ही हाथ है। क्योंकि पति-पत्नी होते हुए भी उन दोनों के मन का मिलन पूर्ण नहीं हुआ था। इस मिलन का अभाव उसकी मृत्यु का कारण बन जाता है। जब नाज़िम ने टगर से शादी करने की इच्छा प्रकट की तो वह इसका इन्कार करती है।

इस प्रकार उसके जीवन में आनेवाले सभी पुरुषों के भ्रष्टाचारी जीवन को बेनकाब कर उन्हें छोडकर वह आगे बढती है। लेकिन अन्त में वह जान पाती है कि प्रतिशोध की आग में उसने स्वयं को ही जलाया है। अनेक पुरुषों को छोडकर उनसे बदना लेने की धुन में उसने स्वयं को ही बरबाद कर दिया है।

इस नाटक के सभी नारी पात्र किसी न किसी रूप में पुरुष से छली जाती है। माथुर की वाग्दत्ता, प्रेमी कुसुम, नाज़िम की पत्नी सब के सब चोट खाकर अपने जीवन बरबाद कर लेती है। क्योंकि वह अपने पति के बदले में ठाकुर, माथुर, नाज़िम जैसे पुरुषों से बदला लेती है। यहाँ पर उसे बदले के क्षणिक सुख और समाधान का आनन्द तो ज़रूर मिलता है, लेकिन मन की शान्ति के लिए भटकती रहती है। अपने स्वाभिमान के बदले में वह औरों को परेशान करना चाहती है। उस वक्त उसे इस बात का पता नहीं रहता कि इस बदले की आग में वह स्वयं को बरबाद कर रही है। विजय की ओट में उसकी स्वयं की पराजय हुई है। अन्त में उसे इस बात का पता चलता है कि दुनिया के सम्मुख उसका व्यक्तित्व एक हारी हुई नारी का है।

धर्मान्धता की शिकार बननेवाली नारी - 'बन्दिनी'

आधुनिक युग में भी अंधविश्वास के ज़रिए मनुष्य अपने मन का संतुलन खो बैठते है। मन का विवेक नष्ट हो जाने के कारण आदमी उचित-अनुचित का सही निर्णय नहीं कर पाते। उनके चारों ओर अंधविश्वास का विरोध करनेवाले भी धीरे-धीरे उसके जाल में फंस जाते है। इस प्रकार अंधविश्वास का शिकार बननेवाले खुद नहीं जानते कि वे क्या कर रहे है? आज दुनिया इक्कीसवीं सदी में कदम रखने पर भी अनेक लोग अंधविश्वस के पीछे पडे है। विश्वास का मतलब है कि इन्सान को सही रास्ते पर लाना। लेकिन जब विश्वास अपनी सीमा लांघकर अंधविश्वास बन जाने से सर्वनाश हो जाएगा। इस प्रकार अंधविश्वास की शिकार बनने वाली एक नारी की दर्दनाक दास्तान है 'बन्दिनी।

इस नाटक में एक ऐसे संयुक्त परिवार की कहानी है, जिसमें सब लोग एक दूसरे से मिल-जुलकर रहते है। गृहस्वामी ज़मीन्दार कालीनाथ का अपने गाँव और ग्रामीणों के अतिरिक्त आसपास के इलाकों में भी पर्याप्त मान है। उपेन्द्र और सुरेन्द्र उनके दो पुत्र और सावित्री तथा उमा क्रमशः दोनों बहुएँ है। कालीनाथ के यहाँ दुर्गादेवी की प्रतिष्ठा की तैयारियाँ चल रही है। पूरा परिवार इस देवी पूजा की तैयारियाँ चल रही है। पूरा परिवार इस देवी पूजा की तैयारियों में जुडा है। उनके परिवार के भीतर लोगों में परस्पर प्रेम है। दोनों भाइयों और दोनों बहुओं के बीच परस्पर मेल-जोल है। सावित्री के बेटे अनु का अपनी चाची उमा के साथ प्यार इतना दृढ है कि दोनों का बिछुडकर रहना असंभव ही है। उमा को अनु अपना पुत्र जैसा है। उमा और सुरेन्द्र के जीवन में ज़मीन्दार कालीनाथ का स्वप्न वज्रपात बनकर गिरता है। पिता के अनहोने व्यवहार के सम्मुख सब लोग चेतनाहीन हो जाते है, जब वे घोषणा करता है कि- *"मेरा जीवन धन्य हो गया। जिस वंश में मैंने जन्म लिया वह धन्य हो गया इतने दिनों तक मैं ने माँ की जो साधना की थी, वह फलीभूत हुई। माँ जगदम्बा कृपा करके स्वयं छोटी बहू के रूप में मेरे घर में अवतरित हुई है। अभी-अभी स्वप्न में उनका मुझे यही आदेश मिला है; तू पन्थर की प्रतिमा प्रतिष्ठित करने के भुलावे में पडा है, जबकि मैं तेरे धर में मानवी रूप में अवतरित हो चुकी हूँ। तू उसी रूप की उपासना कर।"*[1]

कालीनाथ जब चौंककर सपने से जाग गये और सीधे जाकर अपनी

---

1 'बन्दिनी'- विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 32

छोटी बहू उमा के पैर देवी समझकर छू गये। तब से वे उमा को देवी की साक्षात् मूर्ति समझने लगे और उसी भाव-भंगिमा से उसकी पूजा करने लगे। प्रारंभ में तो उमा चौंक गई कि ये सारा क्या हो रहा है परन्तु धीरे-धीरे उसके व्यवहार में परिवर्तन हुआ और वह अपने आप को साक्षात् देवी की प्रतिक्रिया मानने लगी। लोग श्रद्धा भाव से उसके दर्शन और पूजा करते हैं। कुछ मात्रा में उसने लोगों की समस्याओं का हल किया। लेकिन जब अपने ही परिवार की सावित्री का बेटा अनु ज्वर से अत्यन्त परेशान था तब सब लोगों का विश्वास था कि बिना वैद्यजी की दवा से वह देवी के पास जाने से ठीक हो जाएगा। किन्तु यहीं पर सब लोगों की श्रद्धा पर ठेस पहुँचती है। उमा देवी उसे बचा नहीं सकी। उमा अनु को जीवनदान नहीं दे सकी। इस घटना से उमा के प्रति लोगों के मन में जो श्रद्धा थी वह खत्म हो गई। यहीं पर सब लोगों का अन्धविश्वास नष्ट हो गया और लोग उमा को उलटी-सीधी गालियाँ देने लगे। अनू की मृत्यु के पश्चात् उमा यह स्वीकार करती है कि वह साक्षात् देवी नहीं है और कालीनाथ का स्वप्न भी झूठा था। उसका कहना है- *"स्वप्न झूठा था। देवता की वेदी पर रक्त नहीं बह सकता। मैं देवी नहीं हूँ। मैं अपने अनु को नहीं बचा सकी। मेरी आत्म-प्रवंचना से एक वंश नष्ट हो गया। जिसको मैं प्यार करती थी उसी को अपने हाथ से मार डाला। अपनी वेदी पर ही अपने प्रिय की बलि चढा दी। मेरी अपनी ही करतूत ने मुझसे वह सब छीन लिया,जो मुझे प्रिय था। अब मुझसे जिया नहीं जा सकेगा। मेरे प्रभु ! अब कोई कारण मेरी रक्षा नहीं कर सकेगा।"*[1]

---

1 'बन्दिनी' -विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 78

पश्चात्ताप के महाकुण्ड में उमा का सर्वस्व छद्म स्वाह हो जाता है। अन्ध-विश्वास और आत्मप्रवंचना की अन्तिम परिणति उमा के गंगा में समर्पित आत्मबलिदान से होती है। इस प्रकार उमा की आहुति से धर्म विश्वास के सही अर्थ प्रकट होते है।

इस नाटक में जिस वातावरण की सृष्टि हुई है उससे आज हम बहुत आगे बढ गये है। उस युग में इस प्रकार के अन्धविश्वास बहुत सहज थे। लेकिन अब शिक्षित लोग इस प्रकार के अन्धविश्वासों को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं करते। छोटे नगरों में आधुनिकता-बोध ने आम जनता की मानसिकता को एक हद तक बदल दिया है किन्तु हमारा विश्वास है कि अपने अन्तर में हम आज भी ऐसे अंधविश्वासों से जकडे हुए है। विज्ञान के इस युग में मनुष्य ने काफी प्रगति की। उसके चरण दूसरे ग्रहों पर पड चुके हो। ऐसी स्थिति होने के बावजूद भी उसका मन किसी न किसी प्रकार के अंधविश्वासों से ग्रस्त है। गाँवों और कस्बों के लोग अंधविश्वासों को मानते है। समय-समय पर यहाँ देवी माता अब भी अवतरित होती है और श्रद्धा के साथ लोग उसकी पूजा करते हैं। जीभ काटकर देवी की प्रतिमा पर चढाने की प्रवृत्ति और नरबलि अभी-भी पूर्ण रूप से खत्म नहीं हो गई है।

यहाँ धार्मिक अनुष्ठानों का कट्टर समर्थक कालीनाथ मात्र एक स्वप्न के आधार पर अपने छोटी बहु उमा के 'देवी' के रूप में स्थापित कर पूरी आस्था के साथ उसकी पूजा और अर्चना में लगा रहता है। देवी के अस्तित्व पर उसे अगाध आस्था है। कालीनाथ का यह विश्वास समस्त विपदाओं का कारण है। कालीनाथ के वेद-वाक्य के विरुद्ध आवाज़ उठाने का साहस किसी में नहीं है।

बार-बार मना करने के बावजूद भी उसे देवी पद पर आसीन कर दिया जाता है। कल तक सामान्य जीवन बितानेवाली उमा को कालीनाथ के स्वप्न-संयोजन की बलि पर चढाकर देवी रूप में धर्म की कठोर दीवारों से भेद दिया जाता है। परिणामतः वह समस्त मानवगत व्यवहारों से वंचित हो जाती है। सामाजिक जीवन से परे 'दिव्य आसन' पर विराजमान उमा अपनी इस 'देवी-स्वरूप' से मुक्ति के लिए सावित्री से कातर याचना करते हुए कहती है - *"जीजी ! आज मुझे लगता है जैसे एक दिन मैं इन लहरों में समा जाऊँगी। मेरे कारण मेरा अनु पिटता है। वे मुझसे हमेशा-हमेशा के लिए बिछुड गए है। जीजी, मैं तुम्हारे पैरों पडती हूँ मुझे बचा लो, मुझे यहाँ से निकालने का कोई न कोई प्रबन्ध करो।"*[1]

अपने आकस्मिक देवी रूप से आहत और भयभीत उमा बार-बार अपने अतीत की सुन्दर स्मृतियों में डूबती है और सामान्य जीवन के प्रति अपने मोह को प्रकट करती है। अपने पति द्वारा मुक्ति का आश्वासन पाकर ही वह देवी स्वरूप की गरिमा के अनुकूल व्यवहार तो करती है किन्तु मन ही मन प्रत्येक भक्त के लिए सच्चे हृदय से प्रार्थना भी करती है। जब अपनी सखी पूँटी की ज्वर से पीडित बच्चे को उसके सामने लाया जाता है तब वह एकान्त में उस बच्चे के जीवन के लिए ईश्वर से प्रार्थना करती है कि- *"हे प्रभो, मैं नहीं जानती मैं देवी हूँ या मानवी। पर जो कुछ भी हूँ तुम्हारी शरण में हूँ। तुम सब कुछ जानते हो, सब कुछ कर सकते हो। हे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, मैं, तुमसे यही माँगती हूँ कि यह बच्चा फिर से जी उठे। मंगलमय प्रभो, यह मेरी सखी विधवा है। और*

---

1 'बन्दिनी' -विष्णु प्रभाकर- पृ.सं - 43

यह उसका एकमात्र पुत्र है। इसलिए प्रभो, मैंने कभी भी कुछ कोई भी पुण्य किया हो तो इस बच्चे का जीवन लौटा दो। मेरी तुमसे बार-बार यही विनती है।[1]

उसके सहज मानवी रूप को प्रतिपादित करनेवाली यह निस्वार्थ प्रार्थना और उसका चरणामृत पीने के बाद पूँटी का बच्चा अपनी आँखें खोल देता है। इस घटना तक वह स्वयं को देवी के स्वरूप और सत्य से परे रखी हुई है। किन्तु अधिक समय तक उसका मानसिक संतुलन स्थिर नहीं रह पाता। धीरे-धीरे उस पर लोगों का विश्वास और भी मज़बूत होने लगता है। चौबीस घंटे भक्तों की पूजा, अर्चना, विश्वास और गुणगान उसे स्वयं के 'देवी' होने का आभास करने लगते हैं। अतः उसकी मानसिकता 'देवी' के रूप में परिवर्तित होने लगती है। सात दिन के बाद जब सुरेन्द्र उसे मुक्त कराने पहुँचता है तो उसके अन्दर उमा का जो पुराना रूप-भाव था, वह बिल्कुल गायब हो चुका था और वह खुद अपने को 'देवी' समझ बैठी थी। उसकी राय में वह देवी नहीं है तो पूंटी के बच्चे उसकी गोद में आते ही कैसे ठीक हो गए और भक्तों की मनोकामनाएं कैसे पूरी हो गई? सुरेन्द्र के विभिन्न तर्क उसे संतुष्ट नहीं करते। उमा की रूढ मानसिकता पर तीखा प्रहार करते हुए सुरेन्द्र का कहना है- *"अब तुमसे तर्क करना दीवार से माथा फोडना है। तुम्हानी संपूर्ण चेतना को अंधविश्वास ने ग्रस लिया है। तुम उमा नहीं हो। तुम देवी भी नहीं हो। तुम बन्दिनी हो। काश ! मैं तुम्हें अन्धविश्वास की उस*

क्रूर कारा से मुक्त कर पाता। काश ! तुम्हें यहाँ से भगा ले जा पाता। पर लगचा गै में ऐसा नहीं कर पाऊँगा मन्दिर की दीवारें दो-चार दिन में

---

1 'बन्दिनी' - विष्णुप्रभाकर - पृ.सं - 50

पूरी हो जाएंगी और तुम सचमुच पाषाणी बन जाओगी। पर एक बात कहे जाता हूँ, तुम किसी का कल्याण नहीं. कर सकोगी, क्योंकि तुम्हारे अन्दर का प्रेम मर गया है। अब तुमहें उस कारा से मुक्त करना असंभव है। मैंने तुम्हें खो दिया, सदा-सदा के लिए खो दिया।"[1]

नाटक की चरम सीमा उमा के 'बन्दिनी' स्वरूप का चित्रण है। यहाँ देवी का दैवीय दर्प तथा अभिमान उसके संपूर्ण अस्तित्व को घेर लिए हुए है। अपने उस देवी स्वरूप के सम्मुख वह समस्त लौकिक संबन्धों को नकार देती हे। कालीनाथ के अंधविश्वास, भक्तों की उपासना तथा परिणामें की चमत्कार से विमुग्ध उमा अनु के स्नेह से भी मुँह फेर लेती है। सुरेन्द्र और सावित्री द्वारा बीमार अनु को वैद्य को दिखाने तथा इलाज व दवा देने के समस्त प्रयास निष्फल हो जाते है। क्योंकि धार्मिक कट्टरता में लीन उमा उसे स्वस्थ करने का विश्वास रखती है। लेकिन ज़िन्दगी और मौत के बीच जूझता अनु उमा की धर्मान्धता के हाथों बलि चढ जाता है। अनु की मौत से उमा का विश्वास नष्ट हो जाता है। सावित्री का करुण विलाप, और सुरेन्द्र के तीखे तर्क उसके दैवीय अस्तित्व को छिन्न-भिन्न कर देती है। इसके बाद वह गंगा में अपनी आत्मबलिदान करती है।

यहाँ देवता के प्रति आदर व सम्मान की भावना एक छोटे बच्चे की जान से भी प्यारी लगती है। इस नाटक का विषय धर्माडंबरों की प्रस्तुति तो है साथ ही परोक्ष रूप से धार्मिक अंधविश्वासों से मुक्ति का आह्वान भी है। अंधविश्वास की मोत्तियाबिन्द सब की आँखों पर चढ गई और इस अविवेक में उस

---

1 'बन्दिनी' -विष्णु प्रभाकर - पृ.सं-60

कुल का सर्वनाश हो रहा था। इस अंधविश्वास के विरुद्ध लडनेवाली सावित्री जैसे इने-गिने व्यक्ति कुछ नहीं कर पाती। जब उमा में पुनः विवेक जाग उठता है तब सब कीमत अदा कर चुके थे। यद्यपि यह उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशक की रचना होते हुए भी वर्तमान संदर्भ में भी भारतीय मानसिकता के बहुत अधिक निकट है। धर्म की संकुचित और कट्टर विचारों से निकले अनेक अंधविश्वासों, कुप्रथाओं और रूढियों से जन-जीवन आज भी पूरी तरह मोहाविष्ट है। इस नाटक के संबन्ध में स्वयं लेखक ने भूमिका में लिखा है- *"आज की स्थिति में बन्दिनी' नाटक का मूल्य कम नहीं हो जाता। उसकी कथा अंधविश्वास पर गहरे चोट करती है। त्रासदी होने के कारण उसका प्रभाव सघन है।"*[1]

पुरुष की अधिनायकवादी वृत्ति को चुनौती देनेवाली नारी - 'अब और नहीं'

विष्णु प्रभाकर 'अब और नहीं' नाटक द्वारा नारी शोषण का लंबा इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयास करते है। उनके अनुसार बदलते समाज के अनुरूप नारी में भी परिवर्तन आवश्यक है। पुराने ज़माने में नारी का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था। वह घर के चार दीवारों के अन्दर अपने घरवालों की देखभाल करके रहती थी। घर के बाहर की दुनिया से वह बिल्कुल परिचित नहीं थी। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा का प्रचार-प्रसार के कारण भारतीय समाज-व्यवस्था में परिवर्तन आने लगा। इसके फलस्वरूप नारी भी आज घर की चारदीवारी में कैद नहीं बल्कि अपने अधिकारों, अपने व्यक्तित्व निर्माण और अपनी स्वतंत्रता के प्रति सजग है। अपने अस्तित्व को भूलकर वह अब और नहीं रह

---

1 'बन्दिनी' -विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 7

सकती। अपनी स्वतंत्रता पर आक्रमण होने पर आज की नारी विद्रोहिणी बन जाती है। नारी-जागरण के फलस्वरूप आज की नारी में बहुत सुधार देख सकते हैं। फिर भी नारी समाज से डरती है। इसलिए वह स्वतंत्र नहीं रह सकती। ऐसी स्थिति में नारी कुछ नहीं कर पाती। अन्तर्मन में अपनी सारी इच्छाओं को दबाकर पति की इच्छानुसार उसको जीवित रहना पडता है। पति भी पत्नी के मन को समझने में नहीं, मारने में विश्वास करता है। इस नाटक के केन्द्र में जो नारी है, उसकी बीमारी का संबन्ध शरीर से नहीं. मन से है। पुरुष उसे दवा खिलाना चाहता है, पर दवा खाने से उसका टूटा मन थोडे ही लौट सकता है।

वीरेन्द्र प्रताप और शान्ता दोनों पति-पत्नी है। शान्ता को बचपन से ही सितार बजाने का शौक था। वह हमेशा संगीत में डूबी रहती थी। लेकिन शादी के बाद शान्ता के सितार बजाने, चित्र निकालने आदि पर पति के बन्धन आ गये। वीरेन्द्र प्रताप शान्ता को सिर्फ अपने आप में खोई हुई देखना चाहते थे और यही वजह थी कि शान्ता अपने शौक से बहुत दूर होती चली गई। क्योंकि शान्ता को हमेशा की वीरेन्द्र की इच्छा के अनुसार जीना पडता है। वहाँ शान्ता की अपनी इच्छा का कोई स्थान नहीं है। शान्ता को अपनी पसंद की साडी पहनने का भी अधिकार नहीं था। वीरेन्द्र की इच्छानुसार साडी खरीदना और पहनना पडती है। इसलिए शान्ता कहती है- *"ठीक किया आपने, आखिर आपके लिए ही तो पहनती हूँ। मुझे भी वोटलग्रीन रंग पसन्द है। आप इतना ध्यान रखते हैं मेरा.....।"*[1]

---

1 'अब और नहीं' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं- 44

शान्ता को अपने बैटे का नाम रखने, पढाई का विषय चुनने आदि में कोई अधिकार नहीं था। बडे बेटे को अपने पिताजी की इच्छानुसार विवाह करना पडा। इस प्रकार वीरेन्द्र घरवालों को अपनी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं करने देता। शान्ता तो 'हिज़ मास्टर्स वायस' है। गृहस्वामी होने के कारण वीरेन्द्र घर के सारे लोगों पर अपना अधिकार डालता है। उनका नियन्त्रण करना वह अपना कर्तव्य मानता है। वीरेन्द्र के द्वारा विष्णु प्रभाकर पुरुषमेधा समाज में मर्द का एकाधिकार और स्वार्थता की ओर इशारा करते है।

वीरेन्द्र प्रताप घर के सब लोगों को मज़बूरन करके अपने वश में लाने में समर्थ है। शादी के बाद शान्ता भी एक तरह से उनका गुलाम बन गई। इसलिए शान्ता को शादी के बाद मज़बूर होकर अपने सितार को गोदाम में रखना पडा। सितार में और उसमें जो अपनापन था वह सालों की दूरी में पूर्णतः मिट गया। लेकिन अचानक अपनी बेटी शुभ्रा के सितार को देखते ही पुनः उसके मन में सितार के मधुर तारों ने जन्म लिया और फिर यहीं से उसके अन्तर्मन में छिपी हुई लालसा ने जाग उठी। अब शान्ता अपनी मुक्ति चाहती है। वह स्वतंत्र रहकर अपना अस्तित्व बनाना और दिन-रात सितार के संगीत में डूब जाना चाहती है। लेकिन वीरेन्द्र उसे कभी भी मुक्त होने नहीं देता। वह बन्धनों में जकडी हुई थी। लेकिन अब वह उन बन्धनों को तोडकर मुक्त रहना चाहती है। इसी बन्धन और मुक्ति की चाह के संघर्ष में शान्ता के मन और मस्तिष्क पर बेहद परिवर्तन हुआ कि वह अपने सारे कामों को छोडकर हमेशा विचारों में खोई रहने लगी। अपनी संस्कृति के प्रति दायित्व होने के कारण वह अपने अन्तर्द्वन्द्व को बाह्य रूप से प्रकट

नहीं कर पाती। परिणाम यह हुआ कि वह मानसिक रोग का शिकार बन गई। ऐसी हालत में वीरेन्द्र उसे डा० दास द्वारा इलाज कराने लगे।

शान्ता के बर्ताव देखकर डा० दास इस नतीजे पर पहुँचता है कि उसका इलाज किसी मनोचिकित्सक ही कर सकता है। शान्ता को अपने घर के किसी भी कार्य में स्वयं निर्णय लेने का अधिकार नहीं है। सभी विषयों पर वीरेन्द्र का ही अधिकार था। इस से शान्ता का मन टूट गया है। उसका कहना है - *"काश आप एक बार भी मेरे मन को समझ सकते पर यह होता कैसे? आपके यहाँ तो मन को समझने का दस्तूर है नहीं। मन को मारने का दस्तूर है...../"*[1] कोई मनोचिकित्सक उसके उपचेतना में झाँककर इलाज कर सकता है। किन्तु शान्ता यह मानने के लिए तैयार नहीं है कि वह बीमार है। अगर वह स्वतंत्र मन से काम करती है तो वीरेन्द्र उसे पागलपन कहते है। जब शान्ता को अपने अस्तित्व का बोध जाग उठता है तब वह सारे बन्धनों से मुक्त होना चाहती है, विशेषकर अपने पति के बन्धन से।

प्रसिद्ध मनोचिकित्सक डा० मलिक के अनुसार शान्ता का बीमार खण्डित मनस्कता यानी 'स्कीनोफ्रीनव' है। उसके दिल और दिमाग दोनों में संघर्ष होने के कारण वह संतुलन खो बैठी है। ये सब होने के बावजूद भी पति उसे मुत्त नहीं होने देता। यह आधुनिक समाज की एक विशेषता है। पुरुष की महत्वाकांक्षा के कारण वह अपनी पत्नी को किसी भी प्रकार बाँधकर रखना चाहता है। लेकिन नारी यह बन्धन एक सीमा तक सह सकती है। जब उसको अपने स्वतंत्र अस्तित्व

---

1 'अब और नहीं' -विष्णु प्रभाकर - पृ. सं-75

की पहचान होती है तब वह उस बन्धन तोडकर मुक्त होना चाहती है। इसकेलिए धीरे-धीरे वह विद्रोहिणी बन जाती है। इस समय उसे इलाज की नहीं मुक्ति यानी स्वतंत्रता की ज़रूरत है।

डा० मलिक की राय में इस नाटक की नायिका शान्ता को अब पूर्ण स्वतंत्रता की ज़रूरत है। इसका मतलब यह नहीं है कि उसको अपने पति से नफ़रत है। लेकिन वह उन पर निर्भर रहना नहीं चाहती। वास्तव में वह अपने पति से मुक्त रहकर स्वतंत्र रूप से अपने संगीत, चित्र और कविता की प्रगति करना चाहती है। अंत में वह तमसा नदी पर अकेले जाना पसंद करती है। उसको अपने पथ की खोज है ;उसी तलाश में वह निकल पडती है।

इस नाटक में विष्णु प्रभाकर ने नारी पर अपनी प्रभुता जमानेवाले पुरुष और पुरुष की अधिनायकवादी वृत्ति को चुनौती देनेवाली नारी, दोनों का चित्र खींचा है। हर परिस्थिति में नारी को पुरुष दबाये रखना चाहता है, साथ में वह उसके विपरीत परिणामों को भी जानता है। समाज के इस दोष की ओर इशारा करते हुए वीरेन्द्र कहता है- *"शान्ता की हत्या मैं ने की है लेकिन .....लेकिन अकेले मैं ने नहीं की। उस हत्याकांड में आप भी मेरे सहायक थे। अगर आप मेरे सहायक न होते तो शायद मैं वह जघन्य पाप न कर पाता। आप सोचिये इस बात को, गहराई से सोचिये ज़रा।"*[1]

भारतीय समाज में यह विश्वास रूढमूल हो चुका है कि घर पर पूरा अधिकार पुरुष का है। घर का मतलब ही पुरुष का घर है और मात्र ज़िम्मेदारियाँ

1'अब और नहीं'-विष्णु प्रभाकर- पृ.सं.-93

नारी पर सौंपी जाती है।

इस नाटक की नायिका शान्ता एक ऐसा पात्र है जो अपने पति की महत्वाकांक्षा के कारण मानसिक रोग का शिकार बन जाती है। वह अपनी स्वतंत्र अस्तित्व को बनाया रखना चाहती है। नाटक के एक स्थान पर नायिका शान्ता साफ कहती है कि - *"मैं उनकी गृहस्थी में अब और नहीं रह सकती। मुझे छुट्टी दिला दो। चौतीस वर्ष उनके लिए रहे थे। उनकी इच्छा के अनुसार जी। अब मुझे अपनी इच्छा के अनुसार जीने दो।"*[1] विष्णु प्रभाकर यहाँ अपने पति के बन्धनों से मुक्ति चाहनेवाली आधुनिक नारी की मानसिक अवस्था चित्रित करते है। साथ ही साथ वह स्त्रियों को अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार स्वतंत्र रहने का उद्‌बोधन देती है।

अतः इस नाटक द्वारा विष्णु प्रभाकर विश्व की समस्त नारियों को अपने स्वतंत्र अस्तित्व का पहचान करा देने का प्रयास करते है। साथ में वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि नारी की मुक्ति बन्धन में नहीं; बल्कि स्वतंत्र अस्तित्व में है।

नारी की व्यक्ति चेतना का एक ईमानदार रूप -'श्वेत कमल'

आधुनिक समाज में जीवन मूल्य ज़रूर बदले है। इस बदलाव के कई कारणों में से एक आर्थिक दबाव भी है। कुछ देर पहले तक बेटी पर परिवार के पोषण का दायित्व होने की कल्पना नहीं की जा सकती थी। पिता के बाद पुत्र का यह कर्तव्य था, पर आज परिस्थिति बदल गई है। जिस परिवार में पिता और पुत्र नहीं है, वहाँ कुछ बेटियाँ परिवार का सारा दायित्व अपने कंधों पर झेलने वे

---

1 'अब और नहीं'-विष्णु प्रभाकर- पृ.सं.-60

लिए मज़बूर हो जाती है। उन्हें अपनी सारी खुशियाँ, भविष्य के सारे सपने परिवार की भलाई के लिए कुरबान करना पडता है। उनसे परिवार के अन्य सदस्य यही अपेक्षा रखते है कि दूसरों के लिए जीनेवाले अपने राह पर उपस्थित सभी बाधाओं का खुशी के साथ सामना करे; उन्के सहने की कोई सीमा न रहे। विष्णु प्रभाकर 'श्वेत कमल' में ऐसी एक अभिशप्त नारी बिन्दु की दर्दनाक दास्तान प्रस्तुत करते है।

बिन्दु एक साधनहीन मध्यवर्गीय परिवार की आशा की किरण है। पिता की अकान मृत्यु के बाद घर का सारा बोझ बिन्दु को ढोना पडा। विधि ने उसके एकमात्र भाई को भी उनसे छीन लिया। अपनी बहनें -नीलिमा और प्रतिमा तथा बूढी माँ को सारी सुविधाएँ देने के लिए वह खूब कोशिश करती है। फिर भी, माँ और बहनें पूर्ण रूप से उसे समझने में असफल है। एक बहन रंजना ने एक लड़के के मोहजाल में फंसकर उस पर विश्वास किया। लेकिन जब उसने धोखा दिया तो वह परिस्थिति से समझौता न कर सकी और उसने आत्महत्या की। लेकिन उसकी खुदकुशी का रहस्य माँ और बिन्दु को छोडकर और न किसी को पता है। अपने परिवार की प्रतिष्ठा में कलंक लग जाने के भय से माँ और बिन्दु ने दूसरों को यह विश्वास दिलाया कि रंजना नर्सिंग पढने के लिए विदेश चली गई। बहन की आत्महत्या बिन्दु के मन में बडा सद्मा पहुँचाया। बिन्दु के मन में अन्य बहनों के भविष्य के बारे में हमेशा आशंका उठती रहती है। घर के अभावग्रस्त वातावरण में पलनेवाले उनके किशोर मन को सपने पागल कर सकती है; यही डर उसके मन को अकसर सताता है। उसका डर सच ही बन जाता है। नीलिमा घर

की गरीबी से बिल्कुल तंग आती है। वह ऐशो-आराम की ज़िन्दगी चाहती है। ह रोज़ वह माँ के मुँह से यही शिकायत सुनती है कि आटा नहीं, दाल नहीं, तेल नहीं, घी नहीं, पहनने को ढंग के कपडे नही। वह अपनी नसीब को यों कोसर्त है - *"कितनी पुरानी हो गई है मेरा बेलबोटम, कभी का बीत गया इसका फैशन। पहनते शरम आती है। एक पठानी सूट के कहते-कहते जीभ घिस गई। पर हमारे भाग्य में ये सब कहाँ हम तो अभागे है अभागे।"*[1] अपनी सहेली पूनम की दोस्ती में पडकर उसका मन और भी गुमराह हो जाता है।

पूनम पश्चिमी रंग में रंगी हुई एक फैशनपरस्त लडकी है। रात में शराब पीकर गैर मर्दों के साथ गली-गली में घूमने में वह नहीं हिचकती है। माँडलिंग के लिए अपनी छाती और टाँगें दिखाना वह बुरा नहीं मानती। उसके सामने केवल एक ही लक्ष्य है-किसी भी कीमत पर धन कमाना और ज़िन्दगी का मौज उठाना। माँडलिंग के लिए स्टुडियो जाने के बहाने वह होटल कैमिलो जाती है। उसकी राय में उस होटल में सब कुछ है एक रात के एक हज़ार तक मिल जाते है। पैसे को ही वह जीवन का आधार मानती है। पूनम की मानसिकता आधुनिक युग के सुविधाभोगी व्यक्तियों की मानसिकता से मिलती-जुलती है।

आधुनिक युग में व्यक्ति चाहता है कि उसके पास पैसा आना-चाहिए, उसकी भौतिक आवश्यकताएँ पूरी होनी चाहिए। परिणामस्वरूप आज व्यक्ति किसी भी माध्यम से अधिक से अधिक धन कमाना चाहता है। धन की भूख इतनी विकट है कि कभी-कभी व्यक्ति तो धन प्राप्ति के लिए अपने शरीर की चिन्ता नहीं करता।

1'श्वेतकमल' -विष्णु प्रभाकर- पृ.सं - 31

पैसे के लिए वेश्यावृत्ति के एक पार्ट-टाइम काम अनियमित व्यवसाय या अतिरिक्त आय का साधन बना लिया गया है 'कॉल गर्ल्स' का मतलब यह है कि ज़रूरत पर जिन्हें निर्धारित शुल्क देकर सीधे टेलिफोन करके या उनके एजेन्टों के माध्यम से किसी निश्चित जगह पर, एक निश्चित अवधि के लिए बुलाया जा सके। मुख्यतः बडे नगरों में छोटे-बडे होटलों के माध्यम से पनपा यह वर्ग अब इसी उद्देश्य के लिए जुटी अपनी रहस्यमयी मित्र-मंडली के ज़रिए फल-फूल रहा है। इसमें गरीबी या मज़बूरी से कम शौकिया वेश्यावृत्ति अपनानेवाली संभ्रान्त मध्यवर्ग की युवतियाँ अधिक शामिल है। अधिकतर तो इस धंधे में लगे लोंगों के चलाए रैकट द्वारा किसी-न-किसी तरह बहका-फुसलाकर धोखे से लाई जाती है। आज पैसा प्राप्त करने के लिए व्यक्ति उचित-अनुचित का विवेक त्याग देता है। इसकी प्राप्ति के लिए वह अपनी सर्वाधिक प्रिय वस्तु का भी त्याग कर सकता है।

एक नौकरीपेशा नारी के रूप में बिन्दु को कई समस्याओं से जूझना पडता है। बिन्दु जैसी कामकाजी नारियों को अपने बॉस की कामुकता का शिकार बनाना पडता है। तीन दफ्तरों में तीन बाबुओं के साथ काम करते बिन्दु को यह कटु अनुभव हुआ कि एक असहाय और असमर्थ नारी के जिस्म को कामुक पुरुष अपने नुकीले दाँतों और पैने पंजों से चिथडे-चिथडे कर देना चाहते हैं। कामुक पुरुष नारी से कई अपेक्षायें रखता है। उन्हें मोहक और लावण्यमयी युवतियों की ज़रूरत है, जो अपने वक्षों को निर्वस्त्र करने के लिए तैयार है। उन्हें अपने व्यापार की प्रगति के लिए बडे-बडे अधिकारियों और मंत्रियों के साथ घूमने के लिए राज़ी होनोवाली औरतों की अवश्यकता है। बिन्दु के तीनों बॉसों ने समझ लिया कि बिन्दु

में यह गुण नहीं है। अपने स्वामियों की इच्छा पूरी करने के लिए वह तैयार नहीं थी। इसी कारण बिन्दु को अपनी नौकरी से बार-बार इस्तीफ़ा देनी पडती है। अपने आदर्श और स्वाभिमान की रक्षा के लिए किसी भी सुविधा को छोडने के लिए बिन्दु तैयार है। वह उन नारियों में से नहीं जो धन-दौलत और ऐश्वर्य के लिए अपने स्वाभिमान को स्वाह कर देती हैं। परिवार की भलाई पर ध्यान देते हुए उसकी माँ भी समझौता करने के लिए तथा नयी नौकरी यानी मंत्री का सेक्रेटरी पद स्वीकार करने के लिए उस पर दबाव डालती है तो वह क्रुद्ध होकर उत्तर देती है- *"आदर्शवादी न होती तो इस तरह अपना भविष्य न बिगाड लेती। पढाई बीच में छोडकर नौकरी के पीछे मारी-मारी न फिरती। समझौता करके ऐश करती। तुम लोगों के पास भी बहुत बडा मकान होता । सब सुविधाएँ होती। तुम्हारी बेटियाँ बढिया कपडे पहनती.....बढिया कालेज में पढती.....खुशियों से भर जाता तुम्हारा दामन, पर..... ।"*[1] स्वाभिमान की रक्षा के साथ-साथ बिन्दु अपने आदर्शों पर कायम रहने के लिए दृढ संकल्प है, वह किसी भी प्रकार की हेरा-फेरी करके धन कमाना नही चाहती। लेकिन जब उसके घरवाले यहाँ तक कि माँ भी चाहती है वि वह हेरा-फेरी करके धन कमाए तो उसकी चेचना आवेश से भर उठती है। बिन्दु जैसे पात्र व्यक्ति चेतना के उस ईमानदार रूप का प्रतिनिधित्व करते है जबकि वे परिवार में अर्थाभाव के बावजूद भी आदर्श को प्रमुख मानते हैं और किसी भी प्रकार उन्हीं आदर्शों की रक्षा करते हैं।

बिन्दू अपने घरवालों के लिए सारी खुशियाँ अपने पैरों तले रौंदती

---

1 'श्वेतकमल' -विष्णु प्रभाकर- पृ.सं.-14-15

है। उसकी खुशियाँ बाँटने के लिए घर में सब कुछ है, लेकिन दुःख बाँटने के लिए कोई नहीं। उसके दुःख बाँटने के लिए तैयार होकर उसकी ज़िन्दगी में आये डा० विकास को वह मन ही मन प्यार करती है। विकास ने ही उसे एक हिन्दी अधिकार की एक नई नौकरी दिलाई। लेकिन उन दोनों की शादी करा देने में माँ और बहन बाधा डालती है। क्योंकि माँ के लिए वह एक दुधारू गाय है। उसके विचार में डा० विकास के साथ बिन्दु की शादी हो जाएगी तो नीलिमा और प्रतिमा की पढाई अधूरी रहेगी तथा उनकी शादी का प्रबन्ध करने के लिए भी कोई नहीं. होगा। माँ यहाँ तक सोच बैठती है कि अपनी दूसरी बेटी नीलिमा के साथ डा० विकास की शादी हो जाय। अठतीस वर्ष की अधेड उम्रवाली बिन्दु के लिए शादी एक अनिवार्य चीज़ नहीं है। यों बिन्दु अपनी माँ और बहनों के लिए जीती है; लेकिन बदले में उसे अपनेवालों से स्वार्थपूर्ण व्यवहार ही मिलता है। नीलिमा ने डा० विकास से एक बार स्वयं कहा है कि वह विकास से प्यार करती है और जीजी को वह कभी नहीं पा सकोगे। विकास के मुँह से अपने घरवालों की सारी बातें सुनकर वह अपने ही घर में अजनबीपन महसूस करती है। उसके मन में अपनी माँ और बहनों के भविष्य की चिन्ता होने के कारण वह विकास को शादी के मामले में स्पष्ट उत्तर नहीं दे सकती। निजी जीवन की खुशियों से भी बढकर अपने घरवालों की खुशियों को ही वह तरजीह देती हे। रह-रहकर उसके मन में डा० विकास के प्रति चाह पैदा होती है। लेकिन उन अरमानों और अभिलाषाओं को दबाने की भरसक कोशिश करती है। ऐसे मानसिक उथल-पुथल के साथ नाटक की समाप्ति होती है। विष्णु प्रभाकर नाटक की नायिका बिन्दु को भारतीय

आदर्श नारी के रूप में चित्रित करने का प्रयास करते हैं जो अपने आदर्श और स्वाभिमान की रक्षा के लिए सदैव संघर्ष करती रहती है।

अतः विष्णु प्रभाकर अपने नाटकों के नारियों को बन्धनमुक्त और स्वावलंबी देखने के साथ-साथ उनके आदर्श रूप को भी प्रस्तुत करते हैं। वे अपने नाटकों में इस तथ्य की ओर बार-बार संकेत करते है कि नारी पुरुष की दासी नहीं, सहधर्मिणी एवं जीवन संगिनी है। अपने नाटकों में वे नारी मन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोभावों को चित्रित करने का प्रयास करते है। नारी मुक्ति उनका प्रिय विषय है। किन्तु सामाजिक रूढियों और अन्य बन्धनों में आबद्ध नारी आज भी शोषण का शिकार है। विष्णु प्रभाकर का विश्वास है कि अपने अस्तित्व एवं प्रतिष्ठा की लडाई नारी को स्वयं लडनी पडेगी, उसे साहसपूर्वक आगे आकर परिस्थितियों से संघर्ष करना होगा। इसके लिए स्वावलंबन तथा आर्थिक स्वाधीनता आवश्यक है। इस प्रकार विष्णु प्रभाकर अपने नाटकों में नारी समस्याओं को चित्रित कर नारी को समय के साथ आगे बढने की तथा समाज का सामना करने की शक्ति प्रदान करते हैं।

चौथा अध्याय

विष्णु प्रभाकर के नाटकों की मूल्य चेतना

विष्णु प्रभाकर के नाटकों की मूल्य चेतना

समाज को प्रगति की ओर ले जानेवाली मान्यताओं, विचारों और धारणाओं का नाम ही मूल्य है। मूल्य शाश्वत नहीं है। प्रत्येक युग के अपने-अपने मूल्य होता है। मूल्य मानव जीवन को दिशा देकर उसके औचित्य-अनौचित्य पर भी विचार करते है। स्वाधीनता के पश्चात् भारतीय समाज में मूल्य विघटन की स्थिति उपजी है। उसके कारणों में द्वितीय महायुद्ध का प्रभाव, विज्ञान, संयुक्त परिवार विघटन, तथा आधुनिकीकरण की चेतना आदि प्रमुख है। द्वितीय महायुद्ध के प्रभाव ने जीवन में अनास्था, कुंठा, निराशा आदि को जन्म दिया है। विज्ञान ने अंधविश्वासों तथा भावुकता के बदले तर्क एवं बुद्धिवाद को प्रतिष्ठित किया है और जीवन को यथार्थवादी मूल्यदृष्टि दी है। संयुक्त परिवार विघटन के कारण आणविक परिवार का महत्व बढ रहा है। नये मूल्यों को आत्मसात् करनेवाले आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से भारतीय समाज का परंपरागत ढांचा बदला है। इसके फलस्वरूप समाज में अर्थ संघर्ष की स्थिति भी उपजी जो सामाजिक मूल्य विघटन का कारण बनी। इस प्रकार स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय समाज में मूल्य परिवर्तन की प्रक्रिया व्यापक रूप में हुई है। एक जागरूक साहित्यकार अपने युगबोध और युगीन जन जीवन से. असंपृक्त नहीं रह सकता। उनकी रचनायें युगीन जीवन मूल्यों को अपने में समेकित करती है। ऐसा जागरूक साहित्यकार विष्णु प्रभाकर के नाटकों में परंपरागत जीवन मूल्यों के विघटन एवं नवीन जीवन मूल्यों के उदय के फलस्वरूप उत्पन्न टकराहट की गूँज सुनाई देती है। मूल्य परिवर्तन के संबन्ध में स्वयं उनका कहना है कि-*"जीवन में मूल्य सतत् बदलते*

रहते है। वे कभी-कभी धीरे बदलते है तो कभी तेज़ी से। उन्हें बदलते रहना चाहिए। ये स्वच्छ हवा की बयारे है। आज विज्ञान और तकनीक के कारण तेज़ी से सब कुछ बदल रहा है। साहित्यकार महाकाल का स्वामी होने से बदलते मूल्यों की भविष्यवाणी करता है। यदि मूल्य न बदलें तो साहित्य स्थिर हो जाएगा। साहित्य तो नये मूल्यों की स्थापना भी करता है।[1]

श्री विष्णु प्रभाकर ने मानव को आज के परिवेश में रखकर देखा है। इसलिए उनके नाटकों में शाश्वत मूल्यों की जगह मानवीय मूल्यों की चर्चा ही अधिक मिलती है। उनके अनुसार- *"मानवीय मूल्यों का साहित्य से सरोकार है। मानवीय मूल्य नहीं होंगे तो साहित्य क्या होगा। नैतिक पतन जो हो रहा है उसका कारण विश्वव्यापी है। आज सारे विश्व में मूल्यों का विघटन हो गया है। यानी इतना विघटन हुआ है कि ये हम समझ नहीं पा रहे हैं कि कहाँ जा रहे है। एक समय आया करता है जब मूल्यों पर प्रश्नचिह्न लगते है, गिरने लगते हैं। उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप फिर हम मूल्यों को पकडने की कोशिश करेगें ।* "[2]

विष्णु प्रभाकर प्रबुद्ध मानवीय चेतना के साथ-साथ गान्धीवादी चिन्तन से प्रभावित है। इसलिए एक ओर उनमें वैयक्तिक मूल्यों का चेतन स्वरूप मिलता है तो दूसरी ओर वे सामाजिक मूल्यों को भी महत्व देते है। उनका कहना है कि - *"जब मैं ने कलम पकडी तो गान्धीजी राष्ट्रीय आन्दोलन पर छाये हुए थे। देशभक्ति, त्याग, बलिदान, समर्पण, अन्याय का प्रतिरोध ओर कमजोर वर्गों के प्रति*

---

1 'मेरे साक्षात्कार' -विष्णु प्रभाकर -पृ.सं-124

2 'मेरे साक्षात्कार' -विष्णु प्रभाकर -पृ.सं- 85

क्रियात्मक सहानुभूति जैसे नैतिक मूल्यों पर ज़ोर था। मैं भी इन मूल्यों में डूब गया । यही मेरे साहित्य की शक्ति है और यही दुर्बलता है।[1] गान्धीवाद मूलतः मानवतावादी दर्शन है। इसमें विश्वबन्धुत्व की भावना अन्तर्निहित है। विज्ञान के ध्वंसकारी स्वरूप और विश्वयुद्धों की विभीषिका से त्रस्त मानव के लिए गान्धीवाद एक आदर्श शरण स्थल है। दोनों विश्वयुद्धों से पीडित मानवता, गान्धीवादी सिद्धान्तों में ही शान्ति पा सकती है। गान्धीवादी सिद्धान्तों में मानवतावाद का विशेष महत्व है।

मानवतावाद की गूँज:-

मानवतावाद विष्णु प्रभाकर का सबसे बडा मूल्य है। उन्होंने अपने नाटक 'नव प्रभात' में सम्राट् अशोक के हृदय परिवर्तन के माध्यम से हिंसा पर मानवीय प्रेम की विजय दिखाई है। कलिंग युद्ध की विभीषिका से संत्रस्त अशोक फिर कभी युद्ध न करने का निश्चय करते हुए अपनी रानी कारुवाकी से कहते है कि- *"अब फिर वह रक्त-रंजित इतिहास अपने को नहीं दोहराएगा।"*[2]

अशोक जानते है कि हृदय की विशालता ही सच्चे मानवतावाद की स्थापना कर सकती है। हृदय की विशालता और समग्र मानवता से अपने को जोडने की प्रवृत्ति आधुनिकता की देन है। विज्ञान के बढते चरणों ने अब मानव-मानव के बीच की दूरी कम कर दी है। अब मनुष्य को यह पृथ्वी छोटी लगने लगी है। इस छोटी दुनिया में अगर सद्भाव कायम करके रखना है तथा

---

1 'विष्णु प्रभाकर व्यक्ति और साहित्य'- सं-महीप सिंह -पृ.सं-24-25

2 'नव प्रभात' -विष्णु प्रभाकर -पृ.सं-109-110

मानवता को जीवित रखना है तो हिंसा का परित्याग करके हृदय की विशालता को प्रश्रय देना ही होगा । अशोक की बहन संघमित्रा शौर्य की संज्ञा देते हुए उससे कहती है- *"हृदय ! हृदय की विशालता और उदारता का नाम शौर्य है सम्राट् !"*[1]

विष्णु प्रभाकर की युद्ध विरोधी भावना सराहनीय है। युद्धोपरान्त जीवन से उनका मन काँप उठता है। युद्धोपरान्त मानवी विनाश-लीला को प्रकट करते हुए इस नाटक की रेवा के रूप में स्वयं विष्णु प्रभाकर संघमित्रा से पूछ रहा है- *"इस बीभत्स लीला को मनुष्य कहता है-विजय ! सभ्यता और संस्कृति का विजय ! देवी क्या आप ऐसी परिस्थिति में संगीत से आहों की अग्नि के अतिरिक्त प्रेम की शीतलता की आशा करती है? मृत्यु के अतिरिक्त जीवन का संदेश सुनना चाहती है।?"*[2]

युद्ध, क्रूरता और हिंसा मानव जाति के मूल शत्रु है। उनकी उस कलिका को प्रकट करने के पीछे लेखक की मानवतावादी दृष्टि ही मुख्य प्रेरक का कार्य कर रही है। इस मानवतावाद की स्थापना की मूल्य सत्य है 'सर्वजन हिताय' कार्य करना। 'सत्ता के आर-पार' नामक नाटक में जब भरत तपनिरत बाहुबली के चरणों में प्रणाम करते है तो बाहुबली मानव कल्याण को ही मुक्ति का द्वार बताते हैं। उनका कहना है- *"भरत चक्रवर्ती, कौन मै, कौन तू। सब सबके हैं।*

1.'नव प्रभात' -विष्णु प्रभाकर -पृ.सं - 31

2.'नव प्रभात' -विष्णु प्रभाकर -पृ.सं - 21

यही ज्ञान मुक्ति है। यही कैवल्य है।[1]

मानवतावाद और विश्वबन्धुत्व की भावना का अटूट संबन्ध है। विश्वबन्धुत्व ही भावना से प्रेरित विष्णु प्रभाकर के मन में लबालब भरी हुई है। उनके द्वारा रचित पात्रों से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है। उनके नाटक 'गान्धार की भिक्षुणी' नाटक का यशोधर्मन एक ओर तो शस्त्रबल से हूणों को पराजित करता है; परन्तु उनकी प्रेरणा देवी आनन्दी और मिहिरकुल की बेटी शहज़ादी दोनों यही चाहती है कि हूणो एवं भारतीयों के बीच परस्पर सौमनस्य बढे। दोनों जातियाँ सांस्कृतिक रूप से एकाकार हो जायें। पराजित होकर अपने देश वापस लौटते वक्त मिहिरकुल शहज़ादी को अपने साथ ले जाना चाहता है। किन्तु शहज़ादी ने उनके साथ जाना स्वीकार नहीं किया। उसने अपने पिता से स्पष्ट कहा कि- *"मेरा सुख इस मुल्क में रहने में है और मेरा सुख सिर्फ मेरा नहीं है; वह मेरी कौम और मेरे मुल्क का भी सुख है।*[2] यहाँ अपनी खुशी को सारे मुल्क में ढूँढनेवाली शहज़ादी स्वयं लेखक का ही प्रतिरूप है।

जब शहज़ादी यशोधर्मन के सम्मुख लायी जाती है तो वह निर्भीक होकर कहती है कि वह हूणो और भारतवासियों का भावात्मक सम्मिलन चाहती है। वह चाहती है कि हूण भारत में शासक बनकर नहीं; भारत की प्रजा बनकर रहे। इसलिए वह यशोधर्मन को समझाती है कि- *" मेरा वतन तो भारत है। मैं अपने वतन को प्यार करती हूँ। मैं यही रहूँगी। इसे बदला या पछतावा कुछ भी कहो, मैं*

---

1 'सत्ता के आर-पार' -विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग -4 पृ. सं - 436

2 'गाँधार की भिक्षुणी' -विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग -5 पृ. सं - 133

ने तय कर लिया कि मैं अपने पिता के सपनों को पूरा नहीं होने दूँगी। हूण भारत पर हुकुमत नहीं. कर सकते; वे भारत में रहेंगे पर हकिम बनकर नहीं उसकी रैयत बनकर।[1] शाहजीदी के इस कषन विष्णु प्रभाकर के देश-प्रेम का ही प्रतिफलन है।

मानवतावाद के इस मूल्य के प्रति अपनी गहन आस्था के कारण ही विष्णु प्रभाकर ने अनेक ऐसे महापुरुषों के जीवन पर नाट्य सृजन किया है, जिन्होंने मानव हित के लिए जिये और मानव हित के लिए ही मरे, जो सबके हो गये थे। 'सत्ता के आर-पार', 'नव प्रभात', 'गान्धाकर की भिक्षुणी' आदि ऐसे ही महापुरुषों के महनीय कार्यों पर आधारित नाटक है।

राष्ट्रीयता का प्रसार:-

उनके नाटकों का दूसरा स्वीकृत मूल्य है राष्ट्रीयता । उन्होंने मानवतावादी होते हुए भी राष्ट्रीयता के महत्व को नहीं नकारा है। राष्ट्रीय अस्मिता और स्वाभिमान को वे अपने नाटकों में एक स्वीकृत मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। 'गान्धार की भिक्षुणी' और 'केरल का क्रान्तिकारी' नाटक उन्होंने राष्ट्रीय स्वाभिमान को सामने रखकर ही प्रस्तुत किये हैं। दोनों में राष्ट्रीय अस्मिता को पददलिता करने का प्रयास करनेवाले आततायी और आक्रमणकारियों से संघर्ष करनेवाले बलिदानी एवं जीवंत वीरों की कथायें गूँथी हुई है। अतः विष्णु प्रभाकर ने राष्ट्रीयता को अपने नाटकों का एक सर्वमान्य एवं स्वीकृत मूल्य मानकर अपनाया है। उनकी राष्ट्रीयता मानवता के मार्ग का रोडा नहीं है।

समाज को सुव्यवस्थित करने के लिए संसार में सभी जातियों ने राजतन्त्र

---

1 'गाँधार की भिक्षुणी' -विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग -5 पृ. सं - 135-136

की व्यवस्था को स्वीकार किया है, लेकिन भारत में उसका आदर्श प्रारंभ से ही जनतान्त्रिक रहा है। आधुनिक युग में व्यक्ति की सत्ता को प्राधान्य मिला। इसके फलस्वरूप जनतन्त्रों की स्थापना हुई, जिनमें प्रत्येक जन को अपना राजा चुनने का मताधिकार प्राप्त हुआ। लघु मानव की प्रतिष्ठा, आम आदमी का वर्चस्व या जनता के प्रति निष्ठा जैसे शब्द जनतत्रवाद की स्थापना के ही सूचक हैं। गान्धीजी का हरिजनोद्धार, विनोबा का सर्वोदय और जयप्रकाश नारायण का संपूर्ण क्रान्ति की दिशा में बढते हुए पग ही हैं। विष्णु प्रभाकर जनतंत्र को आधुनिक युग का वरदान मानते हैं और उनके साहित्य इसी की तर्कसम्मत हिमायत करते है। 'गान्धार की भिक्षूणी' का जनेन्द्र कोई परंपरागत राजा नहीं है। वह जनता के बीच में से उभरकर आता है। उनकी राय में राजा या शासक को चुनने का अधिकार उस देश के नागरिकों पर निर्भर है। जनेन्द्र का वरण किसी वंश से नहीं, प्रतिभा से करना है। वह किसी भी शर्त पर राजवंश की स्थापना करना नहीं चाहता है। उनके बाद अपने कुल का कोई भी व्यक्ति राजगद्दी पर बैठना वह नहीं चाहता है। इसलिए हूणों की पराजय के बाद जनता यशोधर्मन से राजा बनने का आग्रह करती है तो वे स्वष्ट कहते हैं कि- *"सत्ता का मोह सद्-असद् के विवेक को नष्ट कर देता है। इसलिए मुझे शक्ति दो, प्रमाद नहीं। मुझे सामीप्य दो, दूरी नहीं। मैं देख रहा हूँ सुदूर भविष्य में। गणतंत्र उठेंगे, गिरेंगे, राजतंत्र पनपेंगे और मिटेंगे पर मुझे लोग इसी रूप में याद रखेंगे कि एक राजा था जो कहीं से उतरा नहीं था, जिसे प्रजा ने चुना था और जिसने प्रजा का राज्य प्रजा को लौटा दिया था नया*

राजा चुनने के लिए।[1]

'गान्धार की भिक्षुणी' के ही समान 'केरल का क्रान्तिकारी' नाटक में भी लेखक ने जनतांत्रिक मूल्यों की स्थापना पर बल दिया है। इसमें अंग्रेज़ी सत्ता से संघर्ष करनेवाले केरल के क्रान्तिकारी वेलुत्तंपी की प्रेमिका अम्मुकुट्टी जनता से कहती है कि -*"अब वह वेलुत्तम्पी तुम्हारे सामने है। तुम लोग ही उसकी शक्ति है; तुम चाहोगे तो वह विजयी होगा । तुम चाहोगे तो वह मिट जाएगा....हमारी एकता ही हमारी आज़ादी को बचा सकती है।*[2]

विष्णु प्रभाकर की राय में विदेशी शासन से हमारी मुक्ति का एकमात्र उपाय भारतीय जनता की एकता हैं। स्वाधीन भारत की सदैव से ही यही नीति रही है कि देश-विदेश में अहिंसा और प्रेम द्वारा ही शान्ति स्थापित हो सकती है और इसी के माध्यम से पारस्परिक एकता की भावना विकसित हो सकती है। राष्ट्र प्रेम और राष्ट्रीय एकता के लिए देश के आन्तरिक विद्रोह एवं विद्वेष को समूल नष्ट करना है।

अतः यह स्पष्ट रुप से देखा जा सकता है कि जनतंत्र, आधुनिकता का एक सर्वस्वीकृत मूल्य है। यही जनतंन्त्र विष्णु प्रभाकर के नाटकों का एक स्वीकृत मूल्य है, आस्था है और जीवन्त तात्विक चिन्तन है।

साम्प्रदायिक सद्भाव एवं मानव-मानव के बीच जाति-पाँति से इतर सहज मानवीय संबन्धों की स्थापना का प्रयास उनके नाटकों का और एक महत्वपूर्ण

1'गान्धार की भिक्षुणी' -विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग -5 पृ. सं - 140-141

2'केरल का क्रान्तिकारी' -विष्णु प्रभाकर पृ. सं - 35

स्वीकृत मूल्य है। उन्होंने अपने नाटक 'युगे-युगे क्रान्ति' में इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि समाज में जब तक जातीय वैमनस्य दूर नहीं होगा तब तक न तो सद्भाव कायम हो सकता है, न उदार मानवतावाद को प्रश्रय मिल सकता है।

राजनैतिक माहौल का मूल्य -पतन :-

विष्णु प्रभाकर ने अपने चारों ओर के राजनैतिक माहौल में मौजूद राजनैतिक मूल्य विघटन पर पैनी दृष्टि डाली है। उनके 'कुहासा और किरण' नाटक में राजनैतिक जीवन के कटु और तीक्ष्ण सत्यों को उद्घाटित किया गया है। उस नाटक के कृष्णचैतन्य क्रान्तिकारी आन्दोलन के साथ विश्वासघात करके सरकारी आदमी बन गये थे। वे इस बात का समर्थन करते है कि जब सभी शासन से लाभ उठा रहे हैं तो वे पीछे क्यों रहे? वे हवा का रुख देखकर चलनेवाले मध्यवर्गीय अवसरवादी है जो शासन व्यवस्था के साथ मिलकर उसका लाभ उठाने से नहीं चूकते। यह बात भी विश्वास के साथ नहीं कह सकते है कि जो लोग स्वतंत्रता संग्राम में आगे थे वे भी अपने स्वार्थपूर्ति के लिए तथा सुख समृद्धि पाने के लिए कोई कार्य नहीं करते हैं। स्वतंत्रता के बाद में देश में पनपे अवसरवाद के संबन्ध में कृष्णचैतन्य का कहना है कि - *"....रचनात्मक क्षेत्र में, सत्ता के क्षेत्र में क्या वे ही लोग आगे नहीं है, जो टेडी उँगली से घी निकालने में विश्वास रखते हैं, जो प्रत्यक्ष नहीं परोक्ष रूप में बिकते है? सबसे खतरनाक प्रलोभन वे हैं जो खुफिया तौर पर आपको पिलपिला करते हैं।"*[1] स्वतंत्रता के बाद प्रत्येक व्यक्ति ने यही रुख अपनाया।

---

1 'कुहासा और किरण' - विष्णु प्रभाकर - पृ. सं- 103-104

राष्ट्रीय स्तर के भ्रष्टाचार की समस्या को प्रस्तुत करनेवाले इस नाटक की लेखिका प्रभा जब उपन्यास लेकर अपने क्रान्तिकारी साथी से गद्दारी करनेवाले राष्ट्रनेता कृष्णचैतन्य की पत्नी से मिलती है तो वह उससे स्पष्ट कहती है कि- *"वह वर्ग है मुखबिरों का,दल-बदलुओं का, संस्कृति, साहित्य,राजनीति, समाजनीति,घर,आंगन सब कहीं वह नज़र आता है।"*[1]

स्वतंत्रता के बाद क्रान्ति की आग में खुद को झोंक देनेवाले वीरों के आश्रितों को दर-दर भटकना पडा। इस नाटक में जहाँ अपने साथियों को पकडवानेवाले विश्वासघाती कृष्णचैतन्य जैसे लोग सत्ता का सुख भोग रहे है, वहाँ उसी दल के नेता चन्द्रशेखर की पत्नी मालती आर्थिक अभाव में दर-दर भटकती है। स्वतंत्रता के बाद सरकार ने कुष्णचैतन्य जैसे मुखबिरों के लिए ढाई- सौ रुपये प्रतिमाह की पेन्शन की व्यवस्था कर दी। लेकिन मालती की किसी ने शिनाख्त भी नहीं की। उसका कहना है- *"मेरे पति चार साल मुलतान जेल में रहे। अब सरकार कहती है कि कोई बडा आदमी, कोई एम. पी. यह प्रमाणित कर दे कि मेरे पति सचमुच जेल में रहे थे तो मुझे पेन्शन मिल सकती है। मैं तीन-तीन वर्ष से दर-दर भटक रही हूँ। कोई माई का लाल मुझ दुखियारी की नहीं सुनता।"*[2] कुष्णचैतन्य तो उसे पहचानने तक इन्कार कर देता है।

इस प्रकार विष्णु प्रभाकर के नाटकों में जो राष्ट्रवादी स्वर है वे केवल राष्ट्रीय एकीकरण या स्वदेश के गौरवगान तक ही सीमित नहीं हैं अपितु

1'कुहासा और किरण' - विष्णु प्रभाकर - पृ. सं. - 47

2'कुहासा और किरण' - विष्णु प्रभाकर - पृ. सं - 39

उन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर उभरनेवाली समस्याओं को भी परख कर प्रस्तुत किया है।

स्वतंत्रता के पश्चात् प्रजातंत्रीय राजनीति में भ्रष्टाचार का बोलबाला हो गया । प्रत्येक नेता अवसरवादी तथा सत्ता से अधिक से अधिक लाभ उठाने की तलाश में रहता है। इसलिए आज राजनीति का चरित्र पूर्णतः अवसरवादी हो गया है। सरकार की स्थिरता-अस्थिरता पर भी इसका प्रभाव पडा है। 'टूटते परिवेश' में इसका प्रमाण देखने को मिलता है। इस नाटक का दीपक अपना दल छोडकर मुख्यमंत्री के साथ इसलिए मिल जाता है कि उसे मंत्री बना दिया जाएगा। न बनाने पर वह विद्यार्थियों द्वारा उनका घिराव कर सकता हे। संसद या विधान सभा का सदस्य यहाँ होनेवाले बँटवारे से वंचित नहीं रहना चाहता। अपने पीछे कुछ लोगों का गुट बनाकर वह कभी भी सरकार गिराने की धमकी दे देता है और सुविधा प्राप्त होते ही उसका यह विरोध समाप्त हो जाता है। इसके संबन्ध में अशोक विश्वजीत से कहता - *"सरकारें बनती हैं बिगडती हैं पर ये पार्टियाँ कभी नहीं टूटती । विधान सभा में कुल एक सौ बीस सदस्य हैं, तीस को मंत्री बना दिया। फिर भी मंत्रिमण्डल टूट गया।"*[1] यहीं भारतीय प्रजातंत्र की सही तस्वीर है। अब गान्धीजी के आदर्श अप्रासंगिक हो गये है। क्योंकि अब राजनीति का सिद्धान्तों से, धन का परिश्रम से, आनन्द का आत्मा से, ज्ञान का चरित्र से, व्यापार का नैतिकता से विज्ञान का मानवीयता से और पूजा का त्याग से कोई संबन्ध नहीं रह गया है। जीवन मूल्यों में यह परिवर्तन प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार का कारण है।

---

1 'टूटते परिवेश' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं- 54

मध्यवर्ग से आये हुए नेताओं को धन और पद की अनेक आकांक्षायें रहती है, जिन्हें वे हर कीमत पर पूरी कर लेना चाहते हैं। आज के देश-भक्तों के सामने चारों ओर व्याप्त अन्याय और धोखाधडी की बातें आती है किन्तु किसी को कोई चिन्ता नहीं। उन्हें चिन्ता केवल इस बात की है कि नई पीढी को कहीं. सही नेतृत्व न मिल जाए। इसके बारे में दीप्ति का कहना है कि- *"उन्हें बस एक ही बात की चिन्ता हैं कि कही नई पीढी को सही नेतृत्व न मिल जाए. वे हताश और निराश ही बने रहें और बूढे लोग मृत्यु के अन्तिम पग- ध्वनि सुनने तक ऐयाशी और अधिकार की गंगा में डूबे रहें । लेकिन मैं कहती हूँ कि अब वह युग आ रहा है कि जब आदमी के भीतर और बाहर को कोई करतूत छिपी नहीं रहेगी। वह नंगा हो जाएगा और उसी नंगी लाश पर नई सभ्यता जन्म लेगी।"*[1]

नये-पुराने मूल्यों की टकराहटः-

आज परिवार, समाज, राजनीति एवं धर्म के स्तर पर जो नंगापन उभरा है उसने नयी पीढी में आक्रोश भर दिया है, क्रान्ति की भावना पैदा कर दी है। संयुक्त परिवार में विघटन का एक प्रमुख कारण पुरानी तथा नई पीढी की वैचारिकता में अन्तर है। पीढियों का यह संघर्ष केवल व्यक्तियों का संघर्ष ही नहीं है, मान्यताओं और मूल्यों का संघर्ष भी है। नई पीढी नयी मर्यादायें, नये मूल्य गढना और केवल अनुभवों से जीना पसंद करती है। फलस्वरूप पुरानी और नई दोनों पीढियों में अन्तर उत्पन्न हो गया है। दो पीढियों में संघर्ष सदैव से रहा है और आगे भी रहेगा। किन्तु स्वतंत्रता के बाद मूल्य कुछ तेज़ी से बदले है इसलिए

---

1 'टूटते परिवेश' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं-47

यह संघर्ष आज कुछ अधिक ही है। विष्णु प्रभाकर को चिन्ता इस बात की है कि पुरानी पीढी में खोखला आदर्श है, हठ्त, वर्जनशीलता है तथा नई पीढी में चिन्तनहीन असंयत आक्रोश है, उच्छृंखलता है। मुक्ति दोनों चाहती है पर उनका परिवेश बस उन्हीं तक सीमित होकर रह गया है। नये-पुराने सभी बेचैन हैं पर किसी समाधान पर नहीं पहुँच पा रहे। इन दो पीढियों के मूल्यों का संघर्ष उनवे अधिकांश नाटकों में देखा जा सकता है। नये और पुराने मूल्यों का संघर्ष परिवार, राजनीति, धर्म, अध्यात्म और संस्कृति सभी में निहित है।

पाश्चात्य सभ्यता से बुरी तरह प्रभावित होने के कारण स्वातंत्र्योपरान्त भारत की युवा पीढी को पुरानी पीढी की हर बातें 'बुर्जुआ नसीहत' लगती है। लेकिन पुरानी पीढी को अपने मार्ग का अवरोध मानती है। वे एक दुसरों के लिए उतना निरर्थक हो जाते है कि वे एक दूसरे को समझ नहीं पाते हैं। 'टूटते परिवेश' के विश्वजीत अपने बेटों के व्यवहार से परिवार में अपनी निरर्थकता का अनुभव करते हुए कहता है कि- *"कोई सुनता है मेरी बात, सभी समझते हैं धरती पर बोझ हूँ बेकार का। कैसा वक्त आ गया है? एक वह हमारा ज़माना था, कितना प्यार, कितना मेल, एक कमाता दस खाते। हरेक दूसरे से जुडने की कोशिश करता था और अब सब कुछ फट रहा है। सब एक दुसरे से भागते हैं।"*[1] वर्तमान जिवन प्रणाली में औद्योगिक-वैज्ञानिक प्रगति के साथ मूल्य विघटन से मानव का मानसिक अधःपतन हुआ है। परस्पर आत्मविश्वास की जगह आज रिसती भावनओं ने ले ली है। इससे मानव-मानव के बीच का आपसी मेल तथा भाई-चारे का

---

1 'टूटते परिवेश' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं-15

संबन्ध प्रायः टूटता चला जा रहा है और मानवीय भावनाओं की घोर उपेक्षा होने लगी है। फलतः मानव अपनों से और समाज से कटा और टूटा हुआ प्रतीत होता है।

विश्वजीत जितना अपने परिवार को सहेजने की कोशिश करता है उतना ही वह बिखरता जाता है। उनकी संतान बहाना मिलें तो बहुत जल्दी ही बाहर निकल जाना पसंद करती है। सब अपने लिए जीना चाहते हैं। किसी को दूसरे की चिन्ता नहीं रह गई हैं। यह प्रत्येक मध्यवर्गीय परिवार में होनेवाली आम घटना है। सन्तानों की महत्वाकांक्षा के कारण परिवार का पुराना ढांचा टूट रहा है। हर घर में माता-पिता और सन्तान के बीच की खाई बढती जा रही है। परिवार में पुरानी और नई पीढी में वैचारिक अन्तर के आधार पर भी संबन्धों में दरार पडने लगती है। सन्तान माता-पिता को अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप सहायक पाकर स्वच्छन्द एवं विद्रोही बन जाती है। लेकिन विश्वजीत के ज़माने में बडों की इजाज़त के बिना कुछ कर ही नहीं सकते थे। उनके समय में वे अपने पिता की आज्ञा के बिना घर के बाहर पैर भी नहीं रख सकते थे। इसके संबन्ध में दीप्ति का कहना है कि- *"पापा तब लोग न तो चाँद पर पहुँचे थे, न टेरिलिन पहनते थे। चुइंगगम भी उस ज़माने में कहाँ होगा? यह नाभिकीय तकनीक का युग है पापा 'कम्प्यूटर' मनुष्य से अधिक कुशलता से काम करता है।"*[1] आज विश्व में सर्वत्र यांत्रिकता का बोलबाला है। उनका प्रभाव जीवन के भौतिक क्षेत्र पर ही नहीं, बल्कि मानव के भावनात्मक स्तर पर भी पडा हुआ है। मशीनीकरण और

1'टूटते परिवेश' -विष्णु प्रभाकर - पृ.सं-28

औद्योगीकरण का उपयोग मानव ने अपने सुख और समृद्धि के लिए किया है। किन्तु यंत्रों के संपर्क में रहकर वह खुद यंत्रवत् बन चुका है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व की पीढी और उसके मूल्य एक विशेष लक्ष्य से जुडे थे। लक्ष्य था स्वाधीनता प्राप्त करने का। इसलिए आदर्श, नैतिकता, आत्म- बलिदान और मानवता जैसे पवित्र बोध ने सबको जकड रखा था। समाज - सुधार के युग से लेकर गान्धी-नेहरू युग के बाद के लोग भी कई रूपों में अपने पूर्ववर्तियों से भिन्न होकर एक प्रकार की पवित्रता से चिपके रहे। इसके बाद सहसा मूल्य बदलने शुरू हुए। परंपरागत मूल्यों के प्रति अनास्था बढ गई, रिश्ते बदले और देखते-देखते आदर्श ढह गये। जो आज़ादी के लिए लडे थे वे नयी पीढी के सामने नंगे हो गये। आज ईमानदारी से जीना असंभव हो गया है। दबाव और भी थे। आर्थिक वैषम्य, बेकारी, बढती हुई आज़ादी की समस्या और राजनीतिक आज़ादी ने समूचे परिवेश जैसे सामाजिक, पारिवारिक, व्यक्तिगत सभी को स्वंतंत्रता की पुकार लगाने को प्रोत्साहित किया। इसलिए आक्रोश भरे चिन्तन ने भावुकता का स्थान लिया। इस प्रकार दो पीढियों में अन्तर पैदा हो गया। पर नयी पीढी परंपरा से कट सकती हो ऐसा संभव नहीं है। लेकिन यह भी सच है कि परंपरा की हर कडी वही नहीं होती जो पहले थी। वह अलग भी है और आगे भी। इसके संबन्ध में विष्णु प्रभाकर का कहना है कि -*"वर्जनशीलता गलत है तो उच्छृंखलता भी सही नहीं है। स्वच्छन्द यौनाचार युग-जीवन के प्रति प्रतिबद्धता का प्रतीक नहीं है और न आधुनिकता नारी के संबन्धों तक ही सीमित है। जीवन हर कहीं और हर स्तर पर पनप रहा है। इसी तरह संबन्धो का टूटना संगत नहीं*

है, नये संबन्धों की तर्कसम्मत स्थापना उससे अधिक संगत है। नयी पीढी पुरानी के प्रति असंयत आक्रोश प्रकट करती है पर अपनी दुर्बलताओं को नहीं देखती। इसलिए तात्कालिक प्रभाव ही नहीं, दूरगामी प्रभाव भी हमारा अभीष्ट होना चाहिए।"[1]

अतीत से वर्तमान का संघर्ष सदा-चलता आया है, चल रहा है और चलता रहेगा। समाज की किसी रूढि-परंपरा को उस युग की विद्रोही शक्ति तोडती है तो वह समझने लगती है कि उन्होंने क्रान्ति की। लेकिन वह एक परंपरा को तोडकर दूसरी परंपरा को प्रस्थापित करती है; यही परंपरा आगे आनेवाली पीढी के लिए घातक लगती है और यह पीढी उसे तोडकर अपनी नई परंपरा प्रस्थापित करती है। इन सनातन पीढी संघर्ष की दौड में पुरानी पीढी अपने पुरातन आदर्शों, मान्यताओं और मर्यादाओं को रक्षित कर नई पीढी पर अपने मूल्य थोपने का प्रयास करती है। लेकिन नई पीढी उन मान-मूल्यों और रूढियों को ध्वस्त कर नवीन मूल्यों की प्रतिस्थापना करती है। इसलिए यह पीढी-संघर्ष निरन्तर चलता रहेगा। उनके नाटक 'युगे-युगे क्रान्ति' की केन्द्रीय धुरी यही पीढी-संघर्ष ही है।

इस नाटक का देवीप्रसाद पुरातन मान्यताओं को माननेवाला, प्राचीन संस्कारों से ग्रस्त एक ऐसा पिता है जो अपनी पुत्री ज्योत्स्ना के प्रेम विवाह के बारे में सुनकर उसे मान्यता देने से इन्कार करता है जबकि वह स्वयं अपनी पुत्री के विवाह के लिए चिन्तित है। वह नहीं चाहता कि उनकी पुत्री अपनी इच्छानुकूल विवाह करे। विष्णु प्रभाकर ने नाटक के माध्यम से पीढी-दर-पीढी चलनेवाले

---

1. 'टूटते परिवेश'- भूमिका - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं- 4

जीवन मूल्यों के परिवर्तन को दिखाने के लिए इस नाटक के अन्तर्गत एक दूसरे नाटक का आयोजन किया है। प्रस्तुत नाटक का कल्याणसिंह तो कुलरीति के खिलाफ़ सबके सामने अपनी पत्नी का मुँह देखकर क्रान्तिकारी बन जाता है । भारत के परंपरागत मध्यवर्गीय परिवारों में बुजुर्गों के रहते जवान लोग अपनी पत्नी का मुँह नहीं देखा करता। समाज को खोखले पाखण्ड से मुक्त करनेवाला कल्याणसिंह पच्चीस वर्ष के बाद अपनी सन्तान प्यारेलाल के समय प्रतिक्रियावादी बन जाता है। प्यारेलाल अपने युग की मान्यताओं को तोडकर एक विधवा कलावती से विवाह कर क्रान्तिकारी बन जाता है। उस समय भारतीय समाज में विधवा का जीवन अत्यंत कष्टपूर्ण है। प्रारंभ में विधवा-विवाह वर्जित था। बाद में समाज सुधारकों के प्रयासों से यह शुरू हुआ। मध्यवर्ग में विधवा-विवाह के समर्थन तथा विरोध दोनों स्थितियाँ आज भी विद्यामान है। मध्यवर्ग के कुछ लोग परंपरावादियों के डर से अपनी विधवा लडकियों का विवाह नहीं कर पाते। ऐसे समय प्यारेलाल विधवा कलावती से विवाह करने की प्रतिज्ञा कर लेता है जबकि उनके पिता कल्याणसिंह इसका विरोध करते हुए कहता है- *"कैसा ज़माना आ गया है।कुछ सिरफिरे लोग कहते हैं कि विधवा का विवाह होना चाहिए। पापी, लम्पट शास्त्र की बात लाँघना चाहते हैं। धर्म को भ्रष्ट करना चाहते हैं ।"*[1] कल्याणसिंह अपनी पत्नी का मुख देखकर क्रान्ति कर सके थे, पर विधवा -विवाह की क्रान्ति का तेज़ उनकी सहनशीलता से बाहर है। उनकी सन्तान क्रान्तिकारी प्यारेलाल अगली पीढी के सामने दकियानूस बन जाता है। क्योंकि वह विधवा-विवाह तो करता है,

---

1 'युगे-युगे क्रान्ति' - विष्णु प्रभाकर - पृ. सं- 25

लेकिन स्त्री को घर की चारदीवारी से बाहर आने की अनुमति नहीं दे सकता। लेकिन उनकी बेटी शारदा साहसी है। स्त्री-पुरुष समानता की समर्थक शारदा की राय में उनके अधिकार और कर्तव्य भी समान है। भारत में प्राचीन काल से ही नारी समाज और व्यवस्था की रूढियों की शिकार हुई है। आधुनिक युग में नारी-शिक्षा के विकास के साथ-साथ नारी के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया। इस परिवर्तन का ही परिणाम है कि अब नारी समाज के किसी भी रूढिगत निर्णय को सिर झुकाकर स्वीकार नहीं कर लेती। शिक्षित नारियों में स्वातंत्र्य की भावना तथा अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता आयी है। शिक्षा प्राप्त करके वे अपने अस्तित्व और अस्मिता को पहचानती है। कुछ नारियाँ जहाँ अपने विकास को दृष्टि में रखकर प्राचीन रूढियों और नवीन विचारों में संगति बिढाकर उन्हें स्वीकार करती है वहाँ दूसरा वर्ग इन रूढियों का मूलोच्छेद करना चाहता है। यहाँ शारदा अपने सिर से साडी का पल्ला उतर जाने पर पिता द्वारा पीट दिये जाने के कारण हमेशा के लिए रूढियों की विरोधी हो जाती हे। इसके संबन्ध में वह कह रही है कि - *"रहा होगा किसी युग में सिर ढकना अच्छी बात, रहा होगा कभी नारी का घर की चारदीवारी में बन्द रहना अच्छा , लेकिन आज इन बातों की कोई ज़रूरत नहीं है। यह रूढियाँ हमें कमज़ोर बनाती हैं। हम इन्हें स्वीकार नहीं करेंगे ।"*[1]

मध्यवर्गीय युवक-युवतियों को विवाह में जाति-पाँति की रूढियों से टकराना पडता है। यद्यपि अब अंतर्जातीय विवाह होने लगे हैं लेकिन अधिकांश माँ-बाप इसके पक्ष में नहीं होते। लडके का पिता तैयार हो जाता है तो लडकी का

---

1 'युगे-युगे क्रान्ति' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं- 35

पिता मना कर देता है। इस नाटक में शारदा चन्द्रकिशोर का बेटा विमल से शादी करती है। वह संयुक्त प्रान्त की अग्रवाल है और विमल पंजाबी खत्री। विमल के पिता विवाह के लिए तैयार हो जाते है। इस प्रकार अन्तर्जातीय विवाह करके शारदा अपने पिता को परंपरावादी और अपने को क्रान्तिकारी घोषित करती है। यहाँ भी प्यारेलाल की क्रान्ति रूढि बन गई है; क्योंकि विधवा-विवाह कर क्रान्ति करनेवाले प्यारेलाल शारदा और विमल के अन्तर्जातीय विवाह का कट्टर विरोधी थे। लेकिन आगे चलकर सन् 1942 ई. में वही शारदा अपने पुत्र प्रदीप के सामने पुरानपंथी सबित होती हे। क्योंकि वह नहीं सह सकती कि अपना पुत्र प्रदीप जैनेट जैसा परधर्म ईसाई युवती से शादी करें।

हिन्दुओं में आपसी जातियों में विवाह करने में उतनी कठिनाई नहीं. आती जितनी विधर्मियों के साथ। क्योंकि उनके रहन -सहन, अचार-विचार आदि में काफ़ी अन्तर है। प्रदीप ईसाई लडकी जैनेट से विवाह करना चाहता है, लेकिन उनके पिता चाहते है कि परिवार और समाज की स्थिति को देखते हुए जैनेट को शुद्ध करके जाह्नवी बना लिया जाय। लेकिन प्रदीप इसका विरोध करते हुए कहता है- *"जैनेट को यदि शुद्ध करके जाह्नवी नाम दे दिया जाएगा तो क्या इसका कुछ बदल जाएगा? नाम बदल जाने से गुण और दोष नहीं बदल जाते ।"*[1] यदि विजातीय विवाह करने है तो उनमें दूसरे व्यक्ति के धर्म, जाति इत्यादि को पूर्ण सम्मान देना होगा । यदि दूसरे व्यक्ति का धर्म परिवर्तित करने का हठ किया जाए तो यह निरर्थक-सा ही है। प्रदीप द्वारा जैनेट के धर्म-परिवर्तन करने से मना

---

1 'युगे-युगे क्रान्ति' -विष्णु प्रभाकर - पृ.सं. - 54

कर देने पर उसके पिता विमल में झूठा वंशाभिमान सिर उठाता है और वह स्पष्ट कह देता है कि- *"अगर वह धर्म परिवर्तन नहीं करती, तो इस घर में तुम्हारे लिए कोई जगह नहीं है। कहाँ यह एक छोटी जाति की स्त्री और कहाँ हम खत्रियों में भी शीर्षस्थ ।"*[1]

अपने धर्म की सीमा लाँघकर जैनेट को अपनानेवाला प्रदीप अपनी सन्तान के सामने सडी-गली परंपरा बन जाता है। क्योंकि उसने परधर्म की लडकी से शादी तो किया था, लेकिन उनकी अती आधुनिक सन्तान विवाह संस्कार को ही नकार करके स्वच्छन्द यौनाचार में विश्वास रखते हैं। उनकी बेटी अन्विता दीपक के बाद एक स्वीड चित्रकार नेल्सन को स्वीकारती है ;यह उसका अन्तिम स्वीकार नहीं है । असुविधा होने पर वह कभी भी उसे अस्वीकार कर सकती है। अन्विता के भाई अनिरुद्ध की स्थिति भी ऐसी है। वह रीता से पूर्व श्यामला, सुमेधा, सविता और नंदिता के वरण-अवरण में रह चुका है। उनके अनुसार 'विवाह' यौनाचार का मात्र एक सर्टीफिकेट है। उनकी नई मान्यता है कि- *"जब तक हम युवा हैं हमें प्रैम चाहिए। प्रेम के लिए सर्टिफिकेट की अवश्यकता नहीं होती। प्रेम मुक्ति में है बन्धन में नहीं। विवाह स्त्री की गुलामी का पट्टा है, इसलिए बन्धन है।"*[2] पुरानी और नई पीढी की वैचारिक मान्यताओं के इस अन्तर को 'युगे-युगे क्रान्ति' में अच्छी तरह प्रस्तुत किया गया है। इसके संबन्ध में सूत्रधार का कहना है- *"ये सब अपने को क्रान्तिकारी कहते हैं। लेकिन अपने पुरखों की दृष्टि में ये संस्कृति और सभ्यता*

---

1 'युगे-युगे क्रान्ति' -विष्णु प्रभाकर - पृ.सं. - 55

2 'युगे-युगे क्रान्ति' -विष्णु प्रभाकर - पृ.सं. - 68

के शत्रु हैं और दिशा भ्रष्ट हैं। उनकी सन्तान उन्हें प्रतिक्रियावादी और चुके हुए व्यक्ति समझती है।"[1]

स्वातंत्र्योत्तर युग में भी आज पिता की इच्छा के अनुकूल ही पुत्र एवं पुत्री को विवाह करना पडता है। जब पुत्र या पुत्री अपनी इच्छानुसार प्रेम विवाह करते हैं तो समाज एवं परिवार के अन्य सदस्य इसे अपना अपमान समझते हुए मान्यता नहीं देते। आधुनिकता एवं परंपरा का संघर्ष आज प्रत्येक परिवार में उठ रहा है और पिता पुरातन संस्कारों से ग्रस्त अपने अहं के कारण न तो आधुनिकता को पूर्ण रूप से नकार ही पाता है और न स्वीकार ही कर पाता है। इस संघर्ष के बीच परंपरा के प्रति मोह, आधुनिकता को प्राप्त करने में बाधा पैदा करता है। उस नाटक में परंपरावादी देवीप्रसाद अपनी पुत्री के प्रेम -विवाह के बारे में सुनकर अपनी धारणा को इस प्रकार व्यक्त करता है- *"मैं इसी क्षण उसके पास जाँऊगा। मैं उसका पिता हूँ। उसे मुझसे पूछे बिना विवाह करने का आधिकार नहीं। यौवन तो अल्हड होता है और आसानी से पथ-भ्रष्ट किया जा सकता है। मैं यह कैसे देखता रह सकता हूँ ! मैं उसे अभी लेकर आऊँगा। मुझे समाज में रहना है और...../"*[2] इस कथन के द्वारा उसकी सामाजिक मूल्यों के प्रति आस्था, परंपरा के प्रति मोह और पिता के उत्तरदायित्व आदि का एहसास होता है। इस वैज्ञानिक परिवर्तनशील युग में भी वह अतीत की परंपराओं के बीच जीना और अपने परिवार के अन्य सदस्यों को भी उसी के अनुरूप जीने के लिए प्रेरित करना चाहता है।

1'युगे-युगे क्रान्ति' -विष्णु प्रभाकर - पृ.सं. - 13

2'युगे-युगे क्रान्ति' -विष्णु प्रभाकर - पृ.सं. - 80

वह सामाजिक परंपरागत मूल्यों में बँधकर वैयक्तिक स्वतंत्रता को नकारता है। भीतर से आधुनिकता के प्रति मोह उसमें होते हुए भी वह समाज के अन्य लोगों से भयभीत रहता है। इस प्रकार आज भी व्यक्ति सामाजिक मान्यताओं एवं परंपराओं से चिपका रहना अधिक पसंद करता है।

अतः 'युगे-युगे क्रान्ति' में विष्णु प्रभाकर ने विवाह के क्षेत्र में चिरकाल से चली आ रही क्रान्ति का निरूपण किया है। इस में सन् 1875 ई. से लेकर अभी तक के सामाजिक परिवर्तन का चित्रण प्रस्तुत करते है। हर नई मान्यता, नये विचार तथा नये मूल्य समय को गतिमान प्रवाह में पुराने हो जाते हैं और उसका विरोध करने के लिए नई मान्यता, नये विचार एवं नये मूल्य सामने आते है। यह प्रक्रिया निरन्तर है। इसलिए परंपरा और आधुनिकता के बीच संघर्ष भी निरन्तर और अन्तहीन है। हर युग में प्रस्थापित मान्यता को तोडकर नई मान्यता को प्रस्थापित करने का क्रम बराबर चलता रहता है। इसके संबन्ध में नाटक के सुत्रधार कहते हैं- *"यह चक्र कभी नहीं रुकता। जो आज क्रान्ति करने का दावा करते हैं, कल वे ही प्रतिक्रियावादी हो जाते हैं। इतिहास बार-बार अपने को दोहराता है। वे समझते है उन्होंने समय को पकड लिया है लेकिन जादूगार काल उन्हें फांकी देकर न जाने कब आगे बढ जाता है और उसके मंच पर आ जाती है एक नई पीढी जो उनके लिए अजनबी होती है।"*[1]

परिवर्तित होते सामाजिक मूल्यों के कारण वैवाहिक मूल्यों की समस्या आज घर-घर की समस्या बन चुकी है। परंपरागत हिन्दु समाज में वैवाहिक

---

1 'युगे-युगे क्रान्ति' -विष्णु प्रभाकर - पृ.सं. - 33

संस्कारों के साथ जाति-बन्धन एवं धार्मिक अनुष्ठान शुरू से ही जुडे रहे हैं। लेकिन नई पीढी इसके विरोध में खडी और अन्तर्जातीय विवाह को न केवल प्रोत्साहन दे रही है बल्कि रुचिपूर्वक इसकी ओर उन्मुख भी हो रही है। उस नाटक के प्रदीप जाति भेद की दीवार को धराशायी कर तमाम विरोध और बाधाओं के बावजूद एक ईसाई लडकी से विवाह कर समाज के सामने मध्यवर्गीय युवकों के लिए अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करता है। अनिरुद्ध के लिए स्वच्छन्द प्रेम अधिक श्रेयस्कर है। इस प्रकार आज की शिक्षित पीढी वैवाहिक पद्धति में क्रान्तिकारी परिवर्तन की माँग करती है, लेकिन इससे पिछली पीढी अपने पुरातन पंथी विचारों का परिचय देते हुए उसे स्वीकार नहीं करती। विष्णु प्रभाकर ने उस नाटक के माध्यम से पुरानी और नई पीढी के वैचारिक एवं मूल्य संघर्ष को अपनाकर निरन्तर परिवर्तित होते आधुनिक जीवन की कठोर विसंगतियों को युग-धर्म के रूप में प्रस्थापित करने का प्रयास किया है।

अर्थ की होड़ में मूल्यों का नकार:-

वित्तीय सभ्यता के इस वर्तमान युग में अर्थ के प्रति आकर्षण बढ रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसका महत्व है। प्रदर्शन प्रवृत्ति की उत्कट भावना तथा उस पर निरन्तर बढती जा रही महँगाई ने प्रमुख रूप से मध्यवर्गीय परिवारों में आर्थिक विषमता के संकट को उत्पन्न किया है। पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता के फलस्वरूप नवीन सभ्यता एवं संस्कृति के परिवर्तित जीवनगत मूल्यों ने युवावर्ग को फैशनपरस्ती,आडंबर प्रियता,उच्चवर्ग में सम्मिलित होने की तीव्र आकांक्षा आदि ने परिवारों की अर्थ-व्यवस्था को एक संघर्ष पूर्ण मोड पर ला खडा

किया है। इस अर्थ प्रधान युग में जहाँ एक ओर व्यक्ति पारिवारिक रिश्तों की आत्मीयता को समाप्त कर धन के पीछे दौड रहा है वहीं दूसरी ओर ऐसा भी व्यत्ति है जो अर्थाभाव में भी आदर्श और स्वाभिमान की रक्षा के लिए जूझ रहा है। क्योंकि अर्थ के प्रति व्यक्ति का दृष्टिकोण समान नहीं है। कोई भी स्वाभिमानी व्यक्ति किसी भी कीमत पर अपने स्वाभिमान का सौदा नहीं कर सकता। उसे किसी का भय नही, वह भूखा मर सकता है मगर धन के लिए अपने 'स्व' को बेचना उसे स्वीकार नहीं है। उस अर्थ प्रदान युग में आदर्श ओर त्याग को तरजीह करनेवाली नारियाँ इने-गिने है। इन मूल्यों को प्रश्रय देने के कारण विष्णु प्रभाकर के 'श्वेतकमल' के बिन्दु अपने परिवार में अर्थाभाव के बावजूद भी आदर्श को प्रमुख मानती है। वह धन, दौलत ओर ऐश्वर्य के लिए अपने आप को स्वाह करने को तैयार नहीं है। उसकी माँ उस् झकझोरते हुए 'आदर्शवादी' कहकार पुकारती है तो वह कुपित होकर उत्तर देती है कि - *"आदर्शवादी न होती तो इस तरह अपना भविष्य न बिगाड लेती। पढाई बीच में छोडकर नौकरी के पीछे मारी-मारी न फिरती। समझौता करके ऐश करती। तुम लोगों के पास भी बहुत बडा मकान होगा। सब सुविधायो होती। तुम्हारी बेटियाँ बढिया कपडे पहनतीं बढिया कालेज में पढतीं .....खुशियों से भर जाता तुम्हारा दामन, पर.....।"*[1] बिन्दु बेसहारा होते हुए भी उदात्त आदर्शों को ही जीवन का सर्वस्व मानती है। लेकिन उसकी बहन नीलिमा उसके उदात्त मूल्यों को निरर्थक बताते हुए धन-दौलत ऐशो-आराम तथा भौतिक सुख-सुविधाओं को ही सर्वस्व और स्वयं के लिए ग्राह्य

1'श्वेतकमल' -विष्णु प्रभाकर - पृ.सं. - 24-25

मानती है। इस प्रकार व्यक्ति का दिन-प्रतिदिन नैतिक पतन होता जा रहा हैं। व्यक्तिगत हितों ने नैतिक मूल्यों को परिवर्तित कर दिया है। आज व्यक्ति की दृष्टि नैतिक वही है, जिसमें स्वयं का लाभ हो।

इस प्रकार उनके नाटकों में जीवन मूल्य मानवीय नैतिकता पर आधारित हैं। जीवन के संघर्षों में बिखरने और टूटने के बाद भी वे अनैतिकता से समझौता नहीं करते। उनके जीवन मूल्यों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू है इन्सान के अन्दर देवता की तलाश। इन्सान तो देवता और राक्षस का मिश्रण होता है। वह तो सच्चाई और बुराई दोनों से युक्त होता है। अपने राक्षसत्व को दबाकर अपने देवत्व को उजागर करना तथा दूसरे इन्सान के अन्दर भी देवत्व को खोजना प्रत्येक मानव का धर्म है।

अतः विष्णु प्रभाकर नाट्य-सृजन में मूल्यों के संबन्ध में दुहरा कार्य करते हैं। जो पुराना होते हुए भी ग्रहणीय और अच्छा है उसे उन्होंने स्वीकार किया है और जो सड गया है; और युग की दृष्टि से संदर्भहीन है उस मूल्य को निरर्थक माना है। विष्णु प्रभाकर की यह मूल्यपरक दृष्टि आधुनिकता की भावना और प्रवृत्ति के पूर्ण अनुकूल है।

पाँचवाँ अध्याय

नाटकों का शिल्पगत अध्ययन

नाटकों का शिल्पगत अध्ययन

एक नाट्य रचना में कथ्य के साथ-साथ शिल्प विधान का भी महत्वपूर्ण स्थान है। नाट्य रचना की सफलता उसके शिल्प विधान पर निर्भर है। शिल्प विधान की नवीनता नाटक की श्रेष्ठता बढाती है। आज की ज़िन्दगी अनियमित और जटिल है। आज के नाटक का शिल्प भी अनियमित और गतिशील है जो पूर्ववर्ती नाटको के शिल्प के समान आरंभ, विकास और अन्त की परिभाषा में नहीं आता, प्राचीन नाट्य शास्त्र में कथानक, पताका, प्रहरी, नायक, प्रतिनायक, खलनायक की दृष्टि का सम्यक् गढन करते है जो नाटककार की प्रतिष्ठा बढाते हैं। विष्णु प्रभाकर का दृष्टिकोण इनसे बिल्कुल भिन्न है। उन्होंने शिल्प-विधान में नये-नये प्रतिमानों को अपनाया है। शिल्प के संबन्ध में उनका कहना है- *"मैं ने कोई भी नाटक नाट्य सिद्धान्तों पर नहीं लिखा नाटक ही क्या कोई भी रचना ऐसे कभी नहीं लिखी कि कितने छन्द होंगे, कितनी मात्राएँ होंगी और क्या कैसे होगा? कोई भी जो सर्जनात्मक लेखक होता है वह इन बातों की चिन्ता नहीं करता। वस्तुतः सिद्धान्त तो सर्जक की कृतियों को देखकर बने हैं।"*[1] उनकी राय में किसी भी कला को नियमों में नहीं जकडा जा सकता है।

चरित्र -चित्रण :-

नाटक का महत्वपूर्ण पक्ष होता है उनका चरित्र-चित्रण। आज के नाटकों में प्रतिदिन के जीवन से संबन्धित समस्यायें हैं। पात्र भी राजा-रानी या किसी विशिष्ट व्यक्ति न होकर समाज के ऐसे लोग हैं, जिन्हें कल तक छोटा

1.'विष्णु प्रभाकर'-सं-डा० विश्वनाथ मिश्र, डा० कृष्णचन्द्रगुप्त- पृ.सं - 304

समझते रहे थे। चरित्र-चित्रण की कला पर उनका कहना है कि- *"चरित्र चित्रण का भी नाटक में बहुत महत्व है। वह जितना ही स्वाभाविक, सकारण और परिस्थिति के अनुसार होगा उतना ही नाटक प्रभावशाली होगा। नाटक के पात्र हमारे समाज के ही मनुष्य होने चाहिए तभी तो दर्शक उनके सुख-दुःख, हर्ष-विषाद और कामना-आकांक्षा में दिलचस्पी ले सकेगा।"*[1]

नाट्य रचना की सफलता में चरित्र चित्रण एक ऐसा घटक है जो नाटक की श्रेष्ठता बढाती है। जिस चरित्र-चित्रण प्रणाली को विष्णु प्रभाकर ने अपनाया उस प्रणाली ने ही उन्हें एक मनोवैज्ञानिक नाटककार की हैसियत प्रदान की है। ऐतिहासिक-पौराणिक चरित्रों में समसामयिक समस्याओं से उभरी मानवीय संवेदना संगुंफित है और ऐसे चरित्रों का मनोवैज्ञानिक धरातल पर पुनर्मूल्यांकन करने का प्रयास भी किया गया है। उन्होंने मनोवैज्ञानिक आधार पर चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व को प्रस्तुत करके उनकी मानसिक स्थितियों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। उनके नाटक 'डाक्टर' में यह अन्तर्द्वन्द्व देखने को मिलता है। जब पति-परित्यक्ता डा० अनीला के नर्सिंग होम में उसके पति की दूसरी पत्नी मरीज़ के रूप में दाखिल होती है तब वह उसको आपरेशन के अवसर पर मार डालकर अपने अपमान का हिसाब चुकाना चाहती है। लेकिन उसके मन में प्रतिहिंसा की भावना और एक कर्मठ डाक्टर होने के नाते उसकी कर्तव्य-भावना के बीच भयंकर संघर्ष होता है। नाटककार ने एक आवाज़ के मध्यम से उसके मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को व्यक्त करने का प्रयास किया है। डा० अनीला में बहुव्यक्तित्व दर्शित है- एक तो

1.'विष्णु प्रभाकर'-सं-डा० विश्वनाथ मिश्र, डा० कृष्णचन्द्रगुप्त- पृ.सं - 307

मधुलक्ष्मी के रूप में और दूसरा डा० अनीला के रूप में। यह आवाज़ तो मूलतः मधुलक्ष्मी का प्रतीक है। आपरेशन के अवसर पर यह आवाज़ डा० अनीला के अन्दर इस प्रकार गूँजती है कि- *"डा० अनीला ! शाबास, यह सुनहरी अवसर है। अपनी इच्छा पूरी करो। अपना बदला लो, नारी के अपमान का बदला लो।.....सुनो अनीला ! सुनो ! मैं मधुलक्ष्मी हूँ, मुझे भूलो मत । मैं ही तुम्हारे जन्म का, तुम्हारी प्रगति का, तुम्हारी शोहरत का कारण हूँ। मैं नारी का बदला चाहती हूँ बह जाने दो रक्त....निकल जाने दो प्राण.....नस-नाडियों को बन्द मत करो..... सईदा को परे हटा दो, वह तुम्हारी शत्रु है। तुम सुनती नहीं..... तुम सुनती नहीं, अनीला ! अनीला ! देखो, देखो, केशव की ओर न देखो। इस गालब्लेडर को देखो, कैसा खराब है, न, न, इसे काटो मत, इसे काटो मत, (तीव्र स्वर) नहीं, नहीं, रुको, तुम सुनहरी अवसर खो रही हो, तुम अत्महत्या कर रही हो, तुम शत्रु को प्राण दे रही हो, तुमने इसे मार डालने का निश्चय किया था, तुमने (हताश क्रोध) ओह काट दिया, तुमने गालब्लेडर काट दिया, तुमने सईदा को नहीं हटाया, तुमने केशव की बात मानी अब भी अवसर हैं, छोड दे, फोरसेप्स अन्दर छोड दे, सी मत, सी मत, ओह, ओह, तू नहीं सुनती, नहीं सुनती, ओह तू ने मुझ पर ही छुरी चला दी, तू ने मधुलक्ष्मी की हत्या कर दी, तू अपने अपमान को भूल गई, अपनी प्रतिज्ञा को भूल गई ।"*[1]

उसकी वाणी का हरेक शब्द संघर्ष से भीगा हुआ है। उसके मन का सारा उतार-चढाव या उथल-पुथल इससे अभिव्यक्त होता है। वास्तव में यह आवाज़

1.'डाक्टर' विष्णु प्रभाकर पृ.सं - 125

अनीला को प्रतिशोध करने के लिए प्रेरित करती है। किन्तु अनीला का मानवता प्रेरित डाक्टर प्रतिशोध लिप्सित नारी पर विजय प्राप्त करता है।

वस्तुतः अनीला का चरित्र अन्तःसंघर्ष का मूर्त रूप है। उसके चरित्र द्वारा नाटककार ने यह सत्य रूपायित करने का प्रयास किया है कि पुरुष द्वारा तिरस्कृत नारी प्रतिहिंसा की भावना से प्रेरित होकर कितना भयंकर रूप धारण कर सकती है। किन्तु साथ ही नारी सुलभ दया और विवेक के उद्रेक तथा आत्मनियन्त्रण द्वारा वह नारी के सहज प्रकृत स्वभाव का परिचय भी दे सकती है।

उनके नाटक 'टगर' में भी एक परित्यक्त स्त्री के चारित्रिक अन्तःसंघर्ष का दर्शन होता है। इस नाटक की नायिका रश्मी शिक्षित होने के कारण अपने पति द्वारा परित्यक्त होने के बावजूद भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाना चाहती है। वह अपना संपूर्ण व्यक्तित्व बदलकर अपना नाम 'रश्मी' छोडकर 'टगर' नाम को स्वीकार कर लेती है। अपने असली नाम 'रश्मी' को बदलकर 'टगर' नाम स्वीकार करने में उसका विद्रोही चरित्र सामने आता है। उसके मन का संघर्ष चरम सीमा को छूता है और वह अपने पति की बेवफाई का बदला दुनिया की समस्त पुरुष जाति से लेना चाहती है। कई पुरुषों को अपने सौन्दर्य जाल में फंसाने और एक-एक के भ्रष्टचारी जीवन को बेनकाब करने की धुन में वह स्वयं को बरबाद कर रही थी। खुद उसका ही कहना है- *"इतने खेल खेलकर अब किसी और की होने की आशा मुझे नहीं है। भूतकाल बीत जाता है पर मिटता नहीं।"*[1]

विष्णु प्रभाकर 'टगर' की चरित्र सृष्टि द्वारा महानगरीय परिवेश में

1.'टगर'- विष्णु प्रभाकर- पृ.सं - 72

तनावग्रस्त ज़िन्दगी बितानेवाली नारियों की जटिल मानसिकता की ओर संकेत करना चाहता है।

एक साधारण नारी के स्तर से देवी के स्तर की ओर उठाने की पारिवारिक साजिश में जकडी उमा का मानसिक संघर्ष 'बन्दिनी' नाटक में गूँजती है। एक ओर उनमें 'देवी' बनने की विवशता से उत्पन्न भय है तो दूसरी ओर 'देवी'बनने का भ्रम उसमें संघर्ष की स्थिति पैदा करता है। उसका मन असमंजस में डूब जाता है। साथ ही साथ अनु को न बचाने में असमर्थ होने के कारण एक प्रकार का अपराधबोध भी पैदा होता है। उसका बेचैन मन यों कराहता है- *"स्वप्न झूठा था। हाँ स्वप्न झूठा था। देवता की वेदी पर रक्त नहीं बह सकता। मैं देवी नहीं हूँ। मैं अपने अनु को नहीं बचा सकी। मेरी आत्मप्रवंचना से एक वंश नष्ट हो गया। जिसको मैं प्यार करती थी, उसी को अपने हाथों से मार डाला। अपनी वेदी पर ही अपने प्रिय की बलि चढा दी। मेरी अपनी ही करतूत ने मुझसे वह सब छीन लिया जो मुझे प्रिय था। अब मुझसे जिया नहीं जा सकेगा। मेरे प्रभु अब कोई कारण मेरी रक्षा नहीं कर सकता।"* [1]

'अब और नहीं' में नाटककार एक मनोवैज्ञानिक डाक्टर की भाँति नारी-मन का विश्लेषण करता है। जब नारी अपने सारे संघर्ष को मन में ही दबाने की कोशिश करती है तो उसका परिणाम बिल्कुल खतरनाक होता है। चौंतीस वर्ष तक पति के अधिनायकवादी वृत्ति सहते-सहते अपने निजी जीवन की सारी रुचियों और शौक को भूलकर परिवार के अन्य सदस्यों के लिए जीनेवाली नारी के रूप में

1.'बन्दिनी' विष्णु प्रभाकर पृ.सं - 78-79

शान्ता नाटक में आती है। परन्तु वृद्धावस्था में अचानक उसके मन में अपनी रुचियों को पुनःनया करने की इच्छा उत्पन्न होती है। इसके फलस्वरूप वह सितार बजाने लगती है, चित्र बनाने लगती है और परिवार के सभी सदस्य उसे पागल समझने लगते है। पति उसे कभी स्वतंत्र नहीं होने देता। किन्तु में जकडी हुई शान्ता उन बन्धनों को तोडकर मुक्त रहना ही चाहती है। इसी बन्धन और मुत्ति की चाह के संघर्ष में शान्ता मानसिक रोग की शिकार बन जाती। अपने इस रूप को व्यक्त करती हुई शान्ता कहती है कि- *"मैं ने वही चाहा, जो वह चाहते थे। मैं ने वही किया जो उनकी इच्छा-अनिच्छा, विश्वास-अविश्वास से घिरी रही मैं। मैं घर की रानी नहीं थी, दासी थी।"*[1]

विष्णु प्रभाकर शान्ता के माध्यम से भारतीय नारी के समर्पण भावों की ओर इशारा करते हैं।

मानवीय मूल्यों को तरजीह देनेवाले लेखक होने के नाते विष्णु-प्रभाकर ने अपने नाटकों में अधिकांश रूप से स्वाभिमान, मर्यादायुक्त आचरणों एवं उचित संस्कारों से युक्त नारी पात्रों की ही सृष्टि की है। 'श्वेतकमल' में अपने बीमार माँ-बाप तथा पाँच बहनों के परिवार का दायित्व को पूरा करनेवाली राखी एक कर्तव्यनिष्ठ चरित्र है। पितृविहीन परिवार में भरण-पोषण का दायित्व खुद झेलनेवाली बिन्दु भी परिवार की भलाई को अपनी भलाई माननेवाली युवती है। अपना कर्तव्य पूरा करने में वह गर्व महसूस करती है- *"आदर्शवादी न होती तो इस तरह अपना भविष्य न बिगाड लेती। पढाई बीच में छोडकर नौकरी के पीछे*

1.'अब और नहीं'- विष्णु प्रभाकर- पृ.सं - 60

मारी-मारी न फिरती। समझौता करके ऐश करती।.....पर .....।"[1]

नारी का और एक रूप भी नाटककार ने प्रस्तुत किया है जो पाषाण के समान सख्त और तूफान के समान प्रचंड रूप धारण करती है। 'गान्धार की-भिक्षुणी' की आनन्दी इसका मूर्तिमान रूप है। हूण सरदार द्वारा शीलहरण होने पर वह अपनी नारी सहज कोमल भावनाओं को मन से दूर फेंकते हुए अपने मन को प्रतिशोध की ज्वाला में सुलगनेवाली एक भट्टी बनाती है। उसके चरित्र के संबन्ध में माँ का कथन बिल्कुल सही है-"*कहाँ वो तथागत के मार्ग की विदुषी साधिका, कहाँ जारज सन्तान की एक बेबस माँ और कहाँ युद्ध-घोष करनेवाली रणचण्डी ! एक ही नारी के इतने रूप !कितनी शक्ति थी उसमें कितना सहा है उसने .....।*"[2]

'नव प्रभात' में नारी चरित्र के दो भिन्न रूप दिखाई देते हैं। कलिंग की राजकुमारी बौद्व धर्म की अनुयायी है, किन्तु अशोक द्वारा किए गए नरसंहार से उसका शान्त मन वज्र के समान कठोर हो जाता है। वह अशोक के समक्ष निर्भयता के साथ अपनी राय प्रकट करती है कि - "*सम्राट् ! यदि तुम समझते हो कि तुमने कलिंग वासियों का नाश किया है, तो तुम भूल करते हो। तुमने उनका नहीं अपना नाश किया है। पराजय उनकी नहीं तुम्हारी हुई है। कलिंग हारकर भी जीत गया है। तुम जीतकर भी हार गए हो।*"[3] उसकी यह निर्भीकता उसके चरित्र

1'श्वेत कमल' विष्णु प्रभाकर -पृ.सं - 24-25

2' गान्धार की भिक्षुणी '- विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग-5 पृ.सं - 134

3' नव प्रभात ' विष्णु प्रभाकर- पृ.सं - 71

के उज्ज्वल पक्ष को ही प्रस्तुत करता है।

'कुहासा और किरण' की सुनन्दा और प्रभा भी नारी शक्ति के प्रतीक है। प्रारंभ में सुनन्दा एक सरल एवं व्यवहारकुशल युवती है किन्तु कृष्णचैतन्य की भ्रष्टता के बारे में जानते ही वह विपक्ष में खडी होकर खुले शब्दों में विद्रोह करती हुई कहती है कि - *"मैं पुकार -पुकार कर कहूँगी कि आप सब भ्रष्ट हैं, नीच है, देश द्रोही हैं। आज नहीं तो कल आपको समाज के सामने जवाब देना होगा। जा रही हूँ, साहस हो तो रोक लीजिए....।"*[1]

'अब और नहीं' की आधुनिक नारी मंजरी इस कोटी का और एक चरित्र है। सुनन्दा और प्रभा समाज और राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज़ उठाती है तो मंजरी पारिवारिक स्तर पर पुरुष आधिपत्य का विरोध करती है। वह अपने ससुर की अधिनायकवादी प्रवृत्ति का विरोध करती हुई कहती है - *"परिवार को कठोर अनुशासन और पापा की अधिनायकतावादी मनोवृत्ति ने बहुत पहले माँ के स्वतंत्र मन की हत्या कर दी थी। अवसर पाकर वह मरा मन जी उठा और माँ बीमार हो गयी... इन सबके लिए पापा दोषी हैं।"*[2] इस प्रकार वह सास शान्ता की मानसिक विक्षिप्तता के लिए ससुर वीरेन्द्र प्रताप के अधिनायक स्वरूप को दोषी ठहराने में नहीं हिचकती है।

'टूटते परिवेश' की दीप्ति और मनीषा भी प्रगतिशील विचारों से युक्त युवतियाँ है। आधुनिकता के रंग में रंगे चरित्र दीप्ति को नैतिकता, मिथ्या तथा

---

1 'कुहासा और किरण'- विष्णु प्रभाकर- पृ.सं - 76

2 'अब और नहीं'- विष्णु प्रभाकर- पृ.सं - 56-57

आदर्श निरर्थक लगते है। देश की वर्तमान व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य करने में वह नहीं चूकती। उसका कहना है कि- *"देश के नेता कहते नहीं थकते कि आनेवाली संतति को भेद की दीवारें तोड डालनी चाहिए। उस समय उत्तेजना से उनकी नसें फडकने लगती है। लेकिन जब हम उन दीवारों को तोडते हैं तो वही क्रान्तिकारी नेता अहिंसावादी पिता बनकर हमें शान्ति का उपदेश देता हैं। नेता और पिता....हूं....एक ही छद्म के दो मुखौटे।"*[1]

मनीषा एक कामकाजी युवती होने के कारण अपने जीवन का हर निर्णय स्वयं लेने का अधिकार चाहती है। वह अन्य जाति के युवक से शादी करना चाहती है किन्तु उसके रूढीवादी पिता इसमें बाधा उत्पन्न करता है। लेकिन मनीषा इस विरोध को पार करने का निर्णय लेती हुई कहती है- *"माँ जा रही हूँ, वही, जहाँ मैं चाहती हूँ, आप चाहे तो उसे पाप कह सकते हैं विद्रोह भी कह सकते हैं। भाषा का दुरुपयोग करने से कौन किसको रोक सका है। लेकिन मैं तो इसे अधिकार कहती हूँ अपने भाग्य का अपने आप निर्णय लेने का अधिकार। मैं इस अधिकार के लिए ही यह घर छोडकर जा रही हूँ।"*[2] मनीषा की विचारधारा आधुनिक युग की उच्च शिक्षा प्राप्त नारी की है जो दूसरों द्वारा थोपी हुई ज़िन्दगी के ओट लेना नहीं चाहती और अपनी ज़िन्दगी का फैसला दूसरों को लेने नहीं देती।

'युगे-युगे क्रान्ति' की शारदा भी एक साहसी युवती है। वह अपने

---

1 'टूटते परिवेश'- विष्णु प्रभाकर- पृ.सं - 33

2 'टूटते परिवेश'- विष्णु प्रभाकर- पृ.सं - 11

अनुभव के सहारे समाज में व्याप्त पुराने रीति-रिवाज़ों को तोडना चाहती है। उसके अनुसार- *"स्त्रियाँ शक्ति है, युग के मार्ग में घर की चार दीवारी तो क्या हिमालय जैसे नगाधिराज भी बाधा नहीं दे सकते।"*[1]

इन चरित्रों के अलावा विष्णु प्रभाकर अपने नाटकों में ऐसे नारी चरित्र का सृजन करते है जो पूर्णतः भारतीय संस्कारों से ओतप्रोत हैं। ये चरित्र पूर्ण रूप से पुरुष व्यक्तित्व में समाहित दृष्टिगत होते हैं। चाहे वह पुरुष पिता हो, पति हो या प्रेमी हो उनकी इच्छाओं का अनुकरण करती ये नारियाँ अपने अस्तित्व से सदैव अनभिज्ञ रहती है। पुरुष के आनन्द में ही वह अपने जीवन का अर्थ तथा सपूर्णता तलाशती है। 'नव प्रभात' में सम्राट् आशोक की पत्नी रानी कारुवाकी हमेशा पति के दिग्विजयी अभियान में प्रोत्साहन देती है। वह केवल उनकी पत्नी ही नहीं बल्कि समविचार रखनेवाली भी है और सदैव पति का हित चाहती है। लेकिन युद्ध भूमि पर घूमकर घायलों की सेवा में रत भिक्षुणी जब अशोक से मिलने आती है तो वह पति को सूचना देती है- *"जब नारी प्रतिशोध लेने की बात सोच लेती है तो फिर वह किसी बात की चिन्ता नहीं करती। मुझे इसमें पड़यंत्र जान पडता है। सम्राट् सावधान रहें।"*[2]

सम्राट् अशोक की बहन संघमित्रा इस कोटि का और एक चरित्र है। एक ओर वह भाई द्वारा बन्दी अपने प्रेमी कलिंग कुमार के स्वाभिमान के प्रति सचेत है तो दूसरी ओर भाई के गौरव के प्रति आदर का भाव प्रकट करती है। अतः

1' युगे-युगे क्रान्ति'- विष्णु प्रभाकर- पृ.सं - 38

2 'नव प्रभात' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 63

दोनों संबन्धों को वह तटस्थता के साथ निभाती है।

'सत्ता के आर-पर' में बाहुबली की रानी इच्छा महादेवी का चरित्र भारतीय नारी के परंपरागत स्वरूप का द्योतक है। वह पति के पराक्रम से गर्वित, उनके वचनों से पुलकित और वेदना से पीडित होती है। उसका चरित्र एक धर्मपरायण पत्नी के उच्च आदर्शों से सिंचित है। वह अपने पति के विचारों का अनुगमन कर उन्हें उत्साह देने के साथ-साथ दोनों भाईयों के आपसी युद्ध से विरोध करती हुई कहती है कि- *"आपकी सहधर्मिणी होने का गौरव सदा मुझे उन्माद से भरता रहा है। मेरे स्वामी किसी राजराजेश्वर को प्रणाम करें यह मैं कभी नहीं. चाहूँगी...परन्तु...भगवान् आदिनाथ ने जो आपके और जीजाजी दोनों के पिताश्री भी है,उन्होंने, नया रूप दिया है समाज को। उन्होंने बताया है कि सभ्य वही है जो हिंसा से दूर है।"*[1] इस नाटक में बाहुबली की माता सुनन्दा और भरत की माता यशस्वती आदि चरित्र भी इन्हीं उदात्त भावनाओं से परिपूर्ण हैं।

इस प्रकार 'युगे-युगे क्रान्ति' की रामकली भी भारतीय नारी के रूढीबद्व स्वरूप का उदाहरण है। तत्कालीन समाज में प्रचलित रीति-रिवाज़ एवं संस्कारों को वह सहजता से स्वीकार कर लेती है। घूँघट में रहकर अपने पति से चोरी-छिपे अंधेरे में मिलने की विवशता को वह इस प्रकार व्यक्त करती है कि - *"हम कुलीन लोग हैं। हमारी यही कुल-रीत है। बडे बुजुर्गों के रहते जवान लोग अपनी घरवाली का मुँह नहीं देखा करते। दिन में उनके पास नहीं आते। यह*

---

1 'सत्ता के आर-पार' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग-4 - पृ.सं - 411

बेशर्मी और बेअदबी है।" [1]

भारतीय पत्नी के इस समर्पण भाव की प्रस्तुति 'अब और नहीं' की नायिका चरित्र शान्ता में भी देखने को मिलती है।

विष्णु प्रभाकर अपने नाटकों में कुछ ऐसे नारी चरित्र का भी सृजन करते है जो किसी परिस्थितिवश पतन की ओर उन्मुख होती है। पारिवारिक विघटन और आर्थिक अभाव के कारण ये नारी चरित्र अनैतिक मार्ग को अपना लेते है। किन्तु उसके अन्तर के सद्‌गुण अन्ततः उस चरित्र को समस्त कुकर्मों से मुक्त कर देती है। ऐसा एक चरित्र है 'टगर' की रश्मिप्रभा। प्रारंभ में अपने पति के साथ सीधा-सरल जीवन व्यतीत करनेवाली राश्मिप्रभा बाद में पति द्वारा तिरस्कृत हो जाने के पश्चात् पूर्ण रूप से आधुनिक, उन्मुक्त एवं स्वच्छन्द टगर बन जाती है। टगर अपने रूपलावण्य से अनेक पुरुषों को अपने जाल में फंसाकर उन्हें बरबाद करती है। पुरुषों के विनाश में वह अपने प्रतिशोध को पूर्ण होता देखकर अपने अपमान की वेदना को कम करने की कोशिश करती है। उसके प्रतिशोध के क्रम में भ्रष्ट तथा देशद्रोही पुरुषों का ही अंत होता है। इसलिए उसका चरित्र पतित होते हुए भी घृणित नहीं कहा जा सकता। उसके भीतर की 'स्त्री' जागृत होते ही वह पहले के सभी पतित व्यवहारों से मुक्ति की घोषणा करती है।

'श्वेतकमल' की पूनम उन्मुक्तता और आधुनिकता के मोहजाल में पडकर वेश्यावृत्ति करनेवाला एक ऐसा चरित्र है जो समाज के सामने माँडर्लिग करने का बहाना करती है। टाँगे और छाती उघाडना उसके लिए अश्लील नहीं

---

1 'युगे-युगे क्रान्ति' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग 5 - पृ.सं - 301

है। परिवार के भरण-पोषण हेतु किये गए उसका यह अश्लील व्यवहार गरीबी, भूखमरी आदि का विकृत रूप है। इसके संबन्ध में उसका कहना है कि- *"शरीर तो नाशवान है। स्थाई है मन प्राण का आनन्द और.....और पैसा। पैसा ही आधार है जीवन का।"* [1] लेकिन अकस्मात् पुलिस द्वारा वेश्यावृत्ति करती पकडी जाती है तो निराश एवं अपमानजनक परिस्थिति से बचने के लिए वह आत्महत्या कर लेती है।

ज़ाहिर है कि अनैतिक राहों की ओर उन्मुख होनेवाली नारियाँ भी आखिर अपनी मूल को पहचानती है। उनकी यह पहचान दरअसल जीवन के नैतिक मूल्यों की महत्ता और अनिवार्यता की ओर संकेत करती है। नारी के प्रति लेखक अपने व्यक्तिगत जीवन में भी अत्यधिक संवेदनशील रहे है। अपने संपूर्ण व्यक्तित्व में वे अपनी माँ और पत्नी के प्रभावं को प्रोत्साहन के रूप में आत्मसात् करने के साथ-साथ सदैव उनका स्मरण भी करते रहते है। इसके संबन्ध में स्वय लेखक का कहना है कि- *"मेरे हर नारी पात्र में मेरी माँ और मेरी पत्नी किसी न किसी रूप में आ गए हैं। क्योंकि उन्हीं के माध्यम से मैं नारी जाति में विश्वास करने लगा हूँ। बेशक मेरी बहुत-सी परिचितायें है जो मुझे पिता, भाई या दोस्त के रूप में मानती है और अपने जीवन की सभी समस्याओं में से मुक्त रूप से बहस कर सकती है और वे सभी प्रान्तों, सभी जातियों की हैं।"* [2]

नारी चरित्र के समान विष्णु प्रभाकर के नाटकों के अधिकांश पुरुष

1'श्वेतकमल' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 87

2'मेरे साक्षात्कार' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 309

पात्र भी जीवन में आदर्श एवं सत् विचारों को तरजीह देते है। 'डाक्टर' का दादा, केशव, 'श्वेतकमल' का विकास, 'युगे-युगे क्रान्ति' के चन्द्रकिशोर, विमल, प्यारेलाल आदि इसी श्रेणी में आनेवाले चरित्र हैं।

'डाक्टर' नाटक के दादा की प्रेरणा से अनीला अपने परित्यक्त जीवन को सार्थक आधार दे सकी। वह सदैव अनीला के दूर्बल मन और कुटिल विचारों का विरोध कर उसमें कल्याणकारी स्वरूप की स्थापना करते है जैसे- *"मारना ! हत्या करना ! आज की दुनिया की तरह तुम भी यही सोचती हो कि बदला लेने का केवल एक ही रास्ता है -हत्या करना। लेकिन मैं कहता हूँ कि हत्या करना बदला लेना नहीं है, हर्गिज नहीं हैं।"* [1] इस प्रकार अनीला के मन में मरीज के प्रति उत्पन्न प्रतिशोध को शान्त कराने के साथ साथ वह अनीला को अपने कर्तव्य के प्रति सचेत करता है

नाटककार दादा के चरित्र द्वारा भाई-बहन के संबन्ध को व्यक्त करते है। पति द्वारा परित्यक्त होने पर भी अपनी बहन की अवहेलना न करके उसको बहुत प्यार करता है। इस नाटक का डा० केशव अनीला के सभी रहस्यों को जानता है। वह डा० अनीला को अपनाने के लिए तैयार भी है। परन्तु डा० अनीला इन्कार करती है। क्योंकि एक ओर उस पर आत्मपीडा का भार है तो दूसरी ओर सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न भी है। डा० केशव ही उसके अन्तर में पल रहे अन्तर्द्वन्द्व एवं प्रतिशोध को छोडकर उसे व्यावहारिक रहने की सलाह देते है। उनका कहना है वि- *"यही तो कायरता है। सबकी चिन्ता मत करो। अपने*

---

1 'डाक्टर' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 66

को देखो। सबको प्रसन्न करने के लिए अपने को धोखा देना दम्भ है और दम्भ से बडा कोई पाप होता है, यह मैं नहीं जानता।" [1]

'श्वेतकमल' का विकास बिन्दु को अपनाना चाहता है। बिन्दु की तकलीफों से वह बिल्कुल अवगत है। इसलिए वह बिन्दु के साथ उसके परिवार का दायित्व वहन करने को भी तैयार है। बिन्दु भी विकास के प्रति आसक्त है किन्तु परिस्थितियों के सामने विवश है। विकास उसकी विवशता को समझकर उसे विवाह के संबन्धो से मुक्त रखंकर एक सच्चा हितैषी एवं मार्गदर्शक बनता है और उनका कहना है कि- *"और कुछ कह सकूँ या न कह सकूँ पर अलविदा कभी नहीं कहूँगा। मैं तुम्हारा साथ दूँगा। राह कितनी भी लंबी क्यों न हो। मेरे पांव थकेंगे नहीं।"* [2]

विष्णु प्रभाकर के ये दोनों चरित्र सदाचार से युक्त है। त्याग और निस्वार्थ कर्म इनका सिद्धान्त है।

विष्णु प्रभाकर ने ऐसे पात्रों की सृष्टि की है जो सडी-गली परंपरागत मान्यताओं को नकारते है और उनको चुनैती देते है। 'युगे-युगे क्रान्ति' का प्यारेलाल विधवा कलावती को पत्नी बनाते हुए रूढीवादी परिवार एवं संकीर्ण समाज को चुनौती देता है। समाज का यह अन्याय वह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि पुरुष एक स्त्री के जीते-जी दूसरी स्त्री ला सकता है लेकिन नारी भरी जवानी में पति के मर जाने पर दूसरी शादी नहीं कर सकती। उनकी चारित्रिक दृढता

---

1 'डाक्टर' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 104

2 'श्वेत कमल' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 105

उनकी वाणी में यों गूँज उठती है - *"यह बर्बर समाज उसे दूसरा विवाह करने का अधिकार नहीं देता । यौवन को बरबाद करने का अधिकार देता है।..... हमारी नारियाँ घर छोडकर भाग जाने को मज़बूर हो जाती है। लेकिन अब हम यह अत्याचार नहीं होने देंगे।"* [1]

'बन्दिनी' का सुरेन्द्र धार्मिक अंधता के खिलाफ परिवारवालों को चेतावनी देता है। अंधविश्वास के मायाजाल में फंसी अपनी पत्नी को मुक्त कराना चाहता है। वह अपनी पत्नी को यों समझाता है- *"मैं शंकर नहीं हूँ, तुम भी महाकाली नहीं हो। तुम अंधविश्वास के मायाजाल में फंस गई हो। तुम इस मन्दिर की दीवारों में घिरती जा रही हो। मैं तुम्हे इस गर्भ-गृह में बन्द होकर, आत्महत्या नहीं करने दूँगा।"* [2]

'टूटते परिवेश' का विवेक और 'कुहासा और किरण' का अमूल्य दोनों देश में व्याप्त भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द करते हैं। इनके चरित्र को उभारकर विष्णु प्रभाकर एक बेहत्तर समाज की कामना करते है जिसमें अनैतिकता और भ्रष्टाचार न हो। 'कुहासा और किरण' का अमूल्य पाखंडी राजनीतिक कृष्ण-चैतन्य, भ्रष्ट संपादक विपिन बिहारी और धोखेबाज समाज-सुधारक उमेशचन्द्र की कूट-नीति के विरुद्ध आवाज उठाता है। अपने सिद्धान्तवादी विचारों के बल पर संपूर्ण जनता को सचेत करता है जैसे- *"अब आवश्यकता है कि हम देश-सेवा का अर्थ समझे, जो शैतान मुखौटे लगाये शिव बने घूम रहे हैं, उनके वे मुखौटे*

---

1 'युगे-युगे क्रान्ति'- विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 22-23

2 'बन्दिनी' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 59

उतारकर उनकी वास्तविकता प्रकट कर दें ।"[1]

'नव प्रभात' में राज्यविस्तार एवं दिग्विजय की प्रबल कामना रखनेवाले सम्राट् अशोक के मानसिक परिवर्तन ही मुख्य बिन्दु है। रण क्षेत्र के भेरी-घोष को सम्राट् अशोक धर्म -घोष में परिवर्तित कर देते है क्योंकि कलिंग का सर्वनाश हाहाकार बनकर उनके मन में हमेशा के लिए छा जाता है। तामसिक वृत्ति से सात्विक वृत्ति की ओर चरित्र का यह विकास नाटककार की मानवतावादी दृष्टि का ही संकेत देता है।

'सत्ता के आर-पार' का बाहुबली सत्ता-मोह छोडकर तप का मार्ग स्वीकार करता है। यह पात्र भी आदर्श की दुहाई देनेवाला है।

'गान्धार की भिक्षुणी' का नायक जनेन्द्र की चारित्रिक विशिष्टता इसलिए निखर उठती है कि वह जनता की समस्याओं को अपनी समस्या मानते है। उन समस्याओं के समाधान में देश की भलाई मानते है, अत्याचार, अन्याय और अराजकता के विरोध करने में तनिक भी नहीं हिचकते ।

'केरल का क्रान्तिकारी' के मुख्य पात्र वेलुत्तम्पी दलवा में भी इन्हीं चारित्रिक गुणों का समावेश हुआ है। उनके फक्कड व्यक्तित्व का परिचय उनकी वाणी से मिलता है जैसे - *"मेरे वतन की लाल मिट्टी को लाल रक्त की ज़रूरत है। मैं उसकी ज़रूरत पूरी करूँगा। तब कम-से-कम रक्त-दान करने का मेरा सप्ना तो पूरा हो सकेगा।"*[2]

---

1 'कुहासा और किरण' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 122

2 'केरल का क्रान्तिकारी' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 94

उनके नाटकों में ऐसे पात्र भी आते है जिनमें मानवता का लेशमात्र भी नहीं। ये चरित्र सत्ता-मद में डूबकर पाश्विक एवं आततायी शक्तियों का मनमानी इस्तेमाल करते हैं। 'गान्धार की भिक्षुणी' का मिहिरकुल जैसे पतित, भ्रष्ट व्यक्तियों के लिए नारियों का शीलहरण आनन्द एवं भोग की वस्तु है। 'केरल का क्रान्तिकारी' का मैकाले भी समस्त छल-प्रपंच तथा कूटनीति से युक्त चरित्र है।

'कुहासा और किरण' के कृष्णचैतन्य, विपिन बिहारी और उमेशचन्द्र अग्रवाल भ्रष्ट आचारणों के खुला दस्तावेज़ है। कृष्णचैतन्य प्रत्यक्ष में प्रजापालक, स्वाधीनता सेनानी और कर्मठ जनसेवक के रूप में प्रतिष्ठित है किन्तु यथार्थ में वह देशद्रोही, अवसरवादी, स्वार्थी एवं जनता के अधिकारों का हनन करनेवाला चरित्र है। इसी प्रकार समाज सुधारक उमेशचन्द्र और साहित्य जगत के संपादक विपिन बिहारी ये दोनों कृष्णचैतन्य के कुकर्मों में उनके सहयोगी चरित्र हैं।

नारी को सिर्फ एक उपयोग की वस्तु माननेवाले पुरुषमेधा समाज की असलियत पर भी नाटककार ने तीखा प्रहार किया है।'श्वेत कमल' के डा० विद्याधर जौहरी, मैनैजर मंत्री, शिक्षा निदेशक जैसे पदासीन अधिकारी खूबसूरत युवतियों को इसलिए अपने दफ़तरों में रखते हैं कि उनकी वासनापूर्ति के साथ-साथ अपने व्यापार की प्रगति के लिए प्रत्येक अधिकारी के सामने इन युवतियों को सौंप दे सकें। बिना किसी हिचक से वे अपनी मन की बात व्यक्त करते हैं कि- *"हमें अपने वक्षों को निर्वस्त्र करनेवाली नारियों की आवश्यकता है..... हमें अपने व्यापार की प्रगति के लिए बडे-बडे अधिकारियों और मंत्रियों के साथ निःसंकोच रमण*

करनेवाली रमणियों की आवश्यकता है।" [1] 'टगर' के ठाकुर और माथुर भी नारी को अपने इशारे पर नचाना चाहते हैं।

इस प्रकार नाटककार की पात्र-सृष्टि पर नज़र डालें तो उनके अधिकांश पात्र चाहे पुरुष हो या नारी ऐसे है जो जीवन-मूल्यों को ऊँचे उठानेवाले है।

कथोपकथन:-

नाटक में कथोपकथनों या संवादों के माध्यम से कथावस्तु को गति मिलती है। नाटक में संवाद द्वारा नाटकीय गुणों की स्थापना होती है और अभिनेयता के लिए उपयुक्त बल भी प्राप्त होता है। संवादों से पात्रों में अन्तर्लीन भावों का उद्‌घाटन होता है। कथावस्तु और चरित्र-चित्रण को प्रभावकारी बनाने के लिए संवादों की महत्ता अक्षुण्ण मानी गई है।

आधुनिक नाटककारों ने प्राचीन शैलीबद्ध संवाद-योजना को पूर्णतः नकार कर अपने युग, परिस्थिति और पात्र के अनुरूप संवादों का प्रयोग किया है। आज का नाटककार यथार्थपरक रचनाओं की सृष्टि करता है। इस यथार्थ को प्रस्तुत करने के लिए वह यथार्थवादी संवादों का भी प्रयोग करता है। विष्णु प्रभाकर के नाटकों में प्रयुक्त संरल, सहज एवं स्वाभाविक कथोपकथन उन्हें अन्य नाटककारों के चमत्कृत कथोपकथनों से अलग कोटि में रखता है। नाटक में सहज अभिव्यक्ति के प्रति स्वयं उनका कहना है कि-*"जब हम युग के वर्तमान से जुडते हैं तो सामयिक समस्याओं का सर्जन में उभरना अनिवार्य है। किसी भी स्तर पर कट्‌टर होने से कला का ह्रास होता है। दृष्टि जितनी गहरी होनी चाहिए उतनी ही*

1'श्वेत कमल'- विष्णु प्रभाकर- पृ.सं-74

व्यापक भी। तभी जटिलता से मुक्ति मिल सकती है यानी सहज हुआ जा सकता है और सहज की साधना ही आत्मा की मुक्ति है,जिसके बिना सर्जन अर्थहीन है।"[1]

उनकी यथार्थपरक संवाद योजना आदर्श के साथ गठबन्धित है। पौराणिक एवं ऐतिहासिक नाटकों में उन्होंने विषय की सारगर्भिता और तत्कालीन समय को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया है। समसामयिक सामाजिक नाटकों में उन्होंने तीखे और कटु संवादों का प्रयोग किया है। विसंगतियों और विभीषिकाओं के लिए भी वे प्रखर और मर्मभेदी कथोपकथन प्रयुक्त करते हैं।

'डाक्टर' नाटक का कथानक एक नारी के अन्दर्द्वन्द्व के इर्द-गिर्द ही बुना गया है। इसलिए अनुभूति की तीव्रता संवादों में प्रकट हुई है। कर्तव्य भावना और वैयक्तिक प्रतिशोध के बीच उलझे नारी मन की झाँकी उसके संवादों में भी मिलती है—

"अनीला :-दादा ! मैं यह आपरेशन करना नहीं चाहती।

दादा :-क्यों नहीं करना चाहती ?

अनीला :-क्योंकि मुझे डर है कि मैं उसे मार डालूँगी।

दादा :- तुम इस डर को जीत नहीं सकती ? पन्द्रह साल तक क्या तुम पानी पर लिखती रही हो ? क्या साधना के नाम पर तुमने बालू का महल खडा किया है ?

अनीला :-हां दादा, पन्द्रह साल तक मैं कच्चे घडे में पानी भरती

1'विष्णु प्रभाकर' सं.डा० विश्वनाथ मिश्र,डा० कृष्णचन्द्रगुप्त-पृ.सं-306

रही। जो कुछ मैं ने सीखा, वह सूखी ज़मीन पर तैरने के समान था। इसलिए मेरे तप की आग मुझे ही भस्म कर रही है।"[1]

शब्दों की मितव्ययिता पर भी विष्णु प्रभाकर ने खूब ध्यान दिया है–

"दादा :- तुम डाक्टर हो और तुम्हारा काम है आपरेशन करना ।

अनीला :- वह मैं नहीं करूँगी। कभी नहीं करूँगी।मैं उसे मार डालूँगी।

दादा :- यानी तुम आत्महत्या करोगी ?

अनीला :- आप इसे किसी नाम से पुकार सकते हैं। हत्या, हत्या रहैगी।

दादा :- तुम बीमार हो.....

अनीला:- मैं बीमार नहीं हूँ।

दादा :- (दृढ) तुम बीमार हो।

अनीला :- नहीं, नहीं।"[2]

कटाक्षपूर्ण, व्यंग्य-गर्भित संवाद-योजना की ओर भी नाटककार का झुकाव है। 'टगर' नाटक में पति द्वारा उपेक्षित टगर के संवादों में व्यंग्य की झलक मिलती है–

"टगर:- (हँसकर) सुन्दर स्त्री होने का यही तो लाभ है।

1.'डाक्टर'- विष्णु प्रभाकर - पृ.सं-63-64

2.'डाक्टर'- विष्णु प्रभाकर - पृ.सं-67-68

विमला:- (विद्रूपता से) इसे तुम लाभ कहती हो, यह लानत है।

टगर:- लानत को लाभ में बदलने की कला ठाकुर खूब जानते हैं।[1]

'टगर' में नाटककार कुछ चरित्रों की बेचैन मानसिकता को उजागर करते है। सामाजिक प्रतिष्ठा से संपन्न ये चरित्र भीतरी स्तर पर खोखले प्रतीत होते है। समाज की इसी कुरूपता को नाटककार निम्न कथोपकथन से व्यक्त करते हैं जैसे-

"माथुर क्यों गहलौत, इस सडक के ठेके और यहाँ के तस्कर व्यापार में तुमने कम से कम दस लाख तो कमा ही लिए होंगे?

गहलौत :- हाँ माथुर, दस नहीं तो बारह होंगे। इससे कम तो हो नहीं सकता।

माथुर :- बारह लाख हमने दस लाख की भविष्यवाणी की थी। वह तुम रखो। शेष दो लाख हमको दे दो। हम टगर को एक लाजवाब तोहफा देना चाहते हैं।

गहलौत:- यह तो मैं पहले ही सोच चुका हूँ। लेकिन माथुर क्या तुमको विश्वास है कि टगर तुमको प्यार करती है ?

माथुर :- प्यार किया नहीं जाता, कराया जाता है। दो लाख के तोहफे को वह अवश्य प्यार करेगी। नहीं करेगी क्या ?

गहलौत:- क्यों नहीं करेगी ज़रूर करेगी। वैसी ही करेगी

1.'टगर'- विष्णु प्रभाकर - पृ.सं-39-40

जैसे आप मुझे करते हैं और मैं आपको करता हूँ। क्यों ठीक है ना।"

उपर्युक्त कथोपकथन एक ओर भ्रष्टाचार,रिश्वतखोरी और अपराध का उद्‌घाटन करते है तो दूसरी ओर संबन्धों की स्वार्थपरक मानसिकता को भी उजागर करते हैं।

'बन्दिनी' में संवाद एक नया रूप धारण करता है। नये-नये प्रतीकों का प्रयोग करके अर्थ-विस्तार देने का प्रयास करता है –

"सावित्री:- (प्यार से) तुम एकाएक चुप क्यों हो गयी ? उधर क्या देख रही हो ?

उमा:- (गंभीर स्वर) देख रही हूँ जीजी, नदी की उन लहरों को। इस धूमिल चांदनी में उनके इस तरह आगे बढते देखकर मुझे बडा डर लगता है जैसे...जैसे कोई भयानक नागिन चुपचाप किसी को डंसने जा रही हो।

सावित्री:-बस-बस, रहने दे, तू तो तीन दिन में इतनी ज्ञानी हो गयी। नदी में लहरें उठा ही करती हैं।

उमा:- पर जीजी ! आज मुझे लगता है जैसे एक दिन मैं इन लहरों में समा जाऊँगी। मेरे कारण मेरा अनु पिटता है। वे मुझसे हमेशा-हमेशा के लिए बिछुड गए हैं। जीजी; मैं तुम्हारे पैरों पडती हूँ मुझे बचा लो, मुझे यहाँ से निकालने का कोई न

1'टगर'-विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 60-61

कोई प्रबन्ध करो। ।"[1]

संवादों के द्वारा चारित्र्य को उभारने के लिए नाटककार ने प्रत्येक पात्र को उनकी अपनी भाषा दी। कट्टर धर्मावलंबी कालीनाथ, अंधविश्वास से जूझनेवाले सुरेन्द्र दोनों के संवाद उनके चारित्र्य के रंग उभरते है –

"सुरेन्द्रः- तुम किससे प्रार्थना कर रही हो। अंधविश्वास ने उन्हें पत्थर बना दिया है। देवता ने उनकी बुद्धि हर ली है। वह तुम्हारे बच्चे का खून करके ही रहेंगे।

कालीनाथः- हरे,हरे!कैसा अनर्गल प्रलाप है तुम्हारा !देवी में अविश्वास देवी जो कहेगी, वही हम करेंगे। देवी जगंदंबा है, मां है। मां के रहते सन्तान का कुछ अनिष्ट नहीं हो सकता "।[2]

'अब और नहीं'में ऐसी संवाद योजना की गई है,जिसमें नारी संवेदनाओं के सूक्ष्म मनोभावों का चित्रण है। इस नाटक की मुख्य पात्र शान्ता की भाषा उसके चरित्र के अनुरूप अटपटी एवं असहज है। क्योंकि संवाद का यह विकृत रूप उसकी विकृत मानसिकता का द्योतक है। प्रारंभ में वह अपने पति वीरेन्द्र प्रताप की भाषा बोलती नज़र आती है। अकस्मात् चौंतीस वर्ष के बाद उसका अचेतन सक्रिय होता है और वह अपने अस्तित्व के प्रति सचेत होकर अपनी इच्छानुसार व्यवहार करने लगती है तो उसके संवाद अपने मन की तृप्ति के संवाद बनते है। किन्तु दूसरों की दृष्टि में वह असामान्य, बीमार एवं पागल बन जाती है।

1'बन्दिनी' -विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 42-43

2 'बन्दिनी' -विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 67

आरंभ से अन्त तक उन्तर्द्वन्द्व में उलझी शान्ता की संवाद योजना वेदना से युक्त हैं। लेकिन उसके अधिनायक पति वीरेन्द्र प्रताप के संवादों में अधिकार एवं अहं का शब्द है। सदैव शान्ता पर अपनी इच्छा थोपने के लिए वीरेन्द्र प्रताप परिस्थिति के अनुकूल व्यवहार करता है। क्योंकि उनका मूल उद्देश्य अपनी इच्छापूर्ति है। कभी-कभी वह कुपित होकर अपनी बात मनवाना चाहता है तो कभी वह प्रशंसा और प्रेम के द्वारा अपनी इच्छा की पूर्ति करता है जैसे –

"वीरेन्द्रः-(पास खींचकर) माँ कहती थी, तुम अवसर पाते ही सितार लेकर बैठ जाती हो।

शान्ताः- कभी मन करने लगता है तो बजाने लगता हूँ लेकिन माँजी...

वीरेन्द्रः- कहो, कहो, रुक क्यों गयी ?

शान्ताः- बिना कहे मेरी बात नहीं समझा नहीं सकते ?

वीरेन्द्रः- (मुस्कराता है) मैं ज्योतिषी हूँ क्या ?

शान्ताः- हाँ, क्यों नहीं, जहाँ प्रेम है, वहाँ अद्वैत है।

वीरेन्द्रः- (भावाकुल) सच वही अद्वैत है और जहाँ अद्वैत है वहाँ सितार कहाँ से आ गया ?

शान्ताः- (उलाहना भरा स्वर) बडे चतुर हो जी। बात को कहाँ ले गए।

वीरेन्द्रः- (प्यार से) शान्ता प्रिये ! माँ क्यों कहती है मैं नहीं जानता, पर मैं कहता हूँ और मैं क्या शास्त्रकार कहते हैं - 'प्रेम का

भी एक संगीत होता है। उसी में डूबने पर ऋद्धि-सिद्धि,स्वर्ग-उपवन सब कुछ प्राप्त होता है। उसे छोडकर सितार के संगीत के पीछे क्यों भागती हो तुम ? सितार का संगीत हमें यहाँ तक तो ले आया ! अब प्रेम का संगीत हमें जीवन के संगीत तक ले जाएगा। साध्य तो जीवन है, शेष सब साधन है (शान्ता मुग्ध-सी पति की ओर देखती है) इसलिए कहता हूँ, अब सितार उठाकर रख दो। वानप्रस्थ आश्रम के समय फिर उसकी आवश्यकता पड सकती है ।"[1]

यह संवाद योजना एक ओर पति-पत्नी के प्रेमपूर्ण संबन्धों की व्याख्या करता है तो दूसरी ओर शान्ता को सितार से विरक्त करनेवाले वीरेन्द्र के अधिनायक स्वरूप का उद्‌घाटन भी करता है।

इस नाटक में डा० मलिक और मंजरी का वार्तालाप शान्ता के मानसिक रोग का मनोवैज्ञानिक कारण प्रस्तुत करने के साथ-साथ उसका सामाजिक कारण भी उद्‌घाटित करते है जैसे –

"डा०मलिक:- सिम्पटम्स तो,खंडित मनस्कता के लगते हैं। तकनीकी भाषा में ऐसे बीमार स्कीनोफ्रोनिक कहलाते हैं। ठीक-ठीक पागल होता तो नहीं है, पर आधे पागल की सी हालत तो है ही।...इलाज तो है पर.....

मंजरी:- (सहसा) पर जैसे मैं ने आप से कहा था आप वैसा नहीं

1'अब और नहीं' -विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 16-18

सोचते कि माँ के रोग की जड में अपनी स्वतंत्र सत्ता की पहचान न हो पाने का दर्द बहुत तीव्र है। इतना तीव्र कि उनकी चेतना ही घायल हो गई है।

डा० मलिक:-इनके दिल और दिमाग दोनों ने चोट खाई है। संघर्ष न कर पाने का इनको गहरा सदमा लगा है कि वे टूट गई और संतुलन खो बैठी।

मंजरी:- हमें क्या करना होगा ?

डा० मलिक:-पहले तो किसी तरह इन्हें मेरे क्लिनिक पर आइए। उनके किसी कार्य में बाधा न दीजिए। किसी भी तरह परेशान व उत्तेजित न होने दिजिए। ऐसा वातावरण पैदा कीजिए कि ये अपने को मुक्त समझे। इनका स्वतंत्र मन लौट आए।

मंजरी:- मैं ऐसा ही करूँगी पर आप पापा को समझाइए। असल में अपराधी तो वही हैं।

डा० मलिक:- (हैसकर) केवल वही नहीं। वह तो व्यक्ति है। पूरा समाज खडा है कटघरे में।।[1]

इस कथोपकथन में एक ओर शान्ता की मनःस्थिति का पूरा विवरण है तो दूसरी ओर समाज में व्याप्त पुरुष की निरंकुश सत्ता की प्रभुता से उत्पन्न विषमताओं की ओर भी संकेत किया गया है।

1'अब और नहीं' -विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 63-64

अन्त में सभी बन्धनों से मुक्त होकर, घर से निकलकर भी शान्ता के मन का अन्तर्द्वन्द्व समाप्त नहीं होता । निम्न संवाद योजना इस का उदाहरण है–

"शान्ता:- मुझे बहुत दूर जाना है तमसा के तीर (चित्र दिखाकर) उन पहाडियों से निकलती है तमसा। क्या आप लोग उन पहाडों का रास्ता जानते हैं ?

सब:-तमसा नदी।

शुभ्रा:-माँ, आप उन पहाडों का नाम जानती है ?

शान्ता:-नाम ! नाम तो नहीं जानती, पर चित्र है उनका (झोले में से चित्र निकालती है) ये देखो ये चित्र हैं।

शुभ्रा:- नहीं माँ ! हम इन पहाडों का रास्ता नहीं जानते ।"[1]

मनोवैज्ञानिक नाटक होने के कारण शान्ता हमेशा काल्पनिक एवं असहज कथनों में बातचीत करती है। कभी वह स्नेह से युक्त है तो कभी कर्कश, कहीं आनन्दित है तो कहीं पीडित हो जाती है। इसलिए उसके कथोपकथन इन्हीं मनोदशाओं का द्योतक है।

'श्वेतकमल' में अनेक सामाजिक समस्याओं से जूझती भारतीय नारी की विभिन्न मनोदशाओं का चित्रण है। नाटक का आरंभ नायिका बिन्दु की निराशा भरी टूटन से होता है। प्रारंभ की यह संवाद-योजना परिवार की अभावग्रस्तता और विषमताओं की ओर संकेत करती है जैसे-

"माँ :-सब जानती हूँ, सब समझती हूँ।लेकिन जो बेसहारा है, जिन्हें

1'अब और नहीं' -विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 89-90

आप काम साधना है,उन्हें इतना गरूर करना अच्छा नहीं लगता। उन्हें ..उन्हें कहीं न कहीं समझौता करना पडता है.....

बिन्दु :-यह कहीं कहाँ खत्म होता है तुम बता सकती हो, माँ !

माँ हर चीज़ बताई नहीं जा सकती, समझनी होती है।

बिन्दु :-लेकिन समझने की क्या कोई सीमा नहीं होती?

माँ :- जब आदमी दूसरों के लिए जीने को विवश हो जाता है तो सहने और समझने की कोई सीमा नहीं रह जाती।[1]

इस संवाद योजना बिन्दु की पारिवारिक परिस्थिति को उजागर करने के साथ बिन्दु के प्रति परिवारवालों की उपेक्षापूर्ण व्यवहार का भी चित्रण करता है। बिन्दु अपने आदर्श और नैतिकता के द्वारा घर की परेशानियों और अफसरों की अपेक्षाओं का सामना करती है। कामकाजी नारियों के प्रति पुरुष की हीन प्रवृत्ति का प्रदर्शन करनेवाला यह कथोपकथन समाज की विकृत मानसिकता का भी उद्‌घाटन करता है-

"एक पुरुषः- हमें सुदर्शन, मोहक और लावण्यमयी युवतियों की आवश्यकता है।

दूसरा पुरुषः- हमें अपने वक्षों को निर्वस्त्र करनेवाली नारियों की आवश्यकता है।

तीसरा पुरुषः- हमें अपने व्यापार की प्रगति के लिए बडे-बडे

1'श्वेत कमल' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं 15-16

अधिकारियों और मंत्रियों के साथ निःसंकोच रमण करनेवाली रमणियों की आवश्यकता है।

तीनों पुरुषः- (एक साथ) तुम में ये गुण नहीं हैं। इसलिए हमें तुम्हारी आवश्यकता नहीं है। तुम जा सकती हो, जाओ। (तेजी से चीखते जाते हैं। उतनी ही तेजी से बिन्दु चीखती है)

बिन्दुः- चले जाओ भेडियों ! चले जाओ। तुम्हें काम करनेवाली नारी की नहीं वेश्या की ज़रूरत है ।[1]

इस नाटक में बिन्दु से भिन्न पूनम जैसी युवती भी है जो अपने देह का प्रदर्शन करके ऐश की ज़िन्दगी व्यतीत कर रही है। अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए यानि भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए वह अपने शरीर को नगण्य समझकर उसे बेचने में भी नहीं हिचकती है। बिन्दु की बहन नीलिमा भी अपनी अभावग्रस्त जीवन से विरक्त होकर पूनम के पथ पर जाना चाहती है। पूनम नीलिमा को भी अपने पथ पर आमंत्रित करती है जैसे-

"पूनम :- स्टुडियो जाना तो बहाना है। मैं तो अक्सर होटल कैमिलो जाती हूँ।

नीलिमाः-(चकित) होटल कैमितो वहाँ क्या है?

पूनमः- वहाँ सब कुछ है यार, सुन....एक रात के हज़ार तक मिल जाते हैं।

1'श्वेत-कमल' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं 74

नीलिमा:-(चकित) एक रात के एक हज़ार क्या वहाँ भी शरीर का सैदा होता ?

पूनम:- किस दकियानूसी भाषा का इस्तेमाल कर रही है तू यार शरीर तो नाशवान है। स्थायी है मन-प्राण का आनंद और...

नीलिमा:- (धीरे से) और....

पूनम:- और पैसा ! पैसा ही आधार है जीवन का...देख इस पटानी सूट में तू कैसी मारू लग रही हैं। और अगर तू जीन्स पहनने लगे तो पाँच सौ कहीं नहीं गये एक रात को। चल, आज तू भी चल न मेरे साथ ।"[1]

इस संवाद के द्वारा नाटककार समाज के कटु सत्य का पर्दाफाश करता है। गरीबी और विषमताओं के कारण पूनम जैसी अनेक युवतियाँ देह व्यापार जैसे अनैतिक कर्म में लिप्त होकर अपने अभावग्रस्त जीवन से मुक्ति चाहती है।

समस्त विषम परिस्थितियों के बावजूद भी दफ्तर में पदासीन मगरमच्छों और घरवालों को स्वार्थ से भी कभी समझौता करने को तैयार नहीं होती। रंजना के रूप में वह अपने मन की अतृप्त भावनाओं को प्रकट करती है और अन्त तक वह अपने दायित्व एवं विचार पर स्थिर रहती है जैसे-

"बिन्दु :- एक संतोष कि मैं अपने परिवार के लिए कुछ कर सकी।

रंजना :- (हंसती है) यह संतोष है या कर्ता होने का अहंकार?

बिन्दु :- (तेज होकर) कुछ भी कह लो। मैं ने वही किया जो मुझे

1'श्वेतकमल' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 86-87

करना चाहिए था। मैं नहीं चाहती थी कि नीलिमा तुम्हारी राह पर चलने को विवश हो जाए।

रंजना:-(हंसती है) यही तो अहंकार है।

बिन्दु:- (चीखकर) शब्दों से खेलना बन्द करो और यह भी जान लो कि तुम इस तरह मुझे कमज़ोर नहीं कर सकती। तुम यहाँ से चली जाओ और मेरा पीछा छोड दो ।"[1]

इस संवाद से पात्रों की वैचारिक भिन्नता का सूक्ष्म परिचय भी मिलता है।

'कुहासा और किरण' नाटक एक सत्य घटना पर अधारित होने के कारण विष्णु प्रभाकर संवादों में भी पर्याप्त वास्तविकता भरने का प्रयास करते है। राजनीति,समाज सेवा एवं पत्रकारिता के क्षेत्रों की भ्रष्टता को प्रस्तुत करने के लिए नाटककार ऐसे संवादों की रचना करते है जो तथ्यों और चरित्रों की विवेचना करके उनके भ्रष्ट स्वरूप को उजागर करें।

यह नाटक मूलतः भ्रष्टाचार और अवसरवादिता से ओतप्रोत है जिन्हें नाटककार अपनी चुटीली संवाद योजना से कहीं हास-परिहास से युक्त और कहीं गंभीर आरोपों से बार-बार प्रहार करने का प्रयास करते है। आम आदमी और नेता के बीच का संवाद समाज में व्याप्त अव्यवस्था की पुष्टि करता है—

"आम आदमी:- रामा स्ट्रीट में मेरी झोंपडी है। सरकार उसे गिराकर मुझे ग्यारह मील दूर अकबरपुर में ज़मीन दे

1'श्वेतकमल' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 106-107

रही है। मैं जाना नहीं चाहता,क्योंकि वहाँ गया तो काम पर आना मुश्किल होगा। मैं वहाँ नहीं जाऊँगा।

कृष्णचैतन्य :-(गंभीर होने का नाट्य करते हुए) सुनो मित्र ! तुम वह जगह ले लो।

आम आदमी :-(घबराकर) मैं वह जगह ले लूँ, क्या कहते हैं आप

कृष्णचैतन्य :- सुनो तो, मैं ठीक कहता हूँ, तुम वह जगह ले लो।

आम आदमी :-फिर.....

कृष्णचैतन्य:-फिर क्या, कुछ दिन बाद गहरा मुनाफा लेकर बेच देना और आज वहाँ झोंपडी उसी के पास एक नयी झोंपडी डाल देना। उसके बाद क्या होगा, यह हम देखेंगे।(गर्व से) ठीक है न !"[1]

इस प्रकार अव्यवस्था एवं भ्रष्टाचार के साथ-साथ कूटनीति तथा बड्यंत्रों का भी दृश्य नाटक में देखने को मिलता है। भ्रष्ट चरित्र अपनी स्वार्थपूर्ति केलिए किस प्रकार निरपराध व्यक्ति को अपने कुटिल जाल में फंसाते है इसका संकेत विपिन बिहारी और प्रभा के बीच की संवाद योजना में मिलता है--

"विपिन विहारी:-(तलखी से) क्या काम है मुझ से?

प्रभा:-पूछने आयी हूँ, उस निरपराध अमूल्य को क्यों बलिदान का बकरा बनाया गया है? किस अपराध का दण्ड भोग रहा है वह बेचारा ?

1'कुहासा और किरण' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं 36-37

विपिन बिहारीः- कृष्णचैतन्य से जाकर पूछो। रिपोर्ट उसी ने की थी।

प्रभाः- पर आपने विरोध क्यों नहीं किया? क्यों नहीं कहा...

विपिन बिहारीः- इसलिए कि कहने का अर्थ होता यह स्वीकार करना कि कागज़ मैंने भेजा था। तब मुझे जेल जाना पडता और फिर....

प्रभाः- (क्रोध से) तो अपने को बचाने के लिए उस बेगुनाह को कत्ल किया जा रहा है।

विपिन बिहारीः-मज़बूरी है.....।[1]

पाँच पीढियों की क्रान्ति की कथा प्रस्तुत करनेवाले 'युगे-युगे क्रान्ति' में नाटककार अपने संवाद कौशल के माध्यम से सन् 1875 से लेकर वर्तमान काल तक का प्रस्तुतीकरण प्रभावपूर्ण ढंग से करते है। कथाविकास का तीव्रतम संकेत देने में संवाद योजना सक्षम सिद्ध हुई है।सन् 1920-21 का समय देश की स्वाधीनता के कार्यकलापों से संबन्धित था। स्वतंत्रता की आकांक्षा के कारण पूरे राष्ट्र इस संग्राम सें भाग लेते हैं। युवतियाँ भी पीछे नहीं है। प्यारेलाल की बेटी शारदा उन्ही में है। शारदा और सार्जेण्ड की संवाद-योजना में एक ओर इस राष्ट्रव्यापी कर्म की सार्वभौमिकता सिद्ध है तो दूसरी ओर सामाजिक स्तर पर परिवेश के परिवर्तन को भी व्यक्त करता है। कथासूत्र को जोडने और विकसित करनेवाले सूत्रधार के संवाद महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

दो पीढियों के वैचारिक एवं सैद्धान्तिक संघर्ष पर आधारित 'टूटते

1'कुहासा और किरण' -विष्णु प्रभाक्रर- पृ.सं-81

परिवेश, की संवाद योजना भिन्न युगों की संस्कृति और मूल्यदृष्टि की झलक प्रस्तुत करती है।एक पीढी की संवाद शैली दूसरी पीढी को समझ नहीं आती।क्योंकि पीढियों के अन्तर के साथ शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन हुआ है जैसे-

"विश्वजीत:-युग बीत जाता है, नैतिकता हमेशा जीवित रहती है।

विवेक:- लेकिन उसके अर्थ बदल जाते हैं जैसे दीप्ति की दृष्टि में सँवारने के अर्थ बदल गये।

विस्वजीत:- तुम लोगों की भाषा मेरी समझ में नहीं आती।

विवेक:- और आपकी भाषा हमारी समझ में नहीं आती।लेकिन भाषा की स्वतंत्र सत्ता है कहाँ? वह तो हमारी मान्यताओं की प्रतिध्वनि का आकार मात्र है। आप कहते हैं ऐसा होना चाहिए, हम कहते हैं ऐसा होता है।"[1]

विश्वजीत की संतान की आधुनिक प्रवृत्ति उनके पुरातनपंथी विचारों का अनुगमन नहीं करने के कारण वह हमेशा दुःखी रहता है। किन्तु उनकी पत्नी करुणा बदलते संदर्भ के अनुसार जीने में सक्षम है। इसलिए घर छोडकर चले गये बच्चों के प्रति विश्वजीत के विचारों को यथार्थ से जोडने का प्रयास करती है—

"विश्वजीत:- बचपन से मैं ने 40-40 लोगों के बीच में बैठकर पूजा की है। पुरोहित का ज़ोर-ज़ोर से वह मंत्र-पाठ करना मुझे आज भी याद है।..... जब हाथ में लड्डुओं का

1'टूटते परिवेश' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं -23-24

बडा थाल लेकर, प्रसाद बाँटती हुई, माँ सबके बीच में घूमती थी तब उनके चेहरे पर का तेज देखते ही बनता था।जैसे साक्षात् भारत माता हों। भारत माता....

करुणा:- मैं कहती हूँ भारत माता की चिन्ता छोडकर तुम अपनी औलाद की चिन्ता करो। कोई रहा है तुम्हारे कहने मैं? एक-एक करके सभी चले चा रहे है। जितना भी तुम परिवार को सहेजने की कोशिश करते हो उतना वही बिखरता जाता है। हर कोई इन्तज़ार में रहता है कि बहाना मिले और वह बाहर निकल जाए।[1]

इस नाटक के संवाद मनःस्थितियों और प्रतिक्रियाओं को प्रस्तुत करने के साथ-साथ यथार्थ और व्यंग्य से ओतप्रोत है। ये संवाद दोनों पीढियों पर तीखा प्रहार करते है--

"करुणा:- मैं कहती हूँ यह बाहस अब बन्द भी करोगे या नही? खाना नहीं खाना है तुम्हें? कब तक चूल्हा लिए बैठी रहूँगी?

दीप्ति:- बैठे रहना तुम्हें अच्छा लगता है,इसलिए बैठी रहती हो। इसी को तुम कर्तव्य कहती हो और इसी को ममता। हमारी भाषा में यह महज एक आदत है। मज़बूरी भी कह सकते हैं।

1'टूटते परिवेश' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं -17-18

करुणा:- रहने दे अपनी भाषा। तुम्हारी इसी भाषा ने तो मनों को तोड दिया है। जब देखो बहस-बहस। तुम्हारे जो जी में आये करो। मैं अब और इन्तज़ार नहीं. करूँगी ।[1]

करुणै के संवाद माँ की ममता, वात्सल्य एवं कर्तव्य से परिपूर्ण है। वह पति और संतान के मध्य सेतु का काम करती है। विश्वजीत और करुणा द्वारा नाटक के अन्त में पारिवारिक विघटन को जोडने के लिए जिस स्वप्न दृश्य की सृष्टि की गयी है उनकी संवाद योजना यथार्थ दृश्य का भ्रम देती है। जब यह भ्रम टूटता है तो एक धारणा की स्थापना करती है–

"विश्वजीत:- खिडकी खुली है। भोर हो रहा है। कोई तो आएगा ही। किसी का आना कितना अच्छा लगता है, जैसे सूरज की यह किरण।

करुणा:- लेकिन हर नये आनेवाले से पहले किसी पुराने को जाना होता है. यही प्रकृति है, यही नियम है ।[2]

यह संवाद नाटक को एक नई दृष्टि प्रदान करता है। नाटक का संवाद आगामी जीवन के प्रति आशा,विश्वास और संभावना को प्रस्फुटित करता है।

'नव प्रभात' की संवाद योजना ऐतिहासिकता के अनुरूप होने के साथ पात्रों की मनोवृत्ति एवं परिस्थितियों के अनुकूल भी है। कथोपकथन के द्वारा समूचा द्वन्द्व प्रत्यक्ष प्रस्तुत होता है। 'प्रस्तावना' में ही संघमित्रा का कथन सम्राट् अशोक के

1'टूटते परिवेश' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं -45

2 'टूटते परिवेश' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं -80

द्वन्द्व की आरंभिक अवस्था की स्थापना करती है जो धीरे-धीरे तीव्रतर हो उठती है जैसे–

"संघमित्रा:- इस महानाश के सूत्रधार स्वयं सम्राट उद्विग्न हो उठे हैं। उन्हें शंका होने लगी है कि यह कलिंग की पराजय है या उनकी हार-यह क्रान्ति का रक्त है अथवा महानाश का शोषित ।"[1]

कलिंग युद्ध के रक्तपात और विभीषिकाओं से त्रस्त सम्राट् अशोक को कलिंग कुमार अपने वचनों से और अधिक प्रखर बना देते हैं। बाद में बौद्व भिक्षुणी कलिंग राजकुमारी इनके मनोभावों को उद्वेलित कर चरमोत्कर्ष पर पहुँचा देती है। अशोक के साथ कलिंग कुमार और राजकुमारी का संवाद नाटक के महत्वपूर्ण स्थल है। दोनों सम्राट् अशोक के युद्ध-विभीषिका की तीखी भर्सना करते हैं जैसे–

"कलिंग कुमार:- इस हत्यारे सम्राट् को एक दिन इस रक्त-प्लावन का बदला चुकाना होगा। उनका अपना ही हृदय उसकी भर्सना करेगा।...लाखों

अशोक :- वही उपगुप्त का स्वर,वही बौद्व भिक्षु की वाणी ! बौद्वों की दुर्बल नीति के कारण ही तुम्हारा पतन हुआ है बंदी।

कुमार:-मेरा पतन नहीं हुआ, अशोक ! पतन तुम्हारा हुआ है।

1'नव प्रभात' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं -22

अशोक:-मेरा पतन भरत सम्राट् का पतन ! असंभव बन्दी असंभव ! बन्दी ! असंभव.....

कुमार:- असंभव नहीं, अशोक! वह पूरी तरह संभव हो चुका है। लाखों मानवों का रक्त तुम्हारे पतन की घोषणा कर रहा है। लाखों घायलों की कराह में तुम्हारे पतन का स्वर गूँज रहा है। ललनाओं की सूनी माँगों में, माताओं की खाली गोदियों में, शिशुओं की निरीह दृष्टि में सब कहीं तुम्हारे पतन की कहानी अंकित है। कलिंग के उजडे हुए ग्राम, वीरान प्रदेश ये सब तुम्हारे पतन के साक्षी है। अशोक, तुम जीतकर भी हार गये हो। कलिंग मिटकर भी अमर हो गया है ।"[1]

युद्ध,हिंसा,रक्तपात,प्रतिशोध जैसे अमानवीय व्यवहारों की बीभत्सता को पश्चात्ताप,क्षमा,प्रेम जैसे संवादों से शान्ति मिलते है। कलिग राजकुमारी वे संवाद धार्मिक आचरण के शान्तिमय स्वरूप की स्थापना करते हैं–

"कलिंग कुमारी:-पीले वस्त्रों का अर्थ निष्क्रियता नहीं है और क्रिया में सदा अग्नि होती है। अग्नि जीवन की शर्त है। वह प्रकाश भी देती हैं और जलती भी है। यह दूसरी बात है कि कुछ लोग अपने आपको जला देते हैं और कुछ अपनी दुर्बलता को ।"[2]

---

1 'नव प्रभात' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं -33-34

2 'नव प्रभात' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं -100

इस नाटक के कई संवाद ऐसे है जो सूक्ति का रूप धारण कर लेते है।

राजवंश से संबन्धित होने के कारण 'सत्ता के आर-पार' में वैभवशाली कुलीन संवादों का समावेश हुआ है। धर्मगुरुओं एवं धर्माचार्यों द्वारा पांडित्य से पूर्ण एवं विद्वता पूर्ण संवाद की प्रस्तुति हुई है। राजा धर्म और सत्ता की रक्षा के लिए अधिकारपूर्ण संवादों का प्रयोग करते हैं।

प्रस्तुत नाटक दो भाइयों के सत्ता-संघर्ष की कथा है और अन्त तक यह संघर्ष बना रहा। निम्न कथोपकथन इस बात को व्यक्त करता है जैसे–

"प्रहरी-1:- देखी तुमने सत्ता की माया। अहिंसा के आंगन में हिंसा का नृत्य होगा अब।

प्रहरी-2:- सत्ता का अर्थ ही हिंसा है।

प्रहरी-1:- आदि ब्रह्म भगवान् ऋषभदेव ने हमें बताया है कि जिसमें किसी प्रकार के हिंसा का भाव न हो वहीं मनुष्य सभ्य है।

प्रहरी-2:- और हम हैं कि असभ्यता की ओर बढ रहे हैं।

प्रहरी-1:- आदिब्रह्म अभी हमारे बीच में जीवित हैं। वे कोई न कोई मार्ग खोज ही लेंगे।"[1]

महाराजा भरत के दिग्विजय की पूर्णता भाई बाहुबली के समर्पण पर टिकी हुई है किन्तु बाहुबली के सत्ता मोह युद्ध का वातावरण पैदा करता है। सम्राट् भरत को एक ओर अपने भाइयों की सत्ता पर आधिपत्य करने की पीडा है तो दूसरी ओर चक्रवर्तित्व की पूर्णता का धर्म है। भरत के इस आत्मद्वन्द्व का उद्‌घाटन

---

1 'सत्ता के आर पार' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग- 4 - पृ.सं -400

करनेवाली संवाद योजना इस प्रकार है–

"भरतः- (राजमुकुट पर दृष्टि गडाये हुए) क्या हमें भाईयों से अपने चरण पुजवाने ही होंगे?

नारीमूर्तिः- हाँ पुजवाने ही होंगे। जब तक वे आपको प्रणाम नहीं करते चक्रवर्तित्व सिद्ध नहीं होता।

भरतः-हम चक्रवर्ती नहीं होना चाहते।

नारीमूर्तिः-(हँसकर) अब यह आपके चाहने या न चाहने का प्रश्न नहीं है, राजधर्म का प्रश्न है। आपने छः खण्डों के राजाओं को अपने चरणो में क्यों झुकाया ?बोलो, चुप क्यों हो ? याद नहीं आ रहा ?

भरतः- (तडपकर) सब याद है हमें पर भाई का भाई से युद्ध....।"[1]

महाराज भरत के आत्मद्वन्द्व से युक्त संवाद उनके मानवीय स्वरूप की स्थापना करते है। किन्तु बाहुबली अपनी सत्ता एवं स्वाभिमान की रक्षार्थ चक्रवर्ती के सामने समर्पण के लिए तैयार भी नहीं है। दोनों का विचार युद्ध की स्थिति पैदा करता है और दोनों क्षेत्रों का जनजीवन युद्ध की विभीषिका एवं रक्तपात से आतंकित हो उठता है। युद्ध जैसे भयंकर अमानवीय प्रवृत्ति के विरुद्ध जनशक्ति सी संवाद योजना दृष्टव्य है–

"स्वर-1:- युद्ध बन्द होने चाहिए।

स्वर-2:- युद्ध अराजकता फैलाते हैं।

1'सत्ता के आर पार' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग- 4 - पृ.सं -396

स्वर-3:- युद्धों से धर्म नष्ट होता है।

स्वर-4:- युद्धों से शील नष्ट होता है।

स्वर-5:- युद्धों से वह सब जो शुभ है, सुन्दर है, नष्ट हो जाता है।

सामूहिक स्वर:-युद्ध बन्द होने चाहिए-युद्ध बन्द करो ।[1]

अतः इस नाटक में आदर्शात्मक संवाद योजना के साथ धर्म, अध्यात्म और दर्शन से युक्त संवादों का भी प्रयोग हुआ है। नाटक के मूल संवाद 'संघर्ष' से ओतप्रोत है।

'गान्धार की भिक्षुणी' में आततायी हूणों के चरित्र की नृशंसता को उजागर करने के लिए जनता के आपसी वार्तालाप प्रस्तुत करते है जो परिस्थिति की बीभत्सता को भी व्यक्त करते है जैसे–

"अधेड व्यक्ति-1:- आजकल सुरक्षा की बातें करते हो तुम ! सारा सामान लूट लिया जालिमों ने ! पैसे माँगें तो घर से बेघर कर दिया।

बुढा व्यक्ति:- (तेज होकर) लडाइयों में पैसा नहीं मिलता। मिलता है अपहरण,बलात्कार,महामारी, हत्या और .....और....!

अधेड व्यक्ति 2:- रुक क्यों गये ? और मैं बताता हूँ। विधवाएं, अनाथ,भूख और अकाल ये सब भी लडाइयों की ही

1'सत्ता के आर पार' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग- 4 - पृ.सं -421

देन हैं।[एक नारी की दर्दनाक चीख उठकर वहाँ फैल जाती है]

अधेड व्यक्ति 1:-(दीर्घ निःश्वास) लो एक और शीलहरण हुआ ।"[1]

प्रारंभ के संवादों से ही कथा का सारांश प्रस्फुटित हो जाता है। आगे चलकर संघर्ष की स्थिति भी तेज़ होती है जैसे–

"आनन्दी:- देश आतुर है, कोई उठानेवाला चाहिए।

यशोधर्मन:-जो उठानेवाले की प्रतीक्षा करता है, वह मुरदा है। मुरदा को कोई नहीं उठा सकता।

मालवी :-उठा सकता है।

आनंदी:- मालव-वीर यशोधर्मन मुरदों को भी उठा सकता है। सबकी आंखें आज इसी महाभाग पर लगी है।

मालवी:-मालववीर !मालवा आज वह नहीं रहा है,जो साल भर पहले था। हूणो के बढते अत्याचारों ने यहाँ के निवासियों को सचेत कर दिया है। धूल की तरह बर्बरों को अंधा करने के लिए उठ खडे हुए है वे। उनका क्रोध नंपुंसक का क्रोध नहीं रह गया है। वह उबल उठने को आतुर है।"[2]

इस संवाद योजना पूरे मालव-प्रदेश में उठ रहे विद्रोह को चित्रित करती है। इस संवाद में आनन्दी और मालवी का विद्रोह स्पष्ट परिलक्षित है। इस

---

1 'गान्धार की भिक्षुणी' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग- 5 - पृ.सं -87-88

2 'गान्धार की भिक्षुणी' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग- 5 - पृ.सं -97-98

प्रकार अत्याचार, अन्याय, युद्ध एवं विनाश के मध्य कुछ संवाद सहज मानवीय संवेदनाओं की अनुभूति करती है। व्यक्तिगत स्तर पर प्रतिशोध की भाषा बोलती आनंदी सामाजिक स्तर पर अपने ओजपूर्ण संवादों से मालव जनता को मुक्ति के लिए प्रेरित कराती है।

स्वाधीनता के मूल भाव पर आधारित 'केरल का क्रान्तिकारी' प्रयुक्त संवाद संघर्ष और स्वाधीनता संग्राम के प्रखर स्वरों से गूँजित है। नाटक संघर्ष से आरंभ होता है और आत्मबलिदान पर समाप्त होता है। इसलिए नाटक के संवाद संघर्षपूर्ण एवं आवेशयुक्त हैं। वेलुत्तंपि और अंम्मुकुट्टी के संवाद दोनों के चरित्र वैशिष्ट्य को प्रस्तुत करते है जैसे–

"वेलुत्तंपि:- मैं जो कह चुका हूँ उस पर दृढ हूँ। मैंने अपना जीवन राज्य की सेवा में समर्पित कर दिया है। मेरे पास तुम्हें देने के लिए कुछ नहीं बचा है.....

अम्मुकुट्टी:- वह सब मैं न जाने कितनी बार सुन चुकी हूँ और आशा भी छोड चुकी हूँ।

वेलुत्तंपि:- (हँसकर) लेकिन आशा तुम्हे नहीं छोड रही। आज मेरे मन में भी एक नयी आशा का उदय हुआ है।

अम्मुकुट्टी:- (उत्सुक होकर) कौन-सी आशा है वह ज़रा सुनूँ तो !

वेलुत्तंपि:- (गंभीर होकर) देश को मुक्त कराने की आशा ।"[1]

इस नाटक में नाटककार अंग्रेज़ी पात्र मैकाले के लिए विशिष्ट संवाद

---

1 'केरल का क्रान्तिकारी' - विष्णु प्रभाकर पृ.सं -22

शैली की सर्जना करते है। उनका संवाद राज्य में चल रहे पड्यंत्रों की सूचना देता हैं जैसे–

"मैकाले:-टो टुम कहना चाहते हो कि पूरे राज्य में शोले भडक उठे हैं। हर आडमी विद्रोही हो गया है। टुम क्या कर रहे ठे इटने डिन से ?

तरकन:- हुजूर,मैंने जनता में अपने आदमी छोड रखे हैं। समझा बुझाकर और ज़रूरत पडने पर लालच देकर उन्हें बरगलाने की पूरी कोशिश हो रही है, पर वह जो अम्मुकुट्टी है,उसका जादू मैं नही तोड पा रहा। वह सचमुच जादूगरनी है। बहा ले जाती है सबको अपनी ओजस्वी वाणी से।

मैकाले:- टुम उस डिन कह रहे ठे कि वह टम्पी से शादी करना चाहती है

तरकन:-जी हाँ सुना था। फिर सुना कि तम्पी ने कहा मैं शादी कर लूँगा तो राज्य का काम नहीं कर पाऊँगा।.....तुम मुझसे सचमुच प्यार करती है तो वही काम करो जो मुझे प्रिय है

मैकाले:- और वह वही काम कर रही है। टम्पी विद्रोही हो गया है और वह जनटा को विद्रोह के लिए उकसा रही है। हमारे डेश में ऐसी औरट होती तो हम

उसकी पूजा करटें ।"[1]

वेलुत्तंम्पी की क्वाधीनता की आकाक्षा को अम्मुकुट्टी जनता में प्रसारित करती है। इस के फलस्वरूप जन चेतना का स्वर गूँज उठता है। जन भावनाओं के आवेश की संवाद योजना का उदाहरण है–

"नागरिक-1:-हम उनके सब बड़यंत्र विफल कर देंगे।

नागरिक-2:-हम उनके मनसूबे मिट्टी में मिला देंगे।

नागरिक-3:-यह राज्य हमारा है हमारा रहेगा स्वतंत्रता हमारा नारा है।

नागरिक-4:-यह देश हमारा हैं हमारा रहेगा।....हमारा प्यारा दलवा हमें स्वतंत्रता दिलाएगा ।"[2]

अतः भावाभिव्यक्ति से युक्त ऐसे संवाद नाटक के अनेक स्थलों पर देखने को मिलते हैं। ये संवाद छोटे होते हुए भी जिनसे संपूर्ण जनमानस की प्रवृत्ति उजागर होती है। नाटककार ऐतिहासिक चरित्र की संपूर्ण व्याख्या करने के लिए कहीं कहीं दीर्घ संवादों का प्रयोग करते हैं।

अतः कहा जा सकता है कि विष्णु प्रभाकर के नाटकों के संवादों में चरित्रांकन और कथानक को मोड देने की क्षमता विद्यमान है। पात्रों के विचारगत उलझन की व्यंजना संवादों में हुई है। व्यंग्यात्मक तीक्ष्णता द्वारा वस्तुप्रकाशन की वास्तविकता ध्वनित करने में भी संवाद सफल निकले।

---

1 'केरल का क्रान्तिकारी'- विष्णु प्रभाकर- पृ.सं -39-40

2 'केरल का क्रान्तिकारी'- विष्णु प्रभाकर- पृ .सं -54

देश काल एवं. वातावरण:-

नाटक में देश काल तथा वातावरण का विशेष स्थान है। पात्रों के व्यक्तित्व में स्पष्टता तथा वास्तविकता लाने के लिए पात्रों के चारों ओर की परिस्थितियों,वातावरण तथा देशकालिक विधान के वर्णन की आवश्यकता होती है। इसलिए प्रत्येक युग, प्रत्येक देश तथा वातावरण का चित्रण उसकी संस्कृति - सभ्यता,रीति-रिवाज़,रहन-सहन और वेष-भूषा के अनुरूप होना चाहिए।

श्री विष्णु प्रभाकर के नाट्य लेखन का वास्तविक विकास स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त दृष्टिगोचर होता है। वे सामाजिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक और ऐतिहासिक सभी विषयों पर खूब लिखते हैं। विषय-वैविध्य की तरह देश काल तथा वातावरण की भिन्नता भी इनकी रचनाओं में स्पष्ट दिखाई देती है। उनके द्वारा रचित कई नाटकों का कथ्य-फलक स्वतंत्रता पूर्व का समय और देश काल है। स्वाधीनता के पूर्ण का समय और वातावरण को प्रस्तुत करनेवाले नाटकों में स्वतंत्रता से पहले के चरित्र,घटनाएँ और परिस्थितियाँ विद्यमान है। विष्णु प्रभाकर उस काल विशेष की समस्त राजनैतिक घटनाओं, सामाजिक व्यवहारों, धार्मिक परंपराओं और आर्थिक अभावों से परिचित होने के कारण उस युगीन समस्त व्यवहारों को वे अपने नाटकों में अत्यन्त सजीव रूप में उतारने का प्रयास करते हैं। स्वतंत्रता पूर्व का राजनैतिक माहौल एक ओर बिटिश शासन व्यवस्था की नृशंसता और क्रूरता से रंगा है तो दूसरी ओर इस अन्याय के विरोध में खडे भारतवासियों के छोटे-बडे प्रयासों से ओतप्रेत है। उन दिनों भारत के राजनैतिक क्षेत्र पर गान्धी, नेहरू तथा सुभाष के विचार एवं कार्यकलाप पूरी तरह छाये हुए थे। स्वाधीनता

सेनानियों के नेतृत्व में पूरा देश स्वतंत्रता की चाह में अपनी शक्ति तथा क्रान्ति के साथ स्वतंत्रता संग्राम में उतर चुका था। विष्णु प्रभाकर बचपन से ही देश की स्वाधीनता की क्रान्ति और गतिविधियों से परिचित था। अपने चाचाजी के साथ एक कांग्रेस सभा में जाकर वे आज़ादी की छटपटापट को महसूस करने के साथ-साथ खादी को अपनाने की इच्छा भी अपने मन में संजोये रखते थे। इस प्रकार मुक्ति संग्राम में भाग लेने के अवसर की ताक में रहते हैं। उनके व्यक्तिगत और साहित्यिक जीवन के निर्माण में उनके चारों ओर की घटनाओं का बराबर योग रहा है। इसके संबन्ध में स्वयं उनका कहना है-

"देखता हूँ कि देश में होनेवाले नाना रूपयुक्त आन्दोलनों का योगदान मेरे नये जीवन को दिशा देने में कम नहीं रहा। सन् 1945 से 15 अगस्त 1947 को देश के स्वतंत्र होने तक के सभी संघर्षों के और उसके बाद तक चलनेवाले साम्प्रदायिक रक्तपात में जहाँ एक ओर चेतना को बुरी तरह झकझोरा वहीं मात्र मसिजीवी होकर जीने में रथ की चुनौती को स्वीकार करके शक्ति भी दी मेरे लेखन को नये आयाम दिये।"[1]

उनके मन में स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने की इच्छा प्रबल हो उठी है।किन्तु पारिवारिक दायित्वों के कारण उनको एक सरकारी कार्यालय में नौकरी करनी पडी। इस दफ्तर में काम करते हुए भी वे देश में चल रहा राजनैतिक हलचलों में पर्याप्त रुचि लेते रहे हैं। सरल एवं शान्त व्यक्तित्व के विष्णु प्रभाकर गान्धीजी के विचारों का समर्थक बन गये। गान्धी विचारधारा की छाप उनके उन

---

1 'विष्णु प्रभाकर' - सं- डा० विश्वनाथ मिश्र, डा० कृष्ण चन्द्रगुप्त पृ.सं - 39

नाटकों में स्पष्ट परिलक्षित है, जिनमें स्वाधीनता से संबन्धित कथ्य का समावेश है। 'युगे-युगे क्रान्ति' नाटक में देश की इस समस्या का चित्रण करने के साथ-साथ गान्धीजी के विचारों का प्रस्तुति भी है। सूत्रधार उस काल का चित्रण करते हुए कहता है- *"यह गान्धीजी के असहयोग आन्दोलन का युग है। चारों तरफ उत्तेजना फैली है। असंख्य युवक उस जादूगर के प्रभाव में आ चुके हैं। युवतियाँ भी पीछे नहीं है।"*[1]

स्वतंत्रता से पूर्व का समय राष्ट्रप्रेम की उदात्त भावना से ओतप्रोत है। पुरुषों के समान स्त्रियाँ भी स्वतंत्रता आन्दोलन में अपनी भागीदारी प्रदर्शित कर रही थी। इस नाटक में शारदा स्वाधीनता आन्दोलन की कर्मठ कार्यकर्ता है। उसके वक्तव्य में भारतीय नारी की उस काल की छवि मिलती है जैसे- *"गान्धीजी ने देश की आज़ादी के लिए असहयोग आन्दोलन करने का ऐलान किया है। उन्होंने कहा है कि इस युद्ध में नारी को भी पुरुष के कन्धे से कन्धा भिडाकर भाग लेने का अधिकार है। किसी समय राजपूत लोग लडने के लिए युद्ध में जाते थे और उनकी नारियाँ उनके हार जाने पर सती होकर जल जाती थीं। आखिर वे भी मरती ही तो थीं। मैं कहती हूँ कि घर के अन्दर बैठकर मरने से यह बेहत्तर है कि हम भी पुरुषों की तरह कष्टों का सामना करें और तब यदि मौत आये तो हँसते-हँसते उसे गले से लगा लें।"*[2]

1'युगे-युगे क्रान्ति' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग 5 पृ.स- 312

2'युगे-युगे क्रान्ति' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग 5 पृ.स.-313

लेकिन 'कुहासा और किरण' नाटक में स्वतंत्रता संग्रम में सम्मिलित क्रान्तिकारियों की दृढ मानसिकता के विरुद्ध कुछ दुर्बलताओं का भी उद्घाटन हुआ है। इस नाटक में ब्रिटिश सरकार में जा मिले भारतीय क्रान्तिकारियों के देशद्रोहपूर्ण कार्य-कलाप का भी चित्रण है। क्रान्तिकारी मुखबिर बनकर सबको दगा देकर स्वयं इस अवसरवादिता का लाम उठाता है। इसके संबन्ध में मालती का कहना है कि- *"वे बहुत बडे देशभक्त थे। 1942 में उन्होंने अंग्रेज़ों को नाकों चने चबवा दिये थे। वे पाँच मित्र थे। वे सब पकडे गये। उनमें से एक मुखबिर हो गया। तुम जानों उन मुखबिरों नाशपीटों के मारे ही तो बर्बादी हुई। उनको लंबी-लंबी सज़ायें हुई, जेल में उन्हें सताया गया। वहीं से वे तपेदिक लेकर आए और चार साल में घुल घुलकर चल बसे ।"*[1]

मालती का यह वक्तव्य स्वतंत्रता संग्राम के सत्-असत् दोनों पक्षों का उद्घाटन करता है। इस प्रकार स्वतंत्रता पूर्व का राजनैतिक माहौल एक ओर राष्ट्रप्रेम और आज़ादी के उदात्त भावों से परिपूर्ण था तो दूसरी ओर कतिपय मुखबिरों तथा देशद्रोहियों से त्रस्त।

स्वाधीनता पूर्व की सामाजिक परिस्थितियाँ भी विष्णु प्रभाकर के नाटक में देखने को मिलती है। उस समय समाज अनेक सामाजिक कुप्रथाओं से जकडा हुआ था। संयुक्त परिवार में मात्र अधिनायक का व्यक्तित्व ही सर्वोपरि होता था। परिवार के अन्य सभी सदस्य कुल-रीति के अनुकूल आचारण करने को विवश होते थे। कठोरे अनुशासन में गुजरते लोग अपनी सहज मानवीय संवेदनाओं की

1'कुहासा और किरण' -विष्णु प्रभाकर- पृ.सं- 41

अभिव्यक्ति से वंचित रहते। परिवार में पति-पत्नी के संबन्धों पर भी पारिवारिक प्रतिष्ठा के कट्टर प्रतिबंध रहते। इसकी पुष्टि विष्णु प्रभाकर अपने नाटक 'युगे युगे क्रान्ति' और 'बन्दिनी' में करते हैं।

स्वतंत्रता से पहले समाज बाल-विवाह, विधवा-विवाह,पर्द-प्रथा और जाती-पाँति की अनेक समस्याओं से उलझा हुआ था। ऊँच-नीच, अमीर-गरीब, छूत-अछूत आदि का भेद-भाव पूरी व्यवस्था पर छाया हुआ था। उस समय सवर्ण यानि ऊँची जाति का बोलबाला था अन्य सभी उनके अधीन थे। आज़ादी के तूफानी जुनून में इन सामाजिक कुरीतियों के आस्तित्व क्षीण हो गए थे लेकिन पूर्ण रूप से न्ष्ट नहीं हुए थे। पुरातन रूढी व्यवहारों और कुप्रथाओं से जनता का विश्वास हटाने के लिए सुधारवादी आन्दोलन ने जो भूमिका निभाई, जिससे नई पीढी में नई चेतना और जागरण प्रसारित हुई। रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, दयानंद सरस्वती आदि के सुधारवादी दृष्टिकोण युवावर्ग में नई चेतना का प्रसार करते रहे। विष्णु प्रभाकर के नाटकों में क्रान्ति और सुधारात्मक स्वरों का पर्याप्त अंकन है।

सन् 1875 के आसपास भारतीय समाज कट्टर रूढिवादिता से ग्रस्त था। उस वक्त योगी परमहंस के क्रान्तिकारी विचारों का भी बेलबाला था। 'युगे-युगे क्रान्ति' की रामकली का वक्तव्य इस बात की पुष्टि करता है जैसे- *"कहीं आप उस नंगे साधु के पास तो नहीं जाने लगे जो ज़ोर-ज़ोर से बोलकर कोलाहल करतै है और मूर्ति की पूजा करने को पाप बताता है। कहता है - औरतों और भंगी-चमारों को पढाना चाहिए।"*[1]

1'युगे-युगे क्रान्ति' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग 5 पृ.स.- 302

सन् 1901 के आसपास आर्यसमाज के सुधारवादी स्वरों की गूँज थी। आर्यसमाज के आचार्य साहस के साथ समाज में व्याप्त पाखंड का कठोर शब्दों में विरोध करते हैं जैसे- *"आप लोग शान्त रहिए। उन लोगों को शोर करने दीजिए। जब-जब भी सुधार और क्रान्ति का स्वर उठता है, पाखण्डी लोग इसी तरह बाधा देते हैं। लेकिन विश्वास रखिए, वे हमारा कुछ नहीं बिगाड सकते। शोर मचानेवाले कायर होते हैं। उनमें क्रान्ति का सामना करने का साहस नहीं होता । कायर कभी सदाचारी नहीं हो सकता।"*[1]

इस प्रकार आर्यसमाज का प्रभाव लोगों पर पडा। ये जाति-पाँति, मूर्तिपूजा और अन्य परंपरागत आडम्बरों से जनता को,सचेत करते है। स्वयं विष्णु प्रभाकर लंबे समय तक आर्यसमाज से जुडे रहे। उनका कहना है- *"मुक्ति संग्राम से न जुड सका तो आर्यसमाज के सुधार-आन्दोलन से तो जुड ही सकता था।..... आर्यसमाज के संपर्क में आने के कारण पढने की प्रवृत्ति को बहुत बल मिला।.... यह भी उतना ही सत्य है कि मेरी प्रारंभिक रचनाओं पर जहाँ एक ओर आर्यसमाज के सुधारवाद का प्रभाव है वहीं दूसरी ओर वे शरत् की जीवन-व्यापी करुणा से उतनी ही ओत-प्रोत है ।"*[2]

स्वतंत्रता के पूर्व समाज में व्याप्त धर्म का स्वरूप भी कट्टर आचरणों से आवृत्त है। धर्म की रूढता एवं संकीर्णता मानव को मानवीय संवेदनाओं से अलग कर केवल धर्म के आडंबर पर सीमित कर रखती थी

---

1 'युगे-युगे क्रान्ति'- विष्णु प्रभाकर के नाटक -भाग-5 पृ.सं- 311

2'विष्णु प्रभाकर'- सं.डा० विश्वनाथ मिश्र, डा० कृष्णचन्द्रगुप्त- पृ.सं- 14-15

जादू-टोना तथा देवी-देवताओं के अवतार आदि मानव की समझ को बन्दी बना रखता था। उनका नाटक 'बन्दिनी' धर्म की विभिन्न विसंगतियों को उजागर कर स्वतंत्रता पूर्व के धार्मिक स्वरूप का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। इसमें एक साधारण स्त्री को देवी के रूप में प्रतिष्ठित करके धर्मावलंबियों द्वारा उसका संपूर्ण अस्तित्व ही अलौकिक बना दिया जाता है। धार्मिक अंधविश्वास के संबन्ध में विष्णु प्रभाकर का कहना है कि- *"इस नाटक में जो वातावरण निर्मित हुआ है चिन्तन के धरातल पर हम उससे बहुत आगे बढ गए हैं। उस युग में इस प्रकार के अन्धविश्वास बहुत सहज थे।...कस्बों और गांवों में तो आज भी देवी अवतरित होती है ।"*[1]

स्वाधीनता से पहले शिक्षा के व्यापक अवसर उपलब्ध नहीं थे। शिक्षा मध्यवर्गीय परिवारों तक ही सीमित थी।प्रत्येक सजग नागरिक शिक्षा की महत्ता से परिचित था। निम्न वर्ग और ग्रामीण अंचल इससे अनभिज्ञ थे। स्त्रियों के लिए भी शिक्षा केवल अक्षर ज्ञान तकही सीमित था। शिक्षा मात्र पुरुषों का ही अधिकार समझा जाता था। उस युगीन नारियों की शिक्षा के संबन्ध में 'युगे-युगे क्रान्ति' का प्यारेलाल का वक्तव्य है- *"लोग मुझ पर ताने कस रहे हैं कि और भेजो लडकियों को स्कूल और आज़ादी दो घर की स्त्रियों को, और पढाओ नारियों को। कल को देख लेना किसी न किसी के साथ भाग जाएगी ।"*[2]

अतः स्वतंत्रता पूर्व का समय सामाजिक विसंगतियों, परंपरागत

1'बन्दिनी'- विष्णु प्रभाकर (भूमिका)- पृ.सं- 3

2'युगे-युगे क्रान्ति' -विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग - 5 - पृ.सं- 316

कुरीतियों, धर्मान्धता तथा राजनैतिक संघर्ष के मनोभावों और घटनाओं से युक्त था। राष्ट्रीय उत्थान और आज़ादी के व्यापक संघर्ष से समस्त सामाजिक दुर्बलताएँ प्रभावहीन हो गयी और देश की आज़ादी का प्रश्न सबसे प्रमुख बन गया इसका हल तलाशने के लिए संपूर्ण भारतीय जनता अपनी शक्ति तथा सामर्थ्य के अनुरूप प्रयत्नशील हो उठी।

स्वाधीनता की लक्ष्य प्राप्ति के उपरान्त भारत में राजनीति की विद्रूपता का सर्वव्यापी स्वरूप दिन व दिन बढता रहा है। उनके नाटक 'कुहासा और किरण' में समाज में व्याप्त राजनीति के साथ-साथ समाज सेवा और पत्रकारिता के क्षेत्र में फैले भ्रष्टाचार का यथार्थ चित्रण हुआ है। इस नाटक में प्रभा का यह कथन राजनैतिक नेताओं के चरित्र को अनावृत करता है जैसे- *"वैसे आदमी कभी भी एक बार नहीं जन्मता न एक बार मरता ही है। बार-बार जन्मता है, बार-बार मरता है। नेताओं के बारे में यह और भी सत्य है। उनके मरने-जीने का कार्यक्रम तो कभी-कभी एक ही दिन में कई-कई बार दोहराया जाता है।"*[1] -

इस प्रकार स्वातंत्र्योपरान्त राजनैतिक वातावरण स्वार्थ, सत्तालिप्सा, भ्रष्टता एवं अपराध से ओतप्रोत है। असत् आचरण और कूटनीति के घिनौने खेल में छल-प्रपंच की कोई निश्चित सीमा रेखा नहीं है। लक्ष्य पूर्ति के लिए राजनीति का दुरुपयोग दिनोंदिन बढता ही रहा है।

स्वातंत्र्योपरान्त भारतीय सामाजिक ढांचा बदल गया है किन्तु भारतीय परिवेश में जमी परंपराओं की व्यापक जडें अब भी अपने अस्तित्व का

1'कुहासा और किरण'- विष्णु प्रभाकर- पृ.सं- 25

आभास करा देती हैं।बाल-विवाह,बहु-विवाह,विधवा-विवाह,परदा-प्रथा आदि का रूढ स्वरूप तो परिवर्तित हुआ लेकिन पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हुआ है। यही स्थिति जाति-पाँति, छुआ-छूत और ऊँच-नीच का भी है।शहरी सभ्यता में कुछ सीमा तक ये बातें नज़रअंदाज़ कर दी गई है,लेकिन ग्रामीण अंचल में इन्हीं विसंगतियाँ आज भी अपने पूर्व रूप में प्रत्यक्ष दिखाई देती हैं। शहरी सभ्यता की सामाजिक विसंगतियों में पारिवारिक विघटन और दो पीढियों का संघर्ष प्रमुख है, जिनसे पूरा समाज त्रस्त है।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की युवा पीढी पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित होकर इतनी उन्मुक्त हुई कि उन्हें पुरानी पीढी अपने मार्ग का अवरोध प्रतीत होने लगी। क्योंकि जो इनकी प्रगतिशील विचारधारा में रोडे अटकाने के अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं करना चाहती। युवा पीढी और बुजुर्ग पीढी अपने विचारों और विश्वासों पर अडिग रहती हैं। नई पीढी प्रचलित सामाजिक आचार-विचार,परंपरा,और रीति-नीतियों के कटु निन्दक है। विष्णु प्रभाकर के नाटक 'टूटते-परिवेश' में दोनों पीढियों का संघर्ष, टूटन और विघटन का चित्रण हुआ है। इस नाटक में दीप्ति,विवेक,मनीषा,इन्दु आदि युवा वर्ग के प्रतिनिधि है, उन्हे पुरानी पीढी के प्रत्येक कार्य से नफरत है। इस नाटक में विवेक का कहना है कि- *"पापा, आपका ज़माना कभी का बीत गया। अब बीते जीवन की धडकनें सुनने से अच्छा है कि वर्तमान की साँसों की रक्षा की जाए।"*[1]

इस प्रकार 'युगे-युगे क्रान्ति' के अनिरुद्ध, अन्विता, सुरेखा और रीता

1'टूटते परिवेश' - विष्णु प्रभाकर- पृ.सं- 21

भी आधुनिक युवा पीढी के प्रतिनिधि है जो परंपरागत संस्कारों को तिलांजलि देकर पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण करने के आकांक्षी है। नयी पीढी पूरी तरह मुक्त आचरण की पक्षपाती है। उनके इस प्रकार के विचारों से सामाजिक वातावरण का यथार्थ दृश्य परिलक्षित होता है। रीता का कथन इसका स्पष्ट उदाहरण है - *"आपके विचार कितने दकियानूसी हैं।.....मुझे अनिरुद्ध अच्छे लगते है। मेरा मन उनके साथ रहने को करता है। मैं रहती हूँ। जब तक हम एक दूसरे को प्रेम कर सकेंगे, रहेंगे। नहीं कर सकेंगे तो अलग हो जायेंगे ।"*[1]

नई पीढी के लिए अपना वैयक्तिक सुख ही सर्वोपरि है। उनकी अपनी इच्छाओं तथा आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए वे सत्-असत् तथा सही-गलत आदि की चिन्ता न करते हुए अपने लक्ष्य की ओर बढते हैं। 'श्वेतकमल' के पूनम,नीलिमा, उषा जैसे चरित्र इस प्रकार अपने भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए कुछ भी करने को तैयार होते हैं जैसे- *"आदर्श और व्यवार में बडा अन्तर होता है। व्यवहार में समझौता करना ही पडता है। समझौता झुकना नहीं है, परिस्थिति का लाभ उठाना है। आदर्श तो लिखकर दीवारों पर टांगे जा सकते हैं स्कूल कॉलेजों में पढाये जा सकते हैं, मंचों पर भाषण देने के काम आ सकते हैं, पर उनके सहारे जिया नहीं जा सकता ।"*[2]

वर्तमान समाज में वैवाहिक संबन्धों की महत्ता नवीन समीकरणो के साथ स्थापित होता है। विवाह एक सामाजिक बन्धन और दायित्व है, जिसमें प्रत्येक

---

1 'युगे-युगे क्रान्ति'- - विष्णु प्रभाकर के नाटक- भाग-5 पृ.सं- 331

2 'श्वेत कमल' - विष्णु प्रभाकर- पृ.सं- 78

स्त्री-पुरुष बंधकर नये संबन्धों को गति प्रदान करता है।लेकिन स्वतंत्रता के बाद पश्चिमी सभ्यता की स्वच्छन्दता का प्रभाव युवा वर्ग में स्थापित हुआ। इसके फलस्वरूप आज विवाह माता-पिता की इच्छाओं,जाति-पाँति, धर्म और कुल के बंधनों से मुक्त होकर उनकी व्यक्तिगत इच्छाओं के अनुरूप होने लगे है। प्रेम-विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह का प्रचलन सामान्य हो गए है। 'युगे-युगे क्रान्ति' की ज्योत्स्ना अपने सहपाठी से कोर्ट में जाकर विवाह करके अपने पिता को वर की तलाश तथा दहेज की समस्या से मुक्त करती है। उसका कहना है - *"मैं भी इन्सान हूँ। मेरी कामनाएँ हैं, तमन्नाएँ हैं, आरजूऐ हैं। उन्हें पूरा करने का मेरा जन्मसिद्ध अधिकार हैं। इस अधिकार को मैं किसी धर्म के नाम पर नहीं छोड सकती। ऐसा करना अपने को धोखा देना होगा ।"*[1]

'टूटते-परिवेश' की मनीषा और दीप्ति भी विवाह के लिए माता-पिता की अनुमति के बिना अपने मनपसन्द जीवनसाथी का चुनाव करती है। 'युगे-युगे क्रान्ति' का अनिरुद्ध और रीता वैवाविक सत्ता को ही नकार कर उन्मुक्त जीवन जीने का समर्थक हैं। प्रेम संबन्धों को वह किसी बंधन में न बांधकर इसका उन्मुत्त आनंद उठाने के तत्पर है- *"विवाह के मन्त्र या मजिस्ट्रेट के सर्टिफिकेट से स्त्री-पुरुषों के संबन्धों में कोई अन्तर नहीं पडता। और यदि आवश्यक भी हो तो यह काम बुढापे में हो सकता है।....जब तक हम युवा हैं, हमें प्रेम चाहिए। प्रेम के लिए सर्टिफिकेट की आवश्यकता नहीं होती। प्रेम मुक्ति में है, बन्धन में नहीं। विवाह*

---

1 'युगे-युगे क्रान्ति' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग-5 पृ.सं- 337

स्त्री की गुलामी का पट्टा है, इसलिए बन्धन है ।"[1]

इस प्रकार बिना विवाह के पुरुषों के साथ उन्मुक्त जीवन-यापन करती टगर आधुनिक समाज के स्वच्छन्द मानसिकता को उजागर करती है।

शिक्षा स्वतंत्र भारत की एक अनिवार्य आवश्यकता है,परन्तु नगरों और महानगरों में ही शिक्षा की सुविधायें उपलब्ध है। गाँव तथा कस्बे शिक्षा से अनभिज्ञ है। सदियों से शिक्षा के अभाव में अज्ञान के अंधकार में जीते ग्रामीण तथा पिछडे प्रदेशों में अभी तक शिक्षा का पर्याप्त प्रचार-प्रसार नहीं हुआ। शहरों में शिक्षा की सुव्यवस्था युवा-पीढी को प्रगतिशील और आधुनिक विचारों से आवृत्त करती है। लडकियों में भी शिक्षा का प्रभावी असर पडा।सदियों से आश्रित नारी को शिक्षा से स्वावलंबन तथा पुरुष के समकक्ष खडा करने की शक्ति प्रदान किया जाता। शिक्षा के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व का भी विकास हुआ है।वर्तमान संदर्भ में शिक्षा का पारंपरिक रूप परिवर्तित हुआ और व्यावहारिक तथा व्यावसायिक शिक्षा को अधिक महत्व दिया जाने लगा,क्योंकि आज शिक्षा के अनुरूप रोज़गार के अवसर नहीं रहे थे।'टूटते-परिवेश' का विवेक बेरोज़गारी से त्रस्त है। उनकी पीडा संपूर्ण बेरेजगार पीढी की दशा को व्यक्त करता है जैसे-*"आज का युवक अर्जियाँ लिखते-लिखते मशीन बन गया है,वह मशीन जिसमें कोई अहसास ही नहीं होता।"*[2]

नारी-स्वतंत्रता स्वातंत्र्योपरान्त भारतीय समाज पर उभरा समसामयिक विषय है। यह आधुनिक समाज की ज्वलंत समस्या है। पौराणिक युग

1'युगे-युगे क्रान्ति' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग-5 पृ.स. 331

2 'टूटते परिवेश ' - विष्णु प्रभाकर- पृ.सं- 12

की वंदनीय, ऐतिहासिक काल की पूजनीय और आधुनिक युग की सम्माननीय संबोधनों से युक्त नारी का वास्तविक स्वरूप और कुछ है। शिक्षा और स्वावलंबन के पश्चात् भी नारी सहज कोमल मनोभावों की आधारभूमि पर खडी नारी हमेशा अपनी इन्हीं दुर्बलताओं के कारण छली जाती है। लडकियों की शिक्षा के फलस्वरूप उनमें नयी सोच तथा साहस का संचालन हुआ है। इसी शिक्षा के कारण प्रत्येक परिस्थिति का वे पूरी सबलता के साथ सामना करती है। 'श्वेतकमल','डाक्टर','अब और नहीं' नाटकों में विष्णु प्रभाकर ने नारी स्वतंत्रता की आवाज़ बुलन्द करती है ।

गाँव के रहन-सहन, नगर की जीवन शैली तथा तडक-भडक और महानगरों की आडंबर युक्त प्रवृत्ति को वे अपने नाटकों में पूरी तीव्रता से चित्रित करते हैं।'युगे-युगे क्रान्ति'तथा 'टगर' में गाँव का वातावरण उभरता है तो 'टूटते परिवेश',कुहासा और किरण,अब और नहीं आदि नाटकों का वातावरण किसी सभ्य शहर का है।

विष्णु प्रबाकर पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों में देश काल और वातावरण के साथ तत्कालीन समय के भौगैलिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिदृश्यों को भी पूरी संवेदना के साथ प्रस्तुत करते हैं।

उनका नाटक 'सत्ता के आर-पार' मूलतः राजनैतिक सत्ता संघर्ष पर आधारित है। इसलिए उस समय विशेष की राजनीतिक अवस्था का खुला प्रमाण नाटक में उपलब्ध है। प्रागैतिहासिक काल की राजनीतिक व्यवस्था के कुछ उद्‌गार देखने को मिलता है जैसे-

"शरणागत को शरण देना राजा का धर्म है"।"[1]

"खण्डित सत्ता अशान्ति और अराजकता को जन्म देती है।"[2]

"शासकों में कोई छोटा-बडा नहीं होता ।"[3]

"छोटे-छोटे राजा निरन्तर एक-दूसरे पर आक्रमण करके महानाश की विभीषिका उत्पन्न करते रहते हैं। ।"[4]

सत्ता की स्थापना के साथ-साथ उस युग में धर्म, अध्यात्म आदि का यथार्थपरक चित्रण है। जहाँ सत्ता की प्रकृति ईर्ष्या,द्वेष और युद्ध को जन्म देती है, वहाँ धर्म तथा अध्यात्म की अनुभूति प्रेम सेवा तथा शान्ति की स्थापना करते है। प्रागैतिहासिक काल में धर्म का स्थान सर्वोपरि था। इस नाटक में हर चरित्र का अपना-अपना वैयक्तिक धर्म है। महाराजा भरत का धर्म चक्रवर्तित्व का लक्ष्य पूर्ण करना है तो महाराजा बाहुबली का धर्म अपनी सत्ता की रक्षा करनी है। महामंत्री का धर्म राजा को अधर्म से विमुख करना है। धर्म की वास्तविकता पर महादेवी की व्याख्या इस प्रकार है कि - *"न किसी से घृणा न किसी से द्वेष,तो फिर युद्ध क्यों? क्या वह मोह नहीं है,जो कभी धर्म की रक्षा के रूप में और कभी अधिकार की रक्षा*

1'सत्ता के आर-पार ' -विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग-4 पृ.सं- 398

2'सत्ता के आर-पार ' -विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग-4 पृ.सं- 399

3'सत्ता के आर-पार ' -विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग-4 पृ.सं- 404

4'सत्ता के आर-पार ' -विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग-4 पृ.सं- 395

के रूप में उभरता रहता है।[1]

अपने स्वार्थ और सुविधा के अनुरूप धर्म को ग्रहण करने की मानसिकता यहाँ दृष्टिगोचर है। धर्म का शाश्वत स्वरूप इस नाटक के अंत में देखने को मिलता है। जब दोनों शक्तियाँ अपने अहंकार से मुक्त होकर यानि 'मैं' की सत्ता से निकलकर समष्टिगत विचारों में समाहित हो जाती है तब आकाशवाणी से प्रसारित वचन धर्म के सार्थक स्वरूप का उद्‌घाटन करता है जैसे- *"अहंकार से मुक्त होकर ही तप पूर्ण होता है और तप के चरणों में झुककर ही सत्ता पवित्र होती।"*[2]

इस नाटक में सामाजिक वातावरण अपनी तत्कालीन व्यवस्था का स्पष्ट परिचय देता है। तीर्थंकर ऋषभवेद द्वारा स्थापित सुदृढ सामाजिक व्यवस्था को उनके पुत्र महाराज भरत और महाराज बाहुबली नवीन आयामों से संपन्न करते हैं। किन्तु सत्ता-मोह में पडकर जब वे दोनों एक दूसरे को पराजित करने के लिए प्रयास करते हैं तो समाज में मानवीय मूल्यों के अवमूल्यन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।नाटक में जननेता के संवाद तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था को प्रस्तुत करते हैं- *"भगवान आदिनाथ ने नये समाज की संरचना की,मनुष्य को कर्म के द्वारा जीने की कला सिखायी,धर्म का वास्तविक रूप समझाया,नाना ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल से परिचित कराया,लेकिन जो आदिब्रह्मा हैं,तीर्थंकर हैं उन्हीं के दो पुत्र आज युद्ध के लिए सन्नद्ध हैं। उस युद्ध को न रोका गया तो बहुत शीघ्र धरती*

1'सत्ता के आर-पार ' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग-4 पृ.सं- 428

2'सत्ता के आर-पार ' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग-4 पृ.सं- 436

माँ रक्त-स्नान कर उठेंगी।[1]

महानाश से हटकर, रचनात्मक कार्यों की ओर सामान्यवर्ग का अधिक रुझान है। भरत और बाहुबली दोनों राजाओं का जनप्रतिनिधि के प्रस्ताव को स्वीकार करना राजा और जनता के मधुर संबन्ध को व्यक्त करता है।

विष्णु प्रभाकर का ऐतिहासिक नाटक 'नव प्रभात' का वातावरण कलिंग के भीषण युद्ध और महानाश से ओतप्रोत है। कलिंग के अखंड,अविजित और अपार सैन्य शक्ति के संबन्ध में सम्राट् अशोक कहते है वि *"मैंने कलिंग को पराजित करने का निश्चय किया है। उस कलिंग को जिसने शक्तिशाली नंदों की शक्ति को खण्ड-खण्ड कर दिया था जिसने मेरे प्रतापी पिता और पितामह के ,सामने नतमस्तक होने से इन्कार कर दिया था, जिसने सोलह राज्यों को उखाड फेंकलेवाले महामति चाणक्य की बुद्धि को चुनौती दी थी, उसी कलिंग को मैं मौर्य साम्राज्ट में लय कर देना चाहता था। उसके पराभव के बिना मौर्य साम्राज्य का एकीकरण असंभव था इसी बात के लिए मैंने उसके वैभव को धूल में मिला दिया है। उसके शरीर को खण्ड-खण्ड कर डाला।*"[2] यह कथन एक ओर कलिंग साम्राज्य का संपूर्ण अस्तित्व स्थापित करता है तो दूसरी ओर तत्कालीन राजनीतिक सोच को भी उजागर करता है।

अशोक की राजधानी में जगह-जगह स्थापित मठ,धर्मस्थल और वहाँ आध्यात्मज्ञान के प्रचार-प्रसार में तन-मन से लगे हुए बौद्ध भिक्षुओं का वर्णन करते

1'सत्ता के आर-पार ' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग-4 पृ.सं- 421

2'नवप्रभात ' - विष्णु प्रभाकर -पृ.सं- 60

हुए विष्णु प्रभाकर ने बौद्धकालीन वातावरण की सृष्टि की है।

सामाजिक परिवेश युद्ध तथा संघर्ष के आवेश में निष्प्राण-सा हो गया है। युद्ध से विरक्ति प्रत्येक सामाजिक प्राणी की प्रमुख सोच है। युद्ध के बाद की दारुण स्थिति समाज के दुःख एवं संताप को उजागर करती है। भिक्षुणी के वचन तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था को स्पष्ट करती है कि- *"मैं कलिंग की आहत आत्मा की प्रतिनिधि हूँ, मुझसे आज वीणा के मधुर संगीत की आशा नहीं की जा सकती। आप तो नारी हैं। आप मेरे साथ चलिए। मैं आप को दिखाऊँगी कि कलिंग के हर नगर और गाँव में ऐसी असंख्य नारियाँ हैं जो जीते जी मौन हो गई हैं, जिन की आत्मा झुलस गई है। सम्राट् क्या ही ! अच्छा हो कि आप उनके सिर काटकर उन्हें इस यातना से मुक्ति दें।"*[1]

उनके और एक नाटक 'गान्धार की भिक्षुणी' अपने देश काल और वातावरण की जीवन्त कृति है। उस ऐतिहासिक कथ्य का स्थान गान्धार है। उस नाटक की कथा भारत के प्राचीन काल के अन्तिम दौर की कथा है जिसे वाकाटक गुप्त-युग की संज्ञा दी गई है। यह नाटक मध्यभारत में हूणों के अन्याय एवं अत्याचार की कथा है। आनन्दी द्वारा मालव प्रदेश की महत्ता और गुणगान इस देश की स्थिति को व्यक्त करते है जैसे- *"मालव नागरिकों ! हमें बहुत खुशी है कि आप लोग अपने देश को प्यार करते हैं। आपका यह सुन्दर प्रदेश यमुना, नर्मदा, सरस्वती और क्षिप्रा जैसी पवित्र नदियों से सिंचित है। सहस्रार्जुन और परशुराम जैसे महावीरों की क्रीडा-भूमि रहा है यह प्रदेश । इसी प्रदेश में कृष्ण-बलराम ने*

1'नव प्रभात' - विष्णु प्रभाकर पृ.सं-36

शिक्षा पायी थी। इसी प्रदेश में कालिदास की कालजयी कविता ने जन्म लिया। यहीं उदयन और वासवदत्ता की प्रणय-कथा पनपी और यहीं पर उत्पन्न हुआ वह महावीर जिसने शकों की बीजशेष करके शकारि की उपाधि पायी। आज फिर आपके सामने वही स्थिति पैदा हो गई है जो छः सौ वर्ष पूर्व उस मालव-वीर के सामने पैदा हो गयी थी। उस समय इस प्रदेश को शकों ने अपने पैरों से रौंद डाला था, आज हूण इसे रौंद रहे हैं।[1]

इस कथन से मालव प्रदेश की संपूर्ण गौरव गाथा तथा राजनीतिक संकट का पूरा चित्र व्यक्त हो जाता है।राजनीतिक संकट का प्रमुख कारण परिव्राजक महाराज है जो हूण शक्ति से पराधीन होकर भोग-विलास में मग्न है।

इस नाटक में तत्कालीन राजनीति की शुष्कता,नृशंसता तथा अमानवता आदि के मध्य सामाजिक तथा सांस्कृतिक वातावरण का प्रामाणिक रूप दृष्टिगोचर होता है। इसके संबन्ध में यशोधर्मन का वक्तव्य है- *"हूणों की राजनीतिक शक्ति तोडकर ही उन्हें समाप्त नहीं किया जा सकता। उन्हें अपने में समा लेना ही उन्हें समाप्त करने की सही राह है। यही अब तक होता आया है। लेकिन इधर जो आर्य पण्डितों ने सवर्ण विवाह और रक्तशुद्धि का सवाल उठाया है उससे भारत कमज़ोर होगा। वे चाहते हैं कि मैं उन्हें वचन दूँ कि रक्त की मिलावट नहीं होने दूँगा, पर मैं ऐसा नहीं कर सकूँगा, नहीं करूँगा।*[2]

यशोधर्मन द्वारा 'वंश परंपरा' और 'सवर्ण विवाह' का विरोध उनकी

---

1 'गान्धार की भिक्षुणी' विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग 5- पृ.सं- 91

2 'गान्धार की भिक्षुणी' विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग 5- पृ.सं- 138

दूरदर्शिता को व्यक्त करता है।

बौद्ध-धर्म उस काल की सर्वव्यापी भावना थी। बौद्ध धर्म के कल्याणकारी विचारों का प्रचार-प्रसार इस नाटक में पूर्ण आस्था के साथ विद्यमान है। भिक्षुणी आनन्दी तन-मन से तथागत के उच्च विचारों से जुडी है।

'केरल का क्रान्तिकारी' ऐतिहासिक चरित्र वेलुत्तम्पी दलवा और ऐतिहासिक घटना पर आधारित नाटक है। इस नाटक की कथा का स्थल केरल प्रदेश का तिरुवितांकुर राज्य है। नाटक की घटना यहीं होती है। कुछ दृश्य इसके आसपास के इलाके कोच्ची, मलाबार आदि के हैं। नाटक में केरल की पृष्ठभूमि को विष्णु प्रभाकर बडी तन्मयता से प्रस्तुत करते है जैसे- *"नारीकेल-कुंजों से आवेष्ठित हमारी यह शस्य-श्यामला धरती, सागर की उत्ताल तरंगें जिसकी रक्षा करती हैं, ऐसा हमारा यह शान्त, सौम्य तपोवन सरीखा प्रदेश, यह सब विदेशियों के पैरों के नीचे रौंद दिया जाएगा ।"*[1]

यह नाटक अंग्रेज़ी शासन व्यवस्था से मुक्ति की आरंभिक पहल है। अंग्रेजों की अनीति से केरल में विद्रोह उत्पन्न हुआ, जिसका नेतृच्व वेलुत्तम्पी दलवा करते है।

वेलुत्तम्पी के शासन काल में हुए विकासकार्यों का संपूर्ण विवरण इस नाटक में प्राप्त होता है। अंग्रेज़ी शासन व्यवस्था के दबाव के बावजूद भी, आर्थिक अभावों से युक्त राज्य में यथोचित विकास कार्य संपन्न हुए जैसे- *"समृद्धि भी दी। वाणिज्य केन्द्र आलपुरा को नया रूप देकर विकसित किया। चंगनाशेरी और*

---

1 'केरल का क्रान्तिकारी'- विष्णु प्रभाकर- पृ.स- 35

आलङ्‌डाड़ जैसे नगरों में बाज़ारों की स्थापना की। नई सडकें बनवाई। पुरानी टीक कीं। उन सुधारों का ही परिणाम है कि सरकार का खजाना भरा हुआ है। पुराने कर्ज चुका दिये गये हैं ।"[1]

इस प्रकार उनकी सभी नाटकों में तद्युगीन वातावरण का प्रभावपूर्ण अंकन हुआ है।

भाषा :-

नाटक साहित्य की ऐसी विधा है जिसका संबन्ध समाज के सभी वर्गों से है। शिक्षित -अशिक्षित, सभी लोग नाटक का आनन्द लेने के अधिकारी है। साहित्य तो भाषा के माध्यम से संप्रेषित होता है और भाषा व्यक्ति को समाज से जोडकर उसे समाजिक बनाती है। भाषा नाटक की ज़बान होती है। नाटककार अपने पात्रों के माध्यम से बोलता है और सीधे नहीं बोलता है। नाटक की सफलता भाषा की सहजता पर आधारित है। जिन नाटकों की भाषा साहित्यिक और क्लिष्ट होती है वे कभी सफल नहीं होते। नाटक की भाषा के संबन्ध में विष्णु प्रभाकर का कहना है कि- *"हिन्दी में नाटकों के अभाव का कारण यह भी है कि बोलचाल की भाषा में नाटक नहीं लिखे जाते। उनकी भाषा साहित्यिक होती है। जब तक हम उस भाषा पर ज़ोर देते रहेंगे हमारे नाटक लोकप्रिय नहीं होंगे...... जिस दिन हिन्दी के दो रुपों- बोलचाल की हिन्दी तथा साहित्यिक हिन्दी का अन्तर मिटेगा उसी दिन हमारा नाटक साहित्य पनपेगा।"*[2] नाटक की भाषा सदैव सहज और

---

1 'केरल का क्रान्तिकारी'- विष्णु प्रभाकर- पृ.सं- 36-37

2 'विष्णु प्रभाकर' - सं. डा० विश्वनाथ मिश्र,डा० कृष्णचन्द्र गुप्त- पृ.सं - 306

स्वाभाविक होनी चाहिए जिसमें रोचकता,प्रसंगानुकूलता,अनर्गल प्रवाह, व्यंग्य-विनोद,क्रोध,आवेश आदि हो। भाषा में समाहित इन्हीं विशेषतायें भाषा को प्रभावपूर्ण बनाती है। भाषा में सहजता और स्वाभाविकता लाने के लिए देशकाल के अनुरूप भाषा और वातावरण के अनुरूप कहावतों,मुहावरों और उक्तियों का प्रयोह करना चाहिए। विपयानुकूल और पात्रानुकूल भाषा ही स्वाभाविक प्रतीत होती है। परिस्थितियों तथा घटनाओं के अनुसार भाषा का प्रयोग इसकी सार्थकता प्रकट करता है। विष्णु प्रभाकर के अनुसार- *"भाषा न कठिन होती है न सरल वह सहज होती है।अर्थात् विषय व परिस्थिति के अनुरूप उसमें अंग्रेज़ी उर्दू या ग्रामों में प्रचलित शब्द निश्चय ही आ सकते है लेकिन जानबूझकर ऐसा, करना कृति के प्रभाव को नष्ट करना ही होगा।"*[1] वर्तमान पीढी के नाटककार होने के कारण विष्णु प्रभाकर भावाभिव्यक्ति के अनुरूप भाषा का चयन करते है। उनके नाटको में प्रयुक्त भाषा आमजनता द्वारा बोली-सुनी जानेवाली भाषा है। वे अपने नाटकों के कथ्य-विषय, चरित्र और वातावरण के अनुरूप भाषा का प्रयोग करते हैं। पात्रों के अन्तःस्थल के गहरे संघर्ष और उसके उतार-चढाव की सही अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से होती है। तभी दर्शक या पाठक पात्रों की अन्दरूनी तकलीफ की सही माइने से अवगत हो जाते है।अतः नाटककार जिस भाषा का प्रयोग करते है वह भाषा पात्रों की मानसिकता का पूरा ब्यौरा प्रस्तुत करनेवाली भाषा होनी चाहिए।

समसामयिक समस्याओं पर आधारित विष्णु प्रभाकर के नाटक 'डाक्टर' में प्रयुक्त भाषा नायिका डा० अनीला के विभिन्न मनोभावों को उद्घाटित

---

1 'मेरे साक्षात्कार' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 133-134

करने लायक है। दो विपरीत मनःस्थितियों के बीच में उलझी अनीला की असमंजसता भाषा के माध्यम से प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करते है। डा० अनीला एक डाक्टर होने के साथ-साथ अतीत के अपमान को भोगती एक साधारण नारी भी है। केशव की भाषा डाक्टर और नारी के इस अन्तर्द्वन्द्व को इस प्रकार व्यक्त करती है कि-

"तुम तिल-तिलकर जलती हो, तुम्हारे हृदय में टीसें उठती है, तुम्हारी छाती आहों से छलनी हो रही है और इस सत्य को छिपाने के लिए तुम अनथक प्रयत्न करती हो।" [1]

अनीला की भाषा में उसका अन्तःसंघर्ष स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है जैसे-

"किसी तरह मैं इस भूचाल से बच सकती। मैं यह आपरेशन करना नहीं चाहती। क्योंकि मुझे डर है कि मैं उसे मार डालूँगी।" [2]

'डाक्टर' के समान 'टगर' भी मनोवैज्ञानिक और नारी प्रधान नाटक होने के कारण इसकी भाषा नाटकीयता से युक्त है। पति परित्यक्त तथा परिस्थितिवश पतन की ओर उन्मुख नारी टगर की भाषा में एक ओर अलगाव की पीडा है तो दूसरी ओर आधुनिकता के उन्मुक्त तेवर भी परिलक्षित है। पाश्चात्य सभ्यता में डूबे चरित्र उच्छृंखलतापूर्ण भाषा का प्रयोग करते है। नाटक की नायिका टगर सामाजिक व्यवहारों के विरुद्ध व्यवहार करती है। उसकी भाषा इस बात का

---

1 'डाक्टर' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 102

2 'डाक्टर' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 63-64

द्योतक है जैसे-

"खुदकुशी कर ली ! बुज़दिल कहीं की ! खुदकुशी करने की क्या ज़रूरत थी ? मेरी तरह अपने को बेच देती और दोहरा लाभ उठाती। नारी किसी न किसी रूप में बिकती ही है।" [1]

युगीन परिस्थितियों के बदलने के अनुसार कथ्य और शिल्प का तेवर बदलता है और भाषा का रूप भी बदलता है।

'अब और नहीं' की नायिका शान्ता अपने स्वतंत्र अस्तित्व की तलाश में आन्तरिक द्वन्द्व में उलझती, है वह यथार्थ से भागकर कल्पना जगत में विचरण करती है।उसकी भाषा सामान्य और सहज न होकर पूर्ण रूप से काल्पनिक और असहज लगती है जो उसकी विक्षिप्त मानसिकता को उजागर करती है-

"जब चित्र बनाती हूँ तो जैसे अभीष्ट पथ पर आगे बढ जाती हूँ। अपने शयनकक्ष में खिडकी बन्द करके जब सितार पर राग बागेसरी बजाती हूँ, तो तमसा जैसे मेरे पास चली आती है। उसकी कल-कल छल-छल मैं स्पष्ट सुन सकती हूँ। मिलन का ज्वार तमसा के वक्ष से मेरे वक्ष में आकार धक्का मारता है। मुझे वहाँ जाना है जहाँ तमसा पहाड से उतरकर पहाडी गुफा में खो जाती है।" [2]

शान्ता की भाषा उसकी मानसिक अस्थिरता को प्रकट करती है।. वीरेन्द्र की भाषा उनके अधिनायकवादी प्रवृत्ति का द्योतक है।मंजरी की भाषा पुरुषमेधा समाज की दुर्व्यवस्था पर चोट करनेवाली है जैसे-

---

1 'टगर' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 34

2 'अब और नहीं - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 80

"पुरुष अपने खोल के भीतर सदा सामन्तवादी रहता है, निर्दयी, अधिनायक, क्रूर और उदार।"[1]

आज के नाटक की भाषा न किताबी भाषा है न साहित्यिक सौन्दर्य से युक्त। उसमें ज़िन्दगी का खुरदरापन और परिस्थितियों का नुकीलापन अधिक आ गया है। वह आज की बेतुकी स्थितियों की सनक,विकृति आदि से रंग गई है। विष्णु प्राकार नाटक 'श्वेतकमल' की भाषा परिस्थितियों को उजागर करती हुई कभी-कभी अत्यन्त क्रूर और जटिल हो गई है। नाटक की नायिका बिन्दु का आदर्श रूप और उसका बार-बार नौकरी छोड देने की प्रवृत्ति को देखकर उसकी माँ कटु भाषा का प्रयोग करती है-

"अभागे नहीं, आदमखोर कहो ! बचपन में ही बाप और भाई दोनों को खा गए और अब मुझे निचोड रहे हो। यह रोज़-रोज़ फैशन बदलने का हौसला निचोडना नहीं. तो और क्या है ?.....शुक्र मनाओं जो बिन्दु है तो बेलबाटम भी नसीब है, नहीं तो नंगे घूमना पडता.....।"[2]

पूनम और उषा की भाषा परिस्थिति का यथार्थ चित्र सामने लाती है जैसे-

"आज ज़माने में अन्दर की आवाज़ हो या जिस्म हो, सब बाजार की जिन्स बनकर रह गए हैं। सबका सौदा होता है और जब कोई चीज़ बाज़ार में है तो सौदा होगा ही।"[3]

---

1 'अब और नहीं' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 56

2 'श्वेत कमल' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 31

3 'श्वेत कमल' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 29

लेकिन पितृविहीन परिवार के एकमात्र सहारा बिन्दु प्रतिकूल परिस्थिति में भी आदर्श से युक्त भाषा बोलती है-

"मैं अपने मन, शरीर और चेतना को खण्ड-खण्ड करके किसी के लिए खुशियाँ नहीं खरीदूँगी, नहीं खरीदूँगी।"[1]

इसके अतिरिक्त उनके नाटक 'कुहासा और किरण' में भ्रष्टता, अवसरवादिता,रिश्वत जैसे घृणित व्यवहारों के लिए आवेश से युक्त भाषा का प्रयोग किया गया है। इसमें भ्रष्ट चरित्रों की कुव्यवस्था और कूटनीति के विरुद्ध विद्रोह करनेवाली प्रभा की भाषा इस प्रकार है कि-

"यह खेल बहुत दिनों तक नहीं खेला जा सकता । मैं देखूँगी आप कब तक दाँव जीतते हैं ? कब तक किसी मासूम के भाग्य के साथ खेलते है। ?"[2]

हरेक युग की भाषा अपने पूर्ववर्ती युग की भाषा की अपेक्षा एक नयी जीवन दृष्टि और प्रासंगिकता को लेकर आता है तो उसमें पुराने युग की भाषिक रूढियाँ असंगत लगने लगती है। नए नाटककार अपनी बदलती मानसिकता प्रस्तुत करने के लिए पुराने भाषिक ढांचे को तोडकर एक नई भाषा की तलाश करते है। विष्णु प्रभाकर के नाटक 'युगे-युगे क्रान्ति' सन् 1875 से लेकर अब तक के समय को प्रतिपादित करता है। भाषा का क्रमिक विकास इसमें स्पष्ट दृष्टिगोचर है। इसमें प्रत्येक युग की अपनी-अपनी भाषा है और उस युग विशेष में भी नये और पुराने चरित्रों की अपनी-अपनी भाषा शैली है। इसमें सन 1875 का प्रतिनिधित्व

1'श्वेत कमल' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 38

2'कुहासा और किरण' - विष्णु प्रभाकर पृ.सं. 74-75

करनेवाला कल्याणसिंह अपने बेटे प्यारेलाल की एक विधवा से शादी करने का निश्चय सुनकर कटु भाषा में कहता है कि-

"जब तक बाप ज़िन्दा है बेटा कभी जवान नहीं होता। मैं आज इसकी जान निकाल दूँगा। यह ऐसा नहीं कर सकता।"[1]

सन् 1901 का प्रतिनिधि प्यारेलाल की भी अपनी भाषा शैली है। वह आक्रोश भरे शब्दों में उत्तर देता है की -

"आप मुझे जान से मार सकते हैं लेकिन जब तक मैं ज़िन्दा हूँ मैं अपना वचन वापस नहीं लूँगा। विवाह करूँगा तो उसी से करूँगा, मर गया तो दूसरी बात है।"[2]

उनके नाटक 'टूटते परिवेश' में आधुनिक समय में स्थापित नवीन और पुरातन मूल्यों के बीच उपजे संघर्ष और टूटन का चित्रण है। पुरानी पीढी भारतीय संस्कृति और सभ्यता का प्रतिनिधित्व करती है तो युवा बीढी पाश्चात्य सभ्यता की उनमुक्तता और वैयक्तिक स्वतंत्रता का प्रतिनिधित्व करती है। इसलिए दोनों पीढियों की अपनी-अपनी भाषा है।

इसमें बुजुर्ग पीढी के प्रतिनिधि विश्वजीत घर छोडकर चली जाती अपनी संतानों की प्रवृत्ति से पीडित है। उनकी भाषा से यह व्यक्त होता है जैसे-

"क्या हो गया है इस दुनिया को सब अकेले- अकेले अपने लिए ही जीना चाहते हैं। दूसरे की किसी को चिन्ता ही नहीं रह गई है। एक हमारा

1 'युगे-युगे क्रान्ति' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग 5 - पृ.सं - 308

2 'युगे-युगे क्रान्ति' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग 5 - पृ.सं -308

ज़माना था कि बडों की इज़ाज़त के बिना कुछ कर ही नहीं सकते थे।"[1]

नई पीढी मौजूदा व्यवस्था के विसंगति के प्रति अधिक आक्रामक हो उठी है। युवा पीढी के प्रतिनिधि दीप्ति और विवेक की भाषा उनके स्वतंत्र आधिकार की भाषा है। उनकी भाषा में युवा आक्रोश है जैसे-

"कह तो दिया कि अब और अर्जियाँ नहीं लिखूँगा। विद्रोह करूँगा। उनका साथ दूँगा जो सब कुछ को विध्वंस करना चाहते हैं। बिना विध्वंस किये नव-विर्माण नहीं हो सकता।"[2] इन नाटकों के अतिरिक्त विष्णु प्रभाकर ऐतिहासिक नाटक लिखकर सुदूर अतीत का एक आंखों देखा मूर्त रूप भाषा के माध्यम से पाठक या दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास करते है। उनके ऐतिहासिक नाटक 'नव प्रभात' में ऐतिहासिकता का वातावरण प्रस्तुत करने के लिए भाषा का परिष्कृत एवं शुद्धरूप अपनाया गया है। ऐतिहासिक चरित्र सम्राट् अशोक और अन्य सभी चरित्र राजवंश से संबद्ध होने के कारण उनकी भाषा राजकुल की मर्यादा के अनुकूल संस्कृतनिष्ठ है। अशोक की भाषा सम्राट् की गरिमामय भाषा है विसमें उनके अहं और स्वाभिमान परिलक्षित होता है-

"संघमित्रा ! अशोक शक्ति में विश्वास करता है। दया और करुणा को वह साम्राज्य का शत्रु मानता है।"[3]

इस प्रकार कलिंग कुमार की भाषा एक ओर पूर्ण स्वाभिमानयुक्त भाषा

1'टूटते परिवेश' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 21

2'टूटते परिवेश' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 40

3 'नव प्रभात' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 40

है तो दूसरी ओर प्रेम जैसे मनोभावों को भी प्रकट करता है-

"सुनो देवी संघमित्रा, मैं तुम से प्रेम करता हूँ। अपने जीवन से बढकर प्रेम करता हूँ। तुमसे भी बढकर मैं अपने देश से प्रेम करता हूँ। उससे भी अधिक मैं मनुष्य से प्रेम करता हूँ, वही मनुष्य आज सोया हुआ है। उसे जगाने के लिए अभी और बलिदान की ज़रूरत ...है।"[1]

कुमार की ओजस्वी भाषा एवं आत्मबलिदान से अशोक हिंसा से अहिंसा तथा विनाश से निर्माण की ओर उन्मुख हो उठता है।

उनका नाटक 'सत्ता के आर-पार' महाराजा भरत और महाराजा बाहुबली के सत्ता संघर्ष पर आधारित है। इसमें प्रागैतिहासिक काल के राजवंशों के चरित्रों, व्यवहारों,परिस्थितियों और घटनाओं को प्रस्तुत करने के कारण भाषा का वैभवशाली एवं कुलीन स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। इस नाटक में चक्रवर्तित्व की विवशता में उलझे भरत धर्म की भाषा बोलता है जैसे-

"माँ तुम्हारा आदेश मेरे लिए ब्रह्मवाक्य है। लेकिन चक्रवर्ती पद पाना मेरे लिए धर्म बन गया है। छः खण्डों के नरेश मेरे साथ है। मात्र बाहुबली....।"[2]

लेकिन राजा बाहुबली अपनी स्वतंत्र सत्ता और स्वाभिमान की भाषा बोलते है-

"जो दण्ड का भय दिखाकर प्रणाम करवाना चाहता है वह अग्रज नहीं हो

---

1 'नव प्रभात' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 96

2 'सत्ता के आर-पार' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग 4 - पृ.सं - 419

सकता। वह सत्ताधारी है और बाहुबली बडे भाई को प्रणाम कर सकता है पर सत्ताधारी को नहीं ।"[1]

महादेवी की भाषा में प्रेम, वात्सल्य,आत्मद्वन्द्व और खुशी के साथ तेज भी है जैसे-

"मैं आपकी संपत्ति नहीं हूँ। आपकी सहधर्मचारिणी हूँ। मेरी स्वतंत्र सत्ता है। आपको पराजित करके भी कोई मुझे मेरी इच्छा के विरुद्ध नहीं ले जा सकता..।"[2]

ऐतिहासिक नाटक 'गान्धार की भिक्षुणी' में देशकाल और वातावरण की नृशंसता को प्रस्तुत करने के लिए विष्णु प्रभाकर कटु तथा निर्मम भाषा का प्रयोग करते है। हूणो के नृशंस व्यवहार को उद्‌घाटित करने के लिए यथार्थपरक भाषा का चित्रण करते है जैसे-

"उस दुष्ट मिहिरकुल ने आग लगा रखी है चारों ओर समूचे मालवे पर अधिकार करके कठपुतली परिव्राजक महाराज को गद्दी पर बिठा रखा है। बलात्कार, हत्या, डाके- सब कहीं उनकी हिंसा से लपलपाती आग दहक रही है। चारों ओर कोलाहल, भगदड और आर्तनाद- यही है मेरे देश की नियति ! ।"[3]

इस नाटक में पतित अन्यायी एवं आततायी चरित्रों के लिए नाटककार कटु भाषा का प्रयोग करते है। मालव नरेश की दुर्बलताओं पर आक्षेप

---

1 'सता के आर-पार' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग 4 - पृ.सं - 406

2 'सता के आर-पार' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग 4 - पृ.सं - 412

3 'गाँन्धार की भिक्षुणी'- विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग 5 - पृ.सं - 97

लगाती आनंदी की भाषा इस प्रकार है-

"कहने के लिए परिव्राजक महाराज हमारे स्वामी है परन्तु वे कायर है, कुल-कलंक है, हूणो के क्रीतदास है, उन हूणो के जिन्होंने उस हरे-भरे प्रदेश को जलाकर राख कर दिया है, जिन्होंने नगरों को श्मशान बना दिया है, जिन्होंने हमारी माँ-बहनों पर घृणित अत्याचार किये हैं।"[1]

'केरल का क्रान्तिकारी' नाटक की सर्जना के समय नाटककार केरल की अनेक व्यक्तिगत यात्राओं कर यहाँ के पूरे वातावरण तथा परिस्थितियों का निरीक्षण करने के साथ केरल की भाषा और प्रचलित श्ब्दों पर विशेष ध्यान देते है। इस नाटक की भाषा कथ्य के मूल भाव की स्थापना करती है। परिस्थितियों का सटीक चित्रण भी भाषा के माध्यम से हुआ है। नाटक में भाषा एक-एक कर सभी चरित्रों की स्थापना करती है। नायक वेलुत्तम्पी की क्रोधपूर्ण भाषा उसके चरित्र की प्रखरता को व्यक्त करती है जैसे-

"लिखा है कि अगर मैं दीवान का पद त्याग दूँ और मलाबार में जाकर बस जाऊँ तो वे मुझे पांच सौ रुपये मासिक पेंशन देने की व्यवस्था कर देंगे। मुझे लालच देना चाहता है, पर वह नहीं जानता कि वेलुत्तम्पी किसी और ही मिट्टी का बना है।"[2]

चरित्रांकन के साथ-साथ भाषा परिस्थितियों को भी निर्मित करती है और भविष्य के संकेत भी देती है। महाराज की भाषा अंग्रेज़ों की शक्ति की विवेचना

---

1 'गाँन्धार की भिक्षुणी - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग 5 - पृ.सं-91

2 'केरल का क्रान्तिकारी' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 20

करते हुए भी अपने साहस की स्थापना करती है जैसे-

"हमारा उनका क्या मुकाबला हो सकता है? फिर भी बहादुर नायरों ने उन्हें बता दिया कि आज़ादी के लिए हम किस सीमा तक जा सकते हैं। वे हमारा सिर गुलाम नहीं बनाया जा सकता....।"[1]

आज का नाटक समसामयिक मानव की पहचान विसंगति के आधार पर करता है जिसमें नाटककार यह अनुभव करने लगा है कि सवालों को सुलझाने में भावनाओं के प्रदर्शन की जगह व्यंग्य और तर्क अधिक उपयोगी है। विष्णु प्रभाकर के नाटकों में भी व्यंग्य के छींटों की मरमार है। सामाजिक संदर्भों में उनके व्यंग्य नारी की दुर्दशा,धन कुबेरों के द्वारा किये जानेवाले शोषण, अवैधरूप से पैसा कमानेवालों की स्वार्थ वृत्ति आदि पर टिके रहते है। 'श्वेतकमल' की नायिका बिन्दु अपने बाँस द्वारा किये गये शोषण पर तीखा व्यंग्य करते हुए कहती है-

"भेडिये की मांद में फंसी भेड की तरह तडफडा कर रह गई मैं ।"[2]

उनके राजनैतिक नाटक की भाषा भ्रष्टाचारी राजनेताओं का पोल खोलकर उनकी असलियत जनता के सामने प्रस्तुत करने में सफल निकलती है। 'कुहासा और किरण'का कृष्णचैतन्य संपूर्ण रूप से छद्म जीवन जीता है किन्तु जनता के समक्ष उनका व्यवहार प्रेमपूर्ण एवं आदर्शयुक्त है। वह अपने व्यक्तित्व के अनुरूप मुखौटेवाली भाषा का इस्तेमाल करता है। उनके शब्दों और उनकी भाषा में एक प्रकार की कृत्रिमता तथा व्यंग्य स्पष्ट परिलक्षित होती है-

---

1'केरल का क्रान्तिकारी' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 74

2'श्वेत कमल'- विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग 5 - पृ.सं - 24

"राष्ट्र के प्रति सेवाओं के उपलक्ष्य में राज्य मुझे ढाई सौ रुपये मासिक ही तो देता है। उसी से किसी तरह जीवन यापन करता हूँ। शेष जो कुछ तुम देखती हो वह सब राष्ट्र का है। राष्ट्र के हित में ही खर्च होता है, क्योंकि राष्ट्र की समस्या मेरी समस्या है।"[1]

'टूटते परिवेश' नाटक में नाटककार व्यंग्य भरी भाषा के माध्यम से समाज की उस अवस्था पर चोट करते है, जिसमें पैसे तथा पद का सहारा लेकर एक तो आगे बढ जाता है और चरित्रवान् व्यक्ति के हाथ लगती है केवल असफलता। विवेक की वाणी इस सत्य से शब्दबद्ध करती है-

"आपने चरित्रवान होकर हमें क्या दे दिया पापा ? आपके रास्ते पर चलकर बस मैं आर्जियाँ लिखना ही सीख सका हूँ। जिसने आपका रास्ता छोडा उसने ही सफलाता प्राप्त की।...जिन दीपक भैया को आप चरित्रहीन कहते हैं वे मंत्री बननेवाले हैं। तब आपके चरित्र को लेकर ओढ़ूँ या बिछाऊँ।"[2]

आज नई पीढी अधिक आक्रामक हो उठी है और उसकी भाषा में विद्रोह के साथ- साथ व्यंग्य का पुट भी है। 'युगे-युगे क्रान्ति' के अनिरुद्ध की भाषा इसका द्योतक है-

" जिसे तुम भलाई कहती हो, वही तुम्हारा स्वार्थ है। तुम सब कुछ अपनी ही दृष्टि से देखना, सुनना और करना चाहती हो। तुम चाहती हो कि वही

---

1 'कुहासा और किरण' - विष्णु प्रभाकर- पृ.सं -18

2 'टूटते परिवेश' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 27

मूल्य समाज में मान्य हो जिसको तुमने जिया है।"[1]

'टूटते परिवेश' का युवक विवेक की भाषा प्राचीनता पर व्यंग्य करनेलायक है जैसे-

"पापा, अब बीते जीवन की घडकनें सुनने से अच्छा है कि वर्तमान की साँसों की रक्षा की जाए।"[2]

ऐतिहासिक नाटकों में भी विष्णु प्रभाकर व्यंग्य से युक्त भाषा का प्रयोग करते हैं। 'नव प्रभात' के कलिंग राजकुमारी युद्ध में सम्राट् अशोक द्वारा हुए भीषण नरसंहार पर तीखा व्यंग्य करती है कि-

"मरण तो संसार का नियम है, उसके लिए इतने प्रयत्न क्यों किये? यदि वह जीवन के लिए इसके दशांश शक्ति भी खर्च करता तो संसार विधाता को भूल जाता।"[3]

'सत्ता के आर-पार' नाटक की नारीमूर्ति भरत के दिग्विजय पर व्यंग्य बाण कसती है कि-

"जिनको आप जीत चुके है और जिनको जीतना शेष है उनमें कोई अन्तर नहीं है और यह भी कि आप भी इस बात को बहुत अच्छी तरह जानते हैं।"[4]

---

1 'युगे-युगे क्रान्ति'-विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग-5 पृ.सं-308

2'टूटते परिवेश' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग- 5 - पृ.सं - 21

3'नव प्रभात' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग-5 - पृ.सं - 70-71

4'सत्ता के आर-पार' - विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग-5 - पृ.सं - 396

विष्णु प्रभाकर अपने कई नाटकों में वातावरण को मुखरित करने के लिए संगीत, गान, कविता आदि का प्रयोग करते है। उनके नाटक 'बन्दिनी' बंगाल की पृष्ठभूमि पर रचित होने के कारण नाटक का आरंभ और अन्त बंगला गीत से होता है-

"भवसागरे केमोने दिबो पारि रे.....

दिबा निशि कांदि रे नेदिर कूले बोइया

ओ मोनरे जार आछे रसिक नैया.....।"[1]

इस नाटक में जगह-जगह संस्कृतनिष्ठ शब्दों से युक्त काव्य देवी की उपासना के लिए प्रयुक्त किया गया है जैसे-

"नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः

नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्

या देवी सर्व भूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।"[2]

उनके पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों में काव्य भाषा का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। 'नवप्रभाव' में युद्ध और विनाश के वातावरण में भी संगीत और गान की प्रस्तुति है, जिसके माध्यम से विभिन्न परिस्थितियों की अभिव्यक्ति मिलती है-

"माँ तेरे आंगन में जलती महानाश की ज्वाला !

1' बान्दिनी' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 13

2' बान्दिनी' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 35

अस्ताचल पर रक्तिम, पलटें, लपलप लपक रही है,.....।"[1]

'गान्धार की भिक्षुणी' ऐतिहासिक संघर्षयुक्त नाट्य रचना होने के कारण ओजस्वी और प्रखर देश-भक्ति गीतों से युक्त है-

"हम मालव हैं, हम विद्युत की तरह

प्रबल गतिवान हैं

कर में लेकर खंग दुधारा

हमने दुश्मन को ललकारा,

आज विदेशी के शासन में

नहीं रहेगा देश हमारा।"[2]

'केरल का क्रान्तिकारी' में अम्मुकुट्टी काव्यात्मक भाषा में राष्ट्रप्रेम और उत्थान से युक्त ओजपूर्ण गीत से जनता को जागृत करती है -

"उठो आंखें खोले कि पौ फट गयी है

युगों की अंधेरी निशा कट गयी है।

नया प्राण लेकर हवा आ रही है

नया गान लेकर सबा आ रही है.....।"[3]

यथार्थ के आग्रह के कारण उनके नाटकों में बोलचाल की शब्दावली पर बल दिया जाता है। ग्रामीण बोलचाल की भाषा मूलतः उस इलाके से

1' नवप्रभाव ' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 20

2' गान्धार की भिक्षुणी '- विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग-5 - पृ.सं - 89

3' केरल का क्रान्तिकारी ' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 56

संबन्धित होता है।नाटककार ऐसे ग्रामीण पात्रों के लिए विशेष भाषा का प्रयोग करते है।'डाक्टर' की सेविका काकी ग्रामीण बोलचाल की भाषा का प्रयोग करती है-

"अगले अफ्ते आन कूं कह गए हैं। तुम जानों,मका क्यूँ बेटी तबियत क्या सच्चो ही खराब है?।"[1]

इस नाटक में नौकर रामू की भाषा अनगढ और चलताऊ भाषा है-

"दोहाई दीदी, दोहाई दीदी की, सारी लौटाता तो गोपाल बाबा कू दुःख होता। वह आपकू परेशान करता। आपकू परेशानी से बचाने कू.....।"[2]

'केरल का क्रान्तिकारी' में अंग्रेज़ों के लिए फिरंगियों शब्द का प्रयोग किया गया है। नाटककार ब्रिटिश चरित्रों के लिए विशेष भाषा का प्रयोग करते है जो उनकी विशिष्ट शैली के रूप में प्रयुक्त हुआ है। ऐसे पात्रों की भाषा में 'त' के स्थान पर 'ट' 'द' के स्थान पर 'ड' 'थ' की जगह 'ठ अक्षर प्रयुक्त किये गये है- "टम्पी ने कुडरा में जो एलान किया ठा उसी टरह का एलान हमें भी करना है और हमारी टरफ से वह टुम्हें करना है।"[3]

'बान्दिनी' के पुरोहित की भाषा में पांडित्यज्ञान का थोथापन, लोभ और अंधभक्ति देखने को मिलता है जैसे-

"हरे, हरे, यह अविश्वास ! यह अविश्वास ही तो पाप की जड है।

1' डाक्टर ' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 72

2' डाक्टर ' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 84

3' केरल का क्रान्तिकारी ' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 58

अविश्वास स्वयं पाप है। कैसा युग आ गया। लोगों की धर्म पर से आस्था डगमगाने लगी है। माँ काली, क्षमा करो।"[1]

'सत्ता के आर -पार' में राजगुरू धर्माचरणयुक्त भाषा बोलते है-

"राजा धर्म से विमुख नहीं हो सकता। राजा धर्म का पालन करने को प्रतिबद्ध है क्योंकि धर्म राजाओं का राजा है।"[2]

उनके सभी नाटक सुशिक्षित वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व करने के कारण इन नाटकों में जगह-जगह अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग हुआ है। ये शब्द चरित्र द्वारा सामान्य बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त होते है। इनमें -थिंक आफ दी डेविल एण्ड शी इज़ देअर, हैलो, ट्रेडमार्क, रिस्क, क्रिटिकल, फिलांस्फर, बायोलाजी, हार्टी कांग्रेचुलेशन्स, स्मग्लर, सेक्रेटरी, एक्ज़ीव्यूटिव, क्रिमिनल, पब्लिक, माडलिंग, फर्म, पार्ट,-टाइम, रैकेट, एक्सप्लायटेशन, रोमांटिक, इंटेलिजैंट, इन्टरव्यूबोर्ड, कालगर्ल, पेपर वेट, डिस्टिंक्शन, टिपटाप, डिप्टी स्पीकर, सैंस आफ ह्यूमर, रेजिमेंट, आदि शब्द विशेष उल्लेखनीय हैं।

इसके अलावा उनके नाटक 'डाक्टर' में डाक्टरी पेशे से संबन्धित अनेक शब्द भाषा में प्रयुक्त हुए हैं जैसे-डाक्टर, मरीजा, एनसथेटिस्ट, नर्सिंग होम, एक्सरे, गालब्लेडर, प्लूरिसी, इन्ट्रावीनस इन्जैक्शन, आपरेशन, ब्लडप्रेशर, ब्लड प्लाज़्मा, प्लास्टर, स्केलपल, फोरसेप्स आदि।

अंग्रेज़ी शब्दों के अलावा उनके नाटकों में उर्दु भाषा के कई शब्दों

1' बान्दिनी ' - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 69

2'सत्ता के आर-पार'-विष्णु प्रभाकर-भाग-4-पृ.सं-381

का भी समावेश हुआ है जैसे-आदाब अर्ज, हिसाबदाँ, बेइन्तहाँ, मेहरबानी, मोहब्बत, खाक, बेवकूफ, गफ़लत, जर्रानवाज़ी, तलाकशुदा, बुज़दिल, खूंख्वार, अफजाई, एहसान-फरामोश, शिनाख्त, इश्तिहार, महफिल, गुस्ताख, वाहियात, जंग-आलूदा, कद्रदानी, बदनसीबी, मिज़ाज़, शक्ल, औकात, इश्मेशरीफ, आदमखोर, दफ़नाना, तमीज़, बेबुनियाद, दस्तखत, हाज़मा, मोहताज़, शहादत, गुनहगार, ताल्लुकात, खुराक, मनहूसियत, बइन्तज़ामी, फुर्सत, हरजाई, बहशी, फरमान, नाज़ुक, अजीबशै, अब्बा हुजूर. बेपनाह, मुल्क, कौम, मुस्तकबिल, खुशकिस्मती, जमाखोरी,खासोआम, जूर्रत, इत्तिला, सदरमुकाम, हिफाजत आदी।

बंगाल की पृष्ठभूमि पर रचित 'बन्दिनी' में प्रयुक्त कुछ बंगला शब्दों में-जात्रा, रसगुल्ला, विषम ज्वर, पैडियाँ आदि नाटक के वातावरण को जीवन्त बनाते है।

इसके अतिरिक्त लोकभाषा के कुछ प्रचलित शब्दों का प्रयोग उनके नाटकों में हुआ है जैसे- बुर्जुआई, सप्तसदी, खानाबदोश, खूसर, जानहार, लच्छन, चरणामृत, खोंस, मुरमुरे, माँ-जाई, सतजुग, अन्न, मल्लयुद्ध आदि।

विष्णु प्रभाकर अपने नाटकों की भाषा को अधिक सहज और सरस बनाने के लिए लोकोक्तियों और मुहावरों का यथोचित प्रयोग करते है। प्रसाद युगीन नाटकों में लोकोक्तियों की भरमार है, जिससे भाषा का सौन्दर्य नाष्ट होता है। विष्णु प्रभाकर इन लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में करते है जो भाषा को अधिक प्रभावी बनाने में सहायक ही है। उनके नाटकों में प्रयुक्त कुछ लोकोक्तियाँ और मुहावरे इस प्रकार है जैसे-ढोल मचाकर शोर बजाना, हाथ

कंगन को आरसी क्या, चींटी के पर निकलना, साँप के मुँह ऊँगली देना, हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और, तिल-तिलकर जलना, तिल का ताड बनाना, गाजर मूली की तरह काटना, आस्तीन के साँप, हवा के घोडे पर सवार होना, कुल का दीपक होना, मिट्टी में पारस गुण आना, चाह है तो राह है,सिर पर सींग होना, शक्ल चुडैल की मिजाज़ परियों के,उल्टबांसी जैसी बात होना, नंगा पैर घूमना, खरबूजा छुरी पर या छुरी खरबूजे पर, दीवारों के कान होना, शर्म से सिर झुक जाना, अपने पैरों पर कुल्हाडी मारना, फूटी आँख न सुहाना, बाल भी बांका न होना, कुओं में बाँस डालना, लकीर पीटना, शेर की माँद में पछाडना, साँप कभी सीधी तरह नहीं चलता, अंधे को आंखें दिखाना, बलि का बकरी बनाना, लोहे के चने चबाना, जब जागे तभी सवेरा आदि।

अतः उनके नाटकों का भाषा शिल्प अपनी सर्जना के कथ्य, चरित्र और परिस्थिति को ठोस आधार प्रदान करता है। उनके नाटकों में सामान्य वर्ग के लिए बोलचाल की भाषा तथा निम्नवर्ग के लिए अनगढ और चलताऊ भाषा प्रयुक्त है। मानसिक द्वन्द्व से युक्त चरित्र की भाषा असहज और गूढ है। ऐतिहासिक एवं पौराणिक नाटकों में संस्कृतनिष्ठ और परिष्कृत हिन्दी भाषा का प्रयोग किया गया है।

रंगमंच:-

आधुनिक हिन्दी रंगमंच की तीन अवस्थायें है-स्वातंत्र्य-पूर्व युग, स्वातंत्योत्तर युग और साठोत्तर युग। स्वतंत्रता पूर्व संगमंच में पारसी थियेटर, पृथ्वी-थियेटर और भारतीय जन नाट्य संघ आदि रंगमंच आया। स्वातंत्र्योपरान्त

हिन्दी रंगमंच में पर्याप्त विकास हुआ। महानगरों के साथ-साथ छोटे नगरों एवं कस्बों में भी नाट्य-संस्थाओं की स्थापना होने लगी। बंबई में 'इंडियन नेशनल थियेटर के साथ थियेटर-ग्रूप और थियेटर-यूनिटों का उदय हुआ। साठोत्तरी युग में हिन्दी रंगमंच का सर्वाधिक विकास हुआ है। पूरे देश में नाट्य संस्थाओं, रंग-शालाओं और नाट्य विद्यालयों की सघनता परिलक्षित होने लगी।

स्वातंत्र्योपरान्त युग के नाटककार विष्णु प्रभाकर का रंगमंच के प्रति रुझान किशोरावस्था से ही हो चुका था। अपनी किशोरावस्था में वे कृष्णा ड्रामेटिक क्लब के सदस्य थे। इसी नाट्य-क्लब के तत्वावधान में उन्होंने 'कृष्णावतार' में कंस, 'श्रवणकुमार में दशरथ और काशीराज तथा 'धर्माधर्म युद्ध' में कृष्ण के चरित्र को अभिनीत किया। 'रामा मण्डल' उनकी अपनी रंगमंचीय संस्था थी, जिसने अनेक देशभक्तिपूर्ण नाटकों का मंचन किया। अपने इस रंगमंचीय संस्था के संबन्ध में उनका कहना है कि- *"इस मंच की आज की यथार्थवादी मंच से कोई तुलना नहीं हो सकती, लेकिन इस कला को जीवित रखने और जनजीवन से जोडने में उसके योगदान से भी इन्कार नहीं किया जा सकता।"*[1]

रंजमंच के प्रति यह आसक्ति आगे चलकर लेखन के रूप में विकसित हुई। विष्णु प्रभाकर को नाट्य लेखन के प्रदर्शन के लिए रेडियो का अदृश्य मंच प्राप्त हुआ। इसके प्रसारणो से प्रोत्साहित होकर उन्होंने रेडियो के साथ-साथ रंगमंच के लिए भी लिखा। रंगमंच के नाटकों में अंक और दृश्य-योजना का बहुत महत्व है। नाटक में अपेक्षित रस की परिपक्वता एवं आनन्दानुभूति के लिए नाटकों

1'विष्णु प्रभाकर संपूर्ण नाटक भाग 1'- भूमिका - विष्णु प्रभाकर - पृ.सं - 7

में कम से कम दृश्यों का होना आवश्यक है। स्वयं विष्णु प्रभाकर इस विषय में लिखते हैं- *"आजकल तो दर्शक यही चाहते हैं कि एक बार पर्दा उठाकर तभी गिरे जब नाटक का अन्त हो। बार-बार यवनिकापात से रस भंग होता है और दर्शक ही क्यों नाटक के प्रस्तुतकर्ता भी यही चाहते हैं कि एक सेट हो और एक दो दृश्य हों। जीवन के कुछ मार्मिक क्षणो की कहानी हो। आज के एटम युग में क्षणों का मूल्य युगों में चुकाया जाता है ।"*[1]

उपयुक्त कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे रंगमंच को नाटक का अभिन्न अंग मानते हैं। यही नहीं उनकी राय में एक नाटक के प्रस्तुतीकरण की सफलता निर्देशक और रंगकर्मियों के आपसी साहयोग से संपन्न होती है।

उनके द्वारा रचित रंग नाटकों का मंचन 'दिल्ली आर्ट थियेटर' से लेकर कई विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों तक हो चुका है। उनके अत्यन्त चर्चित मंचस्थ नाटकों में 'डाक्टर', 'टगर', 'बन्दिनी', 'टूटते परिवेश', 'युगे-युगे क्रान्ति', 'नव प्रभात', 'सत्ता के आर-पार' आदि है। उनकी अन्य कई नाट्य-रचनायें मंच-जगत में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित कर चुकी है।

विष्णु प्रभाकर अपने नाटकों को रंगमंच के अनुकूल स्वरूप देने का प्रयास करते है। क्योंकि नाटक की सार्थकता इसकी अभिनेयता तथा मंचन से सिद्ध होती है। उनके नाटक 'डाक्टर' की रंगमंचीय सफलता में उसका भावप्रधानक और आदर्शोन्मुख कथानक सर्वोपरि है।कथानक का द्वन्द्व और संघर्ष स्थिर रहने के

---

1 विष्णु प्रभाकर' -सं-डा० विश्वनाथ मिश्र डा० कृष्णचन्द्र गुप्त - पृ.सं- 307

कारण दर्शक नाटक से जुडा बैठा रहता है। इस नाटक में तीन अंकों का सीमित कलेवर है। बडे नाटकों के लिए मंचन, निर्देशन और अभिनेयता की अनेक कठिनाइयाँ है। लेकिन 'डाक्टर' नाटक की सीमित विषयवस्तु एक रंग नाटक के प्रयोजन को मूर्त रूप प्रदान करती है। उसमें पात्रों की संख्या भी सीमित है। कुल दस चरित्र हैं जिनमें काकी, मरीजा, सतीशचन्द्र शर्मा तथा गोपाल की अत्यन्त लघु उपस्थिति है। मरीजा तो अन्तिम दृश्य में आती है। रंगमंच पर दो-तीन पात्रों की उपास्थिति से कलाकारों के अभिनय का प्रभाव दर्शकों पर पडता है। इस नाटक में ऐसे दृश्यों का समावेश हुआ है जिनमें दो या तीन पात्रों की ही उपस्थिति दर्शायी गयी है। अपने रंग-निर्देशों के द्वारा नाटककर ने चरित्रों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोभावों को भी निरूपित किया है। वातावरण के निर्माण में भी उन्होंने पूर्ण परिश्रम किया है। डाक्टर के नर्सिंग होम का सचित्र 'स्केच' खींचकर उन्होंने अस्पताल का पूरा जीवन्त वातावरण प्रस्तुत किया है। उन्होंने आवश्यकता और सुविधानुसार इस सेट में परिवर्तन करने की पूर्ण स्वतंत्रता रंगनिर्देशक को प्रदान की है। आरंभ के दो दृश्यों का चित्रण सहज रूप में होता है तो अन्तिम अंक की प्रस्तुतीकरण में कठिनाइयाँ होती है। मरीजा के आपरेशन के दृश्य के लिए 'आपरेशन थियेटर' और चिकित्सीय औजारों के संकलन में रंगमंचीय प्रस्तुति तो अपूर्ण प्रतीत होती है। तीसरे यानी अंतिम अंक की कठिनाइयों के समाधान विष्णुप्रभाकर यों प्रस्तुत करते है कि- *" तकनीकी दुष्टि से तीसरे अंक को प्रस्तुत करने में जो कठिनाइयाँ आ सकती थी, उनकी बहुतों ने चर्चा की है। कुछ लोगों ने नये प्रयोग भी किये हैं। कुछ ने तो आपरेशन के दृश्य में वास्तविक आपरेशन करते दिखाया है। लेकिन मैं*

समझता हूँ आज के प्रतीकात्मक मंच के युग में यह कोई बडी समस्या नहीं है और इस क्षेत्र में निदेशक कैसा भी प्रयोग करने को स्वतंत्र है ।"[1]

उनके इस कथन से स्पष्ट है कि वे नाटक के प्रस्तुतीकरण में निर्देशक की भूमिका को संबसे महत्वपूर्ण मानते है और निर्देशक को पूर्ण स्वतंत्रता भी देते हैं। नाटककार ने अंतिम अंक में एक प्रतिहिंसापूर्ण आवाज़ की योजना की है जो अनीला के मानसिक द्वन्द्व का प्रतीक है और इस ध्वनि-योजना के माध्यम से मंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है। यह आवाज़ पहले से रिकाड की जा सकती है। उन्होंने इस नाटक की 'भूमिका' में इस नाट्य-लेखन के प्रयोजन के संबन्ध में इस प्रकार लिखा है कि- *"नाटक लिखा है तो खेला भी जाना चाहिए।.....मैं ने भी जब यह नाटक लिखा है तो इसी दृष्टि से लिखा। रंगमंच के कई जानकारों से सलाह ली। उनमें लेखक, आलोचक तथा निर्देशक सभी थे। वे दो बार दिल्ली की एक प्रगतिशील और सुप्रसिद्ध संस्था 'देहली आर्ट थियेटर' के कलाकारों के सामने इसे पढा भी। काफी बहस हुई। काफी लोगों ने इसे पसन्द किया, कुछ संशोधन भी सुझाए। कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्होंने इसके अन्त को आदर्शवादी बताया।"*[2]

अभिनय की दृष्टि से डाक्टर एक परिपूर्ण नाटक है। डाक्टर का सर्वप्रथम मंचन अमृतसर के मेडिकल कालेज के छात्र-छात्राओं द्वारा किया गया। विश्वविद्यालय के युवा समारोहों में यह कई बार मंचस्थ और पुरस्कृत भी हुआ।

1'डाक्टर' विष्णु प्रभाकर- दो शब्द

2 'डाक्टर' विष्णु प्रभाकर- दो शब्द

आकाशवाणी के अखिल भारतीय कार्यक्रम के अन्तर्गत भारत की सभी भाषाओं में अनूदित होकर प्रसारित हो चुका है। इसके अलावा दुरदर्शन बंबई केन्द्र तथा अन्य केन्द्रों ने भी इसको प्रसरित किया।

'टगर' एक रंगमंचीय नाटक है जो विभिन्न रंग-संकेतों और सुझावों से युक्त रचना है। इसकी कथावस्तु अत्यंत दुरूह है। नारी के अन्तर्मन के विविध दृश्य इसमें समायोजित है। 'टगर' में तीन अंकों में पूरी विषयवस्तु को समेटा गया है। इसमें संकलनत्रय का पूरा निर्वाह हुआ है, क्योंकि पूरा घटनाक्रम एक विशेष अवधि में संपन्न हो जाता है। राजस्थानी परिवेश की वास्तविकता स्थापित करने के लिए निर्देशक को इस संस्कृति से जुडी कुछ मूलभूत वस्तुओं, चित्रों आदि की आवश्यकता हो सकती है। स्थान की प्रभावोत्पादकता के लिए नाटककार ने प्रतीकात्मक मंच की रूपरेखा भी प्रस्तुत की है। प्रथम अंक में प्रस्तुत मंच -सज्जा ही पूरे नाटक के दृस्य संयोजन के अनुरूप है। तीन अकों में प्रस्तुत कथावस्तु तीन अलग-अलग घटनाओं का संयोजन है। प्रथम अंक में टगर और ठाकुर के संबन्धों का चित्रांकन है तो दूसरे अंक में माथुर और टगर के प्रणय का प्रदर्शन और अंतिम अंक में नाज़िम के साथ प्रेम संबन्धों की त्रासदपूर्ण अंत की व्याख्या है। पात्रों की संख्या की दृष्टि से इसमें तेरह चरित्रों का संकलन है, जिनमें नारी पात्र केवल तीन है- टगर, विमला और माधुरी।

'टगर' में अभिनय की विपुल संभावना है। प्रत्येक कलाकार को अभिनेयता के पूर्ण अवसर मिलते है। 'टगर' की नायिका नारी सहज समस्त मनोभावों को आत्मसात् करनेवाली है। रंगमंचीय प्रस्तुति में टगर का भजन और

गज़ल एक ओर काव्यात्मक वातावरण को रेखांकित करता है तो दूसरी ओर नाटक के तनाव में ढीलापन उत्पन्न करता है।रंगमंच में 'टगर' अपने भावप्रवण कथानक, समसामयिक उन्मुक्तता,मुक्त संबन्धों के स्थापन और दुःखान्त परिणति के कारण विशेष उल्लेखनीय है। यह मंचीय क्लिष्टता से सर्वथा मुक्त रचना है। इसलिए यह मंचस्थ करने योग्य है।

उनके 'बन्दिनी' नाटक में यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि नाटककार के साथ रंगमंच के कलाकार, निर्देशक एवं अन्य मित्रों के परस्पर सुझावों के पश्चात् इसे रंग-नाटक की संज्ञा प्रदान की गई है। इसका कथानाव आज के युग में चमत्कारपूर्ण घटना है। नायिका उमा के चरित्र के विभिन्न आयाम और मनोभावं ही नाटक के मुख्य बिन्दु है। यह नाटक भी तीन अंकों में सीमित है। एक संक्षिप्त समयावधि में नाटक खेला जा सकता है। रंग नाटक संदर्मित सभी निर्देश इसमें उपलब्ध है कि रंग निर्देशक को मंचन के दौरान अनावश्यक परेशानी न उठानी पडती है। आरंभ में ही प्रतीकात्मक मंच की सजावट है, वहाँ कालीनाथ के धर का वातावरण निर्मित है। इसी मंच सज्जा को अंतिम अंक तक प्रयोग किया जा सकता है। क्योंकि यह वातावरण की भिन्नता से मुक्त नाटक है। दूसरे अंक में उमा के देवी रूप में प्रतिष्ठित होते ही उसी में एक वैभवयुक्त आसन लगाकर मंदिर का वातवारण निर्मित करता है। संकलन त्रय की दृष्टि से स्थान और कार्य में कोई भिन्नता नहीं है। इस नाटक में मुख्य पात्र छः है- उमा, कालीनाथ, सुरेन्द्र, सावित्री, पुरोहित एवं अनु। अन्य पात्र नाटक में अल्पसमय के लिए उपस्थित होते हैं।

नाटक में अभिनेयता के व्यापक अवसर हैं। 'बन्दिनी' में व्याप्त अभिनयकला की संभावनाओं पर नाटककार भूमिका में यों लिखते है- *"नाटक में अभिनय की विपुल संभावना है और वातावरण के निर्माण की भी। वह किसी भी दल के लिए चुनौती बन सकता है। श्री वेदव्यास ने अपनी दृष्टि से इसकी प्रस्तुति को अत्यन्त प्रभावी बना दिया था। श्री चमन बग्गा ने दूरदर्शन की सीमाओं में रहते हुए भी भीड की मानसिकता को उभारने की सफल कोशिश की थी। अन्तिम प्रभाव को लेकर मतभेद हो सकता है। लेकिन दोनों ही निदेशकों ने अपने-अपने क्षेत्र में यथेष्ट सफलता प्राप्त की है। यह निस्सन्देह कहा जा सकता है। तीसरा निदेशक इसे और आयाम दे सकता है, यह संभावना इस नाटक में है।"*[1]

नाटककार का कथन इस बात की ओर संकेत करता है कि नाटक का आलेख भिन्न-भिन्न निर्देशकों के हाथ में आकर उनकी सूझ-बूझ के अनुसार भिन्न- भिन्न रूप धारण करता है।

श्री वेदव्यास ने इसे 'दिल्ली आर्ट थियेटर' के माध्यम से प्रथम बार मंच पर प्रस्तुत किया। दिल्ली ही यह अन्य नाट्य रंगमंचों द्वारा मंचस्थ हुआ। आकाशवाणी से यह अनेक बार प्रसारित हो चुका है और दूरदर्शन में भी श्री चमन बग्गा के निर्देशन में इसे प्रसारित किया गया।

'अब और नहीं' के नाटकीय कथानक के केन्द्र में भी नारी चरित्र है। विष्णु प्रभाकर ने अपने इस नाटक में रंगमंच के अनुकूल समस्त रंग-निर्देश स्थापित किये है। इसके कथानक में नारी अस्तित्व की पहचान की छटपटापट दृष्टव्य है।

---

1 'बन्दिनी' - विष्णु प्रभाकर -भूमिका - पृ.सं-7

देशकाल और वातावरण की रंगमंचीय प्रस्तुति में नाटक में अधिक कठिनाई नहीं है। इस नाटक में तीन अंक और एक अंक में दो या तीन दृश्य परिवर्तन भी है। लेकिन दृश्यों के परिवर्तन से मंच सज्जा पर किसी बदलाव की जरूरत नहीं पडती। पूरे नाटक का क्रियान्वयन एक ही कमरे में होता है। नाटककार ने डाक्डर को घर पर ही बुलाकर अस्पताल के वातावरण के प्रदर्शन की कठिनाइयों से निर्देशक को बचा लिया। नाटक के अंतिम दृश्य के लिए मंच सज्जा में परिवर्तन की ज़रूरत है। क्योंकि वहाँ शान्ता घर से निकलकर काल्पनिक जगत की ओर उन्मुख है। इस वातावरण का निर्माण प्रतीकात्मक सजावट से किया गया है। इस में कुल दस पात्र हैं। इसमें शान्ता, वीरेद्र,मंजरी,डा०मलिक, शुभ्रा आदि प्रमुख चरित्र है। इसके अतिरिक्त अन्य चरित्रों की उपस्थिति बहुत कम है। नाटक में प्रयुक्त काव्य संयोजन चरित्र के मानसिक द्वन्द्व को उभारने में सहायक है।

इस प्रकार इस नाटक में रंगमंच के अनुकूल दृश्य,चरित्र और परिस्थितियों का आयोजन है। प्रत्येक चरित्र के संवादों के साथ रंग निर्देश भी विद्यमान है जो कलाकार को अभिनेयता में मदद करते है। रंगमंच के दृष्ठिकोण से 'अब और नहीं' पूर्ण रंग नाटक है. जिसे बिना किसी विघ्न के मंच पर खेला जा सकता है।

उनके 'श्वेतकमल' नाटक प्रारंभ में एक ध्वनि नाटक 'सूली पर टंगा श्वेतकमल' नाम से आकाशवाणी से प्रसारित हो चुका है। इसमें पर्याप्त रंगनिर्देशों और सुघार के साथ नाटककार ने रंग नाटक की अनिवार्यताओं के साथ प्रस्तुत किया है। इसके कथानक में घर से बाहर नौकरीपेशा युवतियों के कार्य-कौशलों,

व्यवहारों और विवशता को तन्मयता के साथ चित्रित किया गया है। तीन अंकों के कथानक को दृश्यों के परिवर्तन से संतुलित रखा गया है। पूरे अंक में नाटक का कार्यव्यापार घर के कमरे में संपादित होता है। लेकिन नाटककार द्वारा प्रस्तावित रंगनिर्देशों के अनुसार मंच के कोने में मध्यवर्गीय परिवार के अभाव को प्रकट करती मंच सज्जा होनी चाहिए जिसमें टूटा-फूटा सोफा, कुर्सियाँ, अत्यन्त सस्ते और पुराने घडी, पुस्तकें आदि की ज़रूरत है। नाटक में कार्यालय का जो दृश्य है जिसे मंच के दूसरे कोने में व्यवस्थित किया जा सकता है। इस नाटक में कुल ग्यारह पात्र है। लेकिन मंच पर चार पात्रों से अधिक की उपस्थिति नहीं होती। सीमित रंगमंच में पात्रों की भीड नहीं लगती। प्रत्येक पात्र अपने चारित्रिक वैशिष्ट्य के साथ मंच पर उतरकर दर्शकों से आत्मीय संबन्ध स्थापित करते है। इस नाटक में कुछ स्वर, आवाज़ और उद्घोष पर्दे के पीछे से गूँज उठता है जो वातावरण और घटनाओं को अधिक सापेक्ष बनाता है।

इस प्रकार यह नाटक 'श्वेतकमल' अभिनेयता की समृद्ध संभावनाओं से युक्त है।

'टूटते परिवेश' का कथानक सामाजिक धरातल पर रचे पारिवारिक संबन्धों की टूटन और बिखराव को चित्रित करता है, जो आधुनिक समाज में प्रत्येक घर के कथ्य को उजागर करता है। इस नाटक में अंकों का विभाजन नहीं है। इसलिए नाटक की गतिशीलता में विघ्न उत्पन्न नहीं होता है। नाटक में दृश्य-परिवर्तन के अत्यन्त सीमित स्थल है। पूरा नाटक रंग-निर्देशों से आवृत्त है। इसके साथ-साथ उन्होंने पात्रों के मवोभावों और परिस्थिति को अधिक

प्रभावोत्पादक बनाने के लिए अनेक स्थलों पर संगीत और प्रकाश संबन्धी निर्देश भी स्थापित किये हैं। नाटक में कुल दस पात्र है। इसमें विश्वजीत, करुणा और अशोक पुरानी पीढी के हैं और अन्य पात्र युवा पीढी के चरित्र हैं। इसमें अशोक, ज़रीना, इन्दु, शरत्, विमल आदि नाटक के एक दृश्य में ही मंच पर आते हैं। मनीषा भी नाटक के आरंभ में अपना मंतव्य व्यक्त करके अंतिम दृश्य में प्रकट होती है। अंतिम दृश्य को छोडकर रंगमंच पर दो-चार पात्रों की ही उपस्थिति दिखाई गई है जिससे कलाकार को अभिनय के पूर्ण अवसर मिलते है। 'टूटते परिवेश' वर्तमान समय का प्रतिनिधित्व करनेवाला नाटक होने के कारण संकलन त्रय की दृष्टि से इसमें समय और काल का बिखराव नहीं है। संपूर्ण घटनायें एक ही स्थान पर कई दिनों के अन्तराल में घटित होती है। संपूर्ण नाटक प्रारंभ से अन्त तक प्रतीकात्मक मंच पर परिचालित होते है। दृश्य परिवर्तन में सज्जा-परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि यह सारा घटनाक्रम विश्वजीत के घर में ही घटित होता है। अन्य घटित परिस्थितियों का उद्घाटन चरित्रों और संवादों द्वारा प्रकट किया जाता है। नाटक के अंत में विश्वजीत की स्वप्न-संयोजना नाटक को सुखद भविष्य की ओर ले जाती है।

अपने समसामयिक तेवरों एवं प्रासंगिक कथारूप की महानता के कारण रंग- निर्देशकों के मध्य यह नाटक अपना विशिष्ट प्रभाव जमाने में पर्याप्त सफल रहा है। यह नाटक टोकियों (जापान) में कुछ परिवर्तन के साथ मंचस्थ हुआ। इस नाटक की चर्चा करते हुए स्वयं विष्णु प्रभाकर का कहना है: *"यह नाटक मंचस्थ हो चुका है। न केवल भारत में बल्कि जापान में भी। टोकियो नगर में वहीं*

के कलाकारों ने इसे प्रस्तुत किया था। इसकी कथा परिवार के विघटन पर आधारित है। जापान में भी यह समस्या वर्तमान है। इसलिए यह नाटक उनको आकर्षित कर सका।[1]

उनके 'युगे-युगे क्रान्ति' पाँच पीढी की अनवरत कथा है। यह अंक और दृश्यों के विभाजन से सर्वथा मुक्त है। सूत्रधार और देवीप्रसाद का वार्तालाप ही दोनों पीढियों, व्यवहारों और घटनाओं के आरंभ और अन्त को प्रस्तुत करता है। नाटककार ने रंगमंचीय संभावनाओं के अधीन नाटक को आवश्यक रंग-संकेतों से संपन्न किया है। सूत्रधार और देवी प्रसाद का प्रत्येक घटना के बाद सहज भाव से मंच पर आकर परिस्थिति का आंकलन करना और आगामी समस्या का आभास देते हुए मंच से बाहर निकालना आदि एक नवीन प्रयोग को प्रमाणित करता है। विषयवस्तु की व्यापकता के अनुरूप इसमें पात्रों का जमघट भी अधिक मात्रा में है. इसमें कुल बाईस पात्रों की समावेश है। इसके अलावा सामाजिक प्रतिक्रियाओं और जुलूस आदि के लिए कई गौण पात्रों की उपस्थिति अनिवार्य है। इसमें एक पीढी के पात्र दूसरी पीढी तक उपस्थित रहते हैं और तीसरी पीढी के अवतरित होते ही अदृश्य हो जाते हैं। एक कलाकार दो-तीन चरित्रों की की भूमिका निभा सकते है और चरित्रों की संख्या सीमित की जा सकती है।

आरंभ में ही रंगमंच को इस प्रकार सुसज्जित कर दिया जाए कि थोडी बहुत फेर-बदल की गुंजाइश के साथ पातावरण की तत्कालीनता स्थापित हो सकती है। इसलिए नाटककार ने प्रारंभ से ही प्रतीकात्मक मंच का निर्देश दिया है,

---

1.विष्णु प्रभाकर के संपूर्ण नाटक भाग-4भूमिका-पृ.सं-5

इसमें पूरी घटनायें क्रियान्वित हो सकती है। इसमें संवादों को संक्षिप्तता और प्रखर स्वरों से प्रभावी बनाया गया है जो रंगमंचीय सफलता के लिए अनिवार्य शर्त है।

इस प्रकार पात्रों की अधिकता,घटनाओं की वैविध्यता, वातावरण की भिन्नता तथा संवादों की दीर्घता के बावजूद भी नाटक की विषयवस्तु की सहजता और समसामयिकता से निर्देशक ने इसे रंगमंच पर सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है।. रंगमंच के साथ यह अन्य भाषाओं में अनूदित होकर आकाशवाणी के नाटकों के अखिल भारतीय कार्यक्रम में भी प्रसारित हुआ है।

'कुहासा और किरण' नाटक में उपस्थित रंग निर्देश और विभिन्न मंचीय आयोजन इसके रंग नाटक होनें की प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं। समय, स्थान और काल के साथ-साथ वातावरण के स्पष्ट संकेत नाटककार ने दिया है। नाटक का कथानक समसामयिक सामाजिक भ्रष्टाचार पर तीखा प्रहार करता है। तीन अंकों का संक्षिप्त कलेवर नाटक की मंचीय अवधि को भी सीमित करता है। इन तीन अंकों में दृश्य-परिवर्तन के लिए पर्दा गिराने की कोई आवश्यकता नहीं पडती। प्रथम और अंतिम अंक का स्थान कृष्णचैतन्य के घर है तो द्वितीय अंक का स्थान विपिन बिहारी का निजी कक्ष है। नाटक के स्थान में निर्देशक अपनी सुविधानुसार परिवर्तन करके वातावरण को निर्मित कर सकता है। इस नाटक में पात्रों की संख्या को मर्यादित रखा गया है। इसमें कुल ग्यारह पात्र है। एक ओर इसमें कृष्णचैतन्य, उमेशचन्द्र, विपिन बिहारी जैसे आपराधिक वृत्ति के चरित्र है तो दूसरी ओर अमूल्य, सुनन्दा, प्रभा, गायत्री आदी अपराध के विरुद्ध खडे आदर्श चरित्र ही है। प्रत्येक चरित्र को मंच पर पूरा अवसर प्राप्त है। पात्रों की भीड नहीं

है। व्यग्य भरी भाषा से पात्र एक दूसरे पर तीखे प्रहार करते है। इसमें गान और दर्शन-युक्त सूक्तियों का आयोजन नाटक की मंचीयता को अधिक प्रभावी बनाते है। अतः इस नाटक में निर्देशक के सफल मंचन की पूर्ण संभावनायें परिलक्षित होती है।

उनके नाटक 'नव प्रभात' आरंभ से लेकर अंत तक आवश्यक रंग-निर्देशों से युक्त रचना है।तीन अंकों के इस नाटक में घटनाओं की तेज़ी गति और उत्तेजना प्रारंभिक दृश्यों से ही दृष्टिगोचर होने लगती है। वातावरण और देशकाल की सकारात्मक चित्रण के लिए इसमें पूरा आयोजन किया गया है। प्रत्येक अंक के आरंभ में परिवेश संबन्धी पूरा चित्र उतारा गया है। बारह पात्रों के इस नाटक में मुख्य चरित्र केवल सात हैं। अतः रंगमंचीय प्रस्तुति में पात्रों की भीड जैसे अवरोध उत्पन्न नहीं करती। चरित्र को छोटा-छोटा कार्य कलापों जैसे उठना-बैठना, आना जाना, काँपना,हँसना,गाना आदि के साथ क्रोध, कातरता, व्याकुलता आदि निर्देशों द्वारा इसकी अभिनेयता को सरल बना दिया गया है। ऐतिहासिक नाटक होते हुए भी इसमें 'संकलनत्रय' के बिखराव नहीं है। संपूर्ण नाटक शिविर में घटित होता है। युद्ध, विनाश आदि का प्रस्तुतीकरण पात्रों के मार्मिक संवादों और गायिका रेवा का करुण गान द्वारा होता है। रंगमंच में शिविर की सज्जा के अतिरिक्त अंतिम दृश्य में बंदीगृह का दृश्य है। दृश्य परिवर्तन के द्वारा इसे मंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है। सीमित समय में एक ही स्थान पर नाटक की समस्त गतिविधियाँ संपन्न हो जाती है।

अतः रंगमंच की दृष्टि से 'नव प्रभात' एक सफल रचना है, जिसमें

अभिनेयता का पर्याप्त अवसर है। महानगरों से लेकर छोटे कस्बों तक यह नाटक ग्यारह बार मंचित हो चुका है।

'सत्ता के आर-पार' में आरंभ से लेकर अन्त तक आवश्यक रंग-संकेत की आयोजना हुई है। निर्देशक के अनुरूप अनेक सुझाव और सहयोग इस में स्थापित है। इसका कथानक सत्ता संघर्ष पर आधारित है। यह नाटक तीन अंकों में विभाजित किया गया है। मंच-सज्जा के लिए राजदरबार का आयोजन है जो भरत और बाहुबली केलिए प्रयुक्त किया जा सकता है। अन्तिम दृश्य वीरान स्थान का है जिसे मंच पर प्रतीकात्मक मंच सज्जा के द्वारा साकार किया जा सकता है। धर्मयुद्ध के दृश्य की प्रस्तुति प्रतीकात्मक रूप में सखी के मुख से उद्घाटित करवा कर वास्तविक युद्ध से बचा लिया है। संकलनत्रय के समय और कार्य के निर्वाह भी नाटककार ने कुशलता से किया है। इस नाटक में बीस से अधिक पात्र हैं। इतने पात्रों की भरमार वर्तमान संगमंच की दृष्टि से अवांछनीय है किन्तु नाटक के विषय, काल एवं परिस्थिति के प्रतिकूल नहीं है। इस नायक में भरत और बाहुबली प्रमुख चरित्र है। उसके साथ ही प्रत्येक चरित्र को उसके अनुकूल मंच पर स्थान मिलता है। अतः 'सत्ता के आर-पार' रंगमंच के अनुकूल तत्वों से युक्त रचना है

'गान्धार की भिक्षुणी' नाटक के कथानक से प्राचीनकाल के उस अंतिम दौर की सभ्यता, संस्कृति, और सत्ता की ऐतिहासिक झलक भी मिलती है। तीन अंकों के इस नाटक में 'प्रवेशव' की योजना तत्कालीन परिस्थिति तथा आगामी घटनाओं के संकेत के लिए की गई है। नाटककार ने प्रत्येक दृश्य का

वातावरण रंग-निर्देशों द्वारा स्थापित कर दिया है। इसके साथ-साथ उन्होंने चरित्रों के गुणों, व्यवहारों और हाव-भावों को भी बडी सतर्कता से चित्रित किया है। नेपथ्य से उभरती आवाज़ें वातावरण के प्रभाव को बढाती है। प्रकाश व्यवस्था तथा ध्वानि संयोजन के लिए भी नाटक में पर्याप्त संकेत मिलता है। इसका वातावरण वाकाटक युग के होने के बावजूद भी अधिकतर कार्य खुले वातावरण में होता है। उसका समाधान निर्देशक प्रतीकात्मक मंच सज्जा द्वारा पूर्ण कर सकता है। इस नाटक में प्रवेश करने के क्रम से अठाईस पात्र है। कथानक की प्रभावोत्पादकता के लिए नाटक में स्थान-स्थान अपार भीड और जनसमुदाय से युक्त दृश्य है, जिनके लिए अधिकाधिक पात्रों की अनिवार्यता है। इसमें यशोधर्मन आनंदी, मालवी, वसुमित्र, भारती, मिहिरकुल, हूण सरदार, शहज़ादी आदि प्रमुख है। इनमें मिहिरकुल और शहज़ादी केवल अंतिम अंक में प्रकट होते है।

रंगमंच के अनुकूल इस नाटक में अभिनय के अधिक भावप्रवण दृश्य स्थापित हैं। यह नाटक रंगमंच के साथ आकाशवाणी से भी प्रसारित हो चुका है।

'केरल का क्रान्तिकारी' नाटक अहिन्दी भाषा प्रदेश के ऐतिहासिक चरित्र और स्वाधीनता संग्राम की गतिविधियों से युक्त नाटक है। तीन अंकों में ही कथा-विस्तार को सीमित कर नाटककार ने रंगमंचीय प्रस्तुति के लिए इसे तैयार किया है। अंक योजना मं दृश्य-परिवर्तन के अधिक अवसर उपलब्ध नहीं है। इस में कुल अठारह पात्रों की उपस्थिति मंच पर होती है। नाटक का समय सन् 1857 से पूर्व का समय है। संकलनत्रय की दृष्टि से नाटक की घटना केरल के खुले प्रदेश में संपादित होती है। एक-दो दृश्यों में महल तथा दृर्ग का आयोजन है।

प्रतीकात्मक मंच सज्जा द्वारा रंगमंच में केरल की प्रादेशिक माहौल खडा का सकता है। इसके लिए नाटककार ने निर्देश दिये है। मंच सज्जा और वातावरण के साथ-साथ चरित्रों के मवोभावों की सांकेतिक उपस्थिति नाटक को रंगमंचीय सुविधा से युक्त करती है।

इस प्रकार 'केरल का क्रान्तिकारी' नाटक में कथानक का प्रवाह, चरित्र की प्रस्तुति एवं घटनाओं की गति सब रंगमंच की अनिवार्यताओं के अनुकूल है। रंग निर्देश के कई आयाम नाटक को मंचस्थ होने में सहयोग देते है।

अतः रंगमंच के समूचे तत्वों को घ्यान में रखते हुए ही उन्होने नाटकों की रचना की है।

उपसंहार

उपसंहार

आधुनिक हिन्दी नाट्य साहित्य में विष्णु प्रभाकर बहुमुखी प्रतिभासंपन्न रचनाकार है। वे स्वातंत्र्योत्तर नाट्य साहित्य को अपने सघन सृजन द्वारा समृद्ध करते हैं। उनका नाटकीय योगदान हिन्दी नाट्य साहित्य के लिए सदैव प्रेरणास्पद रहेगा। आज विष्णु प्रभाकर हिन्दी नाट्य जगत के अन्य स्थापित साहित्यकारों में अपना व्यापक नाट्य सृजन के कारण विशिष्ट स्थान और सम्मान अर्जित कर चुके है। अपनी नाट्य रचना के कारण उनकी साहित्यिक ख्याति मात्र हिन्दी प्रदेशों तक सीमित नहीं है बल्कि अहिन्दी देशों तथा अन्य राज्यों तक प्रसारित हो चुकी है।

वे अपने सभी नाटकों में जीवन के विविध पक्षों तथा समस्याओं का चित्रण करते है। मनोविज्ञान के पारखी होने के कारण उन्होंने ऐसे कई नाटक लिखे है जिनमें मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर मानव-मन की विभिन्न ग्रन्थियों का चित्रण किया है। वे अपने मनोवैज्ञानिक नाटकों में प्रायः मानव के ऊपर से पडे हुए कृत्रिम मुखौटे को हटाकर उसके वास्तविक रूप को दिखाने का प्रयास करते है।शुद्ध मानवतावादी लेखक विष्णु प्रभाकर का साहित्य सर्वदेशिक और सर्वकालिक भी है। उनके द्वारा रचित जीवनी 'आवारा मसीहा' उनकी अक्षय कीर्ति का स्तंभ है।

उनका व्यक्तित्व कई मज़बूत स्तंभों पर आधारित है। आर्यसमाज तथा गान्धीवाद ने उनके जीवन की प्रारंभिक नींव बडी मज़बूती से भरी है।उनमें साहित्य के प्रति अनुराग बचपन से ही रहा है। साहित्य के क्षेत्र में आने का कारण उनका परिवेश रहा हैं। वे मूलतः गान्धीवादी तथा आदर्शवादी हैं। शुरू से ही वे गान्धीजी

के भक्त रहे हैं और आज भी गान्धीजी की नीतियों में उनकी अटूट आस्था है। विश्व में युद्ध न हो, व्यक्ति-व्यक्ति में कोई भेद न हो, प्रेम का संसार हो, घृणा का नाश हो, यही गान्धी चाहते थे और यही विष्णु प्रभाकर की भी आकांक्षा है। नैतिक मूल्यों को पहचानने में वे गान्धीवाद से सहायता लेते हैं। यथार्थ और आदर्श दोनों का समन्वय उनकी विशेषता है। इसी विशिष्टता के कारण उनका व्यक्तित्व सबसे पृथक् है। वे स्वभाव से अत्यन्त सज्जन एवं शान्त है।व्यक्ति अथवा साहित्यकार विष्णु प्रभाकर में कोई अन्तर्विरोध नहीं है। विष्णु प्रभाकर हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं पर लेखन कार्य करते रहे हैं। परन्तु हिन्दी साहित्य में उनका विशेष स्थान नाटककार के रूप में ही है। वे सन् 1957 ई. से लेकर नाटक की रचना कर रहे हैं। वे सभी नाटकों में मनुष्य के व्यक्तिगत और समाजगत वैषम्यों का यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं।

नाटककार इतिहास और पुराण से पात्रों को लेकर वर्तमान समस्याओं को उजागर करने की कला में निपुण है। इस कोटि में उनके 'नव प्रभात' 'सत्ता के आर-पार' 'गान्धार की भिक्षुणी', 'केरल का क्रान्तिकारी' आदि नाटक आते है।उनके ऐतिहासिक नाटक पूर्ववर्ती ऐतिहासिक नाट्य परंपरा से भिन्न है। ऐतिहासिक घटनाओं की पुनर्व्याख्या करना उनका उद्देश्य नहीं बल्कि इतिहास के प्रति उनकी जो नज़रिया होती है, उनमें नयापन है। अतीत और वर्तमान को एक ही धरातल पर लाने की कोशिश उन्होंने की है। उनके नाटक में इतिहास का स्वर मौन है; समसामयिकता का स्वर गूँज उठता है।

विष्णु प्रभाकर सदैव नारी स्वातंत्र्य और स्वावलंबी नारी के समर्थक

रहें है। नारी को शिक्षा के महत्व से अवगत कराना उनका लक्ष्य है। क्योंकि शिक्षा के द्वारा ही उसे समाज में गौरव और आत्मसम्मान प्राप्त होता है। 'डाक्टर' नाटक में नारी को आह्वान देते है कि वह समसामयिक स्थितियों में व्यक्तिगत सन्ताप, अपमान और प्रतिशोध से ऊपर उठकर कर्तव्यबोध की स्थापना करे। इस नाटक के द्वारा नाटककार नारी जागरण के उपदेश के साथ उन्हें पुरुषों के समान समाज में उन्नत स्थान प्राप्त करने की आवश्यकता पर भी ज़ोर देते है। एक स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए नारी का स्वावलंबी एवं स्वतंत्र होना आवश्यक है। यह तभी संभव है जब पुरुष के बन्धन से वह मुक्त होती है। उन्होंने अपने नाटकों में ऐसी विषयवस्तु को चुना है जहाँ नारी एक अलग अस्मिता चाहती है। इसके साथ नारी के आदर्श रूप का एक पुराना नुस्खा जो चला आ रहा है उसे भी वे भूल नहीं पाते हैं। वे अपने नाटको में इस बात की ओर संकेत करते है कि नारी पुरुष की दासी नहीं, सहधर्मिणी एवं जीवन-संगिनी हैं। अपने नाटकों में वे नारी मन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोभावों को चित्रित करने का प्रयास करते हैं।

उनके नाटकों में परंपरागत जीवन मूल्यों के विघटन तथा नवीन जीवन मूल्यों के फलस्वरूप उत्पन्न टकराहट की गूँज सुनाई देती है। वे बदलते हुए मूल्य को उसकी समस्त विषमताओं के साथ बडी ईमानदारी से चित्रित करने का प्रयास करते हैं। प्रबूद्ध मानवीय चेतना के साथ-साथ गान्धीवादी चिन्तन की मानवतावादी दृष्टि से प्रभावित होने के कारण उनमें एक ओर वैयक्तिक मूल्यों का चेतन स्वरूप मिलता है तो दूसरी ओर सामाजिक मूल्यों को भी वे प्रश्रय देते हैं। मानवतावाद उनका सबसे बडा मूल्य है। राष्ट्रीय अस्मिता और स्वाभिमान को वे

अपने नाटकों में एक स्वीकृत मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। साम्प्रदायिक सद्भाव एवं मानव-मानव के बीच जाति-पाँति से इतर सहज मानवीय संबन्धों की स्थापना का प्रयास उनके नाटकों का और एक स्वीकृत मूल्य है। विष्णु प्रभाकर नाट्य सृजन में मूल्यों के संदर्भ में दुहरा कार्य करते है। जो पुराना होते हुए भी ग्रहणीय और अच्छा है उन्होंने उसे स्वीकार किया है और जो सड गया है और युग की दृष्टि से संदर्भहीन है उन मूल्यों को निरर्थक माना है। उनकी यह मूल्य परक दृष्टि आधुनिकता की भावना और प्रवृत्ति के पूर्ण अनुकूल है।

नाट्य रचना की सफलता शिल्प-विधान पर निर्भर हैं। विष्णु प्रभाकर ने शिल्पविधान में नये-नये प्रतिमानों को अपनाया है। उन्होंने जिस चरित्र चित्रण प्रणाली को अपनाया है उस प्रणाली ने ही उन्हें एक मनोवैज्ञानिक नाटककार की हैसियत प्रदान की है। उनके पात्र चाहे वह पुरुष हो या नारी, चाहे आदर्शवादी हो या पतित सदैव मानवता की खोज और उसके स्थापन के प्रयास में कर्मशील दृष्टिगोचर होते है। उनके नाटकों के कथोपकथन या संवाद सहज, स्वाभाविक, यथार्थपरक और बोलचाल की भाषा के होने के साथ कहीं भी अश्लील प्रतीत नहीं होते। पात्रों के व्यक्तित्व में स्पष्टता लाने के लिए देशकाल एवं वातावरण का विशेष स्थान है। वे अपने नाटकों में कथ्य के अनुरूप वातावरण का चित्रण करते है। उनका नाट्य साहित्य सदैव उद्देश्ययुक्त रहा है। उनके संपूर्ण नाट्य सृजन का मूलभूत उद्देश्य उदात्त जीवन मूल्यों का अनुसन्धान और जन साधारण के जीवन में उसकी प्रतिष्ठा करते हुए मानवता की स्थापना करती है। रचना के पीछे जो मूल उद्देश्य है उस पर राय अदा करते हुए विष्णु प्रभाकर लिखते हैं- *"जो साहित्य*

मनुष्य को मनुष्य से जोडता है और विराट् मनुष्य के या मनुष्य के परिवेश को समझने की दृष्टि देता है वही मेरे सम्मुख साहित्य का लक्षण रखता है और यही भावना साहित्य रचना का मूल उद्देश्य है। इसके अतिरिक्त मनोरंजन गौण है। ठीक है मनोरंजन हो सकता है परन्तु यह साध्य नहीं, साधन है, साध्य तो वही एक लक्ष्य है।[1]

उनके संपूर्ण नाट्य साहित्य सृजन का मूलभूत उद्देश्य मानवता की स्थापना करना है। यही उनका लेखकीय लक्ष्य है। इसके संबन्ध में विष्णु प्रभाकर का कहना है कि - *" मैं समझता हूँ, उद्देश्य में दंभ की भावना कम नहीं है। फिर भी यदि उद्देश्य जैसी चीज़ मेरे साहित्य में ढूँढना ही हो तो वह उत्कृष्ट मानवता की खोज है। आदर्श मुझे वहीं तक प्रिय है जहाँ तक यथार्थ का संबन्ध है। 'वाद' में आज तक भी विश्वास नहीं कर पाया। मेरे साहित्य में अग्नि नहीं है मात्र सहज संवेदना है।*[2] इसके अतिरिक्त उनके लेखन में दानवत्व से मानवत्व का आविर्भाव तथा मानवत्व के अन्दर देवत्व की स्थापना का भी प्रयास है।

'नव प्रभात' में युद्ध, मार काट और महानाश की नृशंसता से सम्राट् अशोक पर हुए प्रबल आघात का चित्रण करने का उद्देश्य नाटककार के लिए, युद्ध-विभीषिका और उसके दुष्परिणामों को पाठक या दर्शक के सम्मुख प्रस्तुत करना है जिससे वर्तमान तथा भावी पीढी इस महानाश से बचे। सम्राट् अशोक का युद्ध के विनाशकारी परिणामों से हृदय परिवर्तन उनके 'मानव' होने का

1'विष्णु प्रभाकर'-सं-डा० विश्वनाथ मिश्र,डा० कृष्णचन्द्र गुप्त-पृ.सं-309

2'विष्णु प्रभाकर'-सं-डा० विश्वनाथ मिश्र,डा० कृष्णचन्द्र गुप्त-पृ.सं-124

संकेत है। वर्तमान संदर्भ में 'नव प्रभात' के उद्देश्य और महत्ता अपने तत्कालीन समय से कई गुणा अधिक सार्थक हो जाता है। नाटककार का आशावादी मन सम्राट् अशोक के द्वारा यों प्रकट होता है- *"आनेवाले युग के लोग अपने दुःखों और अभावों का नाश शक्ति के प्रयोग से नहीं प्रेम के प्रयोग से किया करेंगे।"*[1]

'सत्ता के आर-पार' में भी विष्णु प्रभाकर की युद्ध विरोधी भावना मुखरित होती है। वे हमेशा यही चाहते है कि देश टुकडे-टुकडे न रहकर एक रहे। वे अच्छी तरह जानते हैं कि हरेक मनुष्य के मन में राजधर्म और मानवधर्म के बीच, अहिंसा और हिंसा के बीच, सेवा और सत्ता के बीच, चयन की बात को लेकर एक चिरन्तन द्वन्द्व मौजूद है। इस दुविधा को उन्होंने 'मनुष्य के अपने ही द्वारा रचे गये शब्दों की कारा' नाम दिया है। ऐसे असमंजस में पडे हुए मानव से उनका सुझाव यही है कि इस कारावास से मुक्त होने के लिए 'मानवता' को अपनाना है।

वे अपने नाटकों में ऐसी भाषा का प्रयोग करते है जो सरल, स्वाभाविक, समसामयिक हो और जिनमें भाव वहन करने की क्षमता हो। रंगमंच के प्रति उनका लगाव बचपन से ही हुआ था। उनके मंचस्थ नाटकों में 'डाक्टर', 'टगर', 'बन्दिनी', 'युगे-युगे क्रान्ति', 'टूटते परिवेश', 'नव प्रभात', 'सत्ता के आर-पार' आदि आते हैं।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि हिन्दी नाट्य साहित्य में कई खेमे के नाटककार है। इन में नाटक के नाम पर मनमाने लिखनेवाले है, कथ्य

1'नव प्रभात'- विष्णु प्रभाकर-पृ.सं-16

और शिल्प की दृष्टि से नये-नये प्रयोगों को तरजीह देनेवाले नाटककार और पुरानी मान्यताओं को पूर्ण रूप से नकारनेवाले नाटककार भी हैं। विष्णु प्रभाकर इन सब से परे है। वे मात्र पुराने प्रतिमानों को न अपनानेवाले है या नये-नये प्रयोगों के पीछे पडनेवाले भी नहीं है, उन्होंने अपना एक अलग मार्ग ही चुन लिया है। मानवीय मूल्यों में अटूट आस्था और मानवता में गहन विश्वास उनकी अपनी विशेषता है। मनुष्य के चरित्र-चित्रण में उनकी लेखनी यथार्थ से जुडी रहती है किन्तु उनमें आदर्श की उन्मुखता है। मानव मन की अतल गहराइयों में प्रवेश कर उसके द्वन्द्व-संघर्ष, घात-प्रतिघात, आनन्द-उत्साह तथा उत्थान-पतन को सहज रूप में उजागर करने में वे निपुण है। वे अपनी रचनाओं में समाज की सभी समस्याओं को न लेकर कुछ इनी-गिनी समस्याओं पर बल देते हैं। नारी चेतना के प्रबल पक्षधर के रूप में उनके साहित्य का मूल स्वर 'नारी मुत्ति' तथा 'नारी शोषण का विरोध' ही है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ ग्रन्थ सूची

मूल ग्रन्थ

1 अब और नहीं - विष्णु प्रभाकर
भारतीय साहित्य प्रकाशन 286 - चाणक्यपुरी, मेरठ
प्र. सं -1981

2 कुहासा और किरण - विष्णु प्रभाकर
भारतीय साहित्य प्रकाशन 286 - चाणक्यपुरी, मेरठ
प्र. सं -1975

3 केरल का क्रान्तिकारी - विष्णु प्रभाकर
किताब घर,24/4866 अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002
प्र.सं-1987

4 गान्धार की भिक्षुणी - विष्णु प्रभाकर
शब्दकार दिल्ली
प्र.सं-1961

5 टगर - विष्णु प्रभाकर
अतुल-आलोक प्रकाशन, नई दिल्ली, कल्पतरु 538 बी नेहरू गली, शाहदरा
प्र.सं 1986

6 टूटते परिवेश विष्णु प्रभाकर
भारतीय साहित्य प्रकाशन
204-ए-वेस्ट एण्ड रोड, मेरठ-1
प्र.सं-1974

7 डाक्टर - विष्णु प्रभाकर
राजपाल एण्ड सन्ज कशमीरी गेट, दिल्ली, प्र.सं - 1961

8 नव प्रभात — विष्णु प्रभाकर, सस्ता साहित्य मण्डल दिल्ली, प्र.सं - 1951

9 बन्दिनी — विष्णु प्रभाकर, राजपाल एण्ड सन्ज़ कश्मीरी गेट. नई दिल्ली, प्र.सं-1979

10. युगे-युगे क्रान्ति- — विष्णु प्रभाकर, राजपाल एण्ड सन्ज़ कश्मीरी गेट, नई दिल्ली-6, प्र.सं-1969

11 विष्णु प्रभाकर के संपूर्ण नाटक भाग-4 — विष्णु प्रभाकर, प्रभात प्रकाशन

12 विष्णु प्रभाकर के संपूर्ण नाटक भाग-5 — चावडी बाज़ार-दिल्ली-6, प्र.स.-1987

13 श्वेत कमल - — विष्णु प्रभाकर, भारतीय साहित्य प्रकाशन मेरठ, प्र.सं-1984

14 सत्ता के आर-पार- — विष्णु प्रभाकर, भारतीय ज्ञानपीठ-बी-45-47, कनाट सर्कस, नई दिल्ली-1, प्र.सं-1981

आलोचनात्मक ग्रन्थ

1 आज का हिन्दी नाटक प्रगति और प्रभाव — डा० दशरथ ओझा, राजपाल एण्ड सन्ज़ कश्मीरी गेट दिल्ली, प्र.स.-1984

2 आधुनिक हिन्दी नाटक	डा० गिरीश रस्तोगी ग्रन्थम, रामबाग कानपुर-12 प्र.सं-1968
3 आधुनिक हिन्दी नाटक	गोविन्द चातक तक्षशिला प्रकाशन 23/4762,अन्सारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली-2 प्र.सं-1982
4 आधुनिक हिन्दी नाटक :एक यात्रा दशक	नरनारायण राय भारती भाषा प्रकाशन, 518/6B, विश्वास नगर शाहदरा, दिल्ली- 32 प्र.सं-1979
5 आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच	डा० लक्ष्मीनारायण लाल साहित्य भवन प्रा०लि के.पी कक्कड रोड, इलाहाबाद प्र.सं-1989
6 आधुनिक हिन्दी नाटकों में खलनायकत्व	डा० त्रिपुरारिशरण श्रीवास्तव अनुपम प्रकाशन पटना-4 प्रं.सं-1981
7 आधुनिक हिन्दी नाटकों में नायक	डा० श्याम शर्म अभिनव प्रकाशन 21. दरियागंज नई दिल्ली-2 प्र.सं-1978
8 आधुनिक हिन्दी नाट्यालोचन नई भूमिका	नरनारायण राय वाणी प्रकाशन, 61-एफ कमलानगर दिल्ली-7
9 आधुनिक हिन्दी नाटकों में नायक एवं नायिका की परिकल्पना	डा० मलखान सिंह सिसौदिया प्रगति प्रकाशन आगरा- 3 प्र.सं-1978
10 आधुनिक हिन्दी नाटक भाषिक और संवादीय संरचना	गोविन्द चातक तक्षशिला प्रकाशन 23/4762-

अन्सारी रोड दरियागंज,
नई दिल्ली-2
प्र.स.1982

11 आधुनिक हिन्दी नाटकों में मध्यवर्गीय चेतना
डा० वीणा गौतम
विजयकुमार शर्मा, संजय प्रकाशन,
अशोक विहार दिल्ली-52
प्र.सं- 1984

12 आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन
डा० गणेशदत्त गौड
प्रकाशचन्द जैसवाल सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा
प्र.सं-1965

13 आधुनिक हिन्दी मराठी नाटक
डा० माधव सोनटक्के
संचयन 124/152 सी गोविन्द नगर,
कानपुर
प्र.सं-1988

14 आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास
बच्चन सिंह
लोकभारतीय प्रकाशन 15.
ए,महात्मागान्धी मार्ग इलाहाबाद
परिवर्धित सं-1986

15 आधुनिक हिन्दी साहित्य मूल्य और मान्यताएँ
सुधाकर पण्डेय
नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23,
दरियागंज, नई दिल्ली
प्र.सं-1979

16 क्या खोया क्या पाया
विष्णु प्रभाक्रर
किताब घर गान्धीनगर- दिल्ली
प्र.सं-1982

17 नाटक चिन्तन:नये संदर्भ
डा० चन्द्र
साहित्य रत्नालय 37/50-गिलिस बाज़ार कानपुर-
प्र.सं-1987

18 नाटक और यथार्थवाद — कमलिनी मेहता
नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी

19 नाटक और रंगमंच — राजकुमार
ओमप्रकाश बेरी, हिन्दी प्रचारक
पुस्तकालय पी.बी.नं.70.सी 21/30
पिशाचमोचन, वाराणसी
प्र.सं-1961

20 नाटक की परख — डा०.एस.पी.खत्री
साहित्य भवन प्रा० लि इलाहाबाद

21 नारी शोषण आईने और आयाम — आशाराणी व्होरा
नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई
दिल्ली-2
प्र.सं-1982

22 भारतीय नारी अस्मिता और अधिकार — आशाराणी व्होरा
नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई
दिल्ली-2
प्र.सं-1982

23 भारतीय नारी दिशा दशा — आशाराणी व्होरा
नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई
दिल्ली-2

24 मेरे साक्षात्क्कार — विष्णु प्रभाकर
किताबघर अन्सारी झेड दरियागंज
प्र.सं 1995

25 विष्णु प्रभाकर — सं-डा० विश्वनाथ मिश्र
डा० कृष्णचन्द्र गुप्त
कुसुम प्रकाशन, आदर्श
कालोनी, मुजफ्फरनगर
प्र.सं-1991

26 विष्णु प्रभाकर-प्रतिनिधि रचनाएँ — सं कमल किशोर गोयल
प्रभात प्रकाशन, चावडी बाजार,

	दिल्ली-6
	प्र.स1988
27 विष्णु प्रभाकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डा० राजलक्ष्मी नायडू
	विकास प्रकाशन 127/145, डब्लू-1
	सकेत नगर, कानपुर-14
	प्र.सं-1991
28 विष्णु प्रभाकर व्यक्ति और साहित्य	सं.डा० महीपसिंह
	अभिव्यंजना 109/48, पंजाबी बाग,
	नई दिल्ली-26
	प्र.सं-1983
29 समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका	डा० रणवीर रांग्रा
	जगतराम एण्ड सन्ज
	प्र.सं-1986
30 समकालीन हिन्दी नाटक चेतना के आयाम	सरला गुप्ता 'भूपेन्द्र'
	पंचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी,
	चौडा रास्ता, जयपुर-302003
	प्र.सं-1987
31 सातवें दशक के हिन्दी नाटकों में राष्ट्रीय भावना	डा० कमलाकुमारी
	विद्या विहार,106/154 गान्धीनगर,
	कानपुर
	प्र.सं-1991
32 समकालीनता वे अतीतोन्मुखी नाटक	डा० रमेश गौतम
	नचिकेता प्रकाशन नई दिल्ली-55
33 समसामयिक नाटकों में खंडित व्यक्तित्व अंकन	डा० टी.आर. पाटील
	राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि 2/38,
	अन्सारी मार्ग, दरियागंज,
	नई दिल्ली-2
	प्र.सं.-1996
34 साहित्य विवेचन	क्षेमचन्द्र सुमन और योगेन्द्रकुमार मल्लिव

रामलाल पुरी, आत्माराम एण्ट सन्ज,
काश्मीरी रोड, दिल्ली
प्र.सं-1952

35 साहित्यिक निबन्ध — राजनाथ शर्मा एम.ए
विनोद पुस्तक मंदिर द्वारा प्रकाशित
20वाँ.सं-1987

36 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक में त्रासद तत्व — डा० मंजुला दास
पराग प्रकाशन 3/114 कर्ण गली
शाहदरा दिल्ली-32
प्र.सं-1988

37 स्वातंत्र्योत्तर युगीन परिप्रेक्ष्य और नुक्कड नाटक : एक मूल्यांकन — डा० मदन मोहन शर्म
बाबू भाई एच शाह पार्श्व प्रकाश्न,
निशापोल, झवेरीवाड रिलीफ रोड
अहमदाबाद-380001
प्र.सं-1992

38 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी और तेलुगु नाटकों में नारी समस्यायें — आर सुमनलता
दिग्दर्शन चरण जैन ऋषभ चरण जैन
एवं सन्तति-4697/5-215 दरियागंज
नई दिल्ली-2
प्र.सं-1988

39 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी नाटक विचारव तत्वा (1950 से 1970 ई.तक) — डा० अवधेश चन्द्र गुप्त
नीरज बुक सेंटर 81, विजय ब्लाक
लक्ष्मी नगर, दिल्ली
प्र.सं-1983

40 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटव समस्याएँ और समाधान — दिनेश चन्द्र वर्मा
अनुभव प्रकाशन, कानपुर
प्र.सं.1987

41 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों का सांस्कृतिक अध्ययन — गजानन सुर्वो
साहित्य रत्नालय 37/50, गिलिस
बाज़ार कानपुर प्र.सं-1987

42 हिन्दी उपन्यास और नारी समस्याएँ	डा० स्वर्णकान्ता तलवार जयभारती प्रकाशन 447 पीली कोठी नई बस्ती कीडगंज इलाहाबाद-211003 प्र.सं.-1993
43 हिन्दी का आधुनिक साहित्य	सत्यकान्त वर्मा गौरी शंकर वर्मा, मैनेज़र भारती साहित्य मन्दिर दिल्ली प्र.सं-1962
44 हिन्दी एकांकी और एकांकीकार	डा० रमासूद अन्नपूर्ण प्रकाशन 127/1100 डब्लू-1 साकेत नगर कानपुर प्र.सं-1981
45 हिन्दी एकांकी तत्व, विकास प्रमुख एकांकीकार	प्रो० रामचरण महेन्द्र सरस्वती प्रकाशन मंदिर मोती कठरा, आगरा
46 हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व	धनंजय रचना प्रकाशन इलाहाबाद प्र.सं- 1970
47 हिन्दी के पौराणिक नाटव	डा० बा० ए. जोशी सरस्वती प्रकाशन 128/106 जी, किदवर्ग नगर कानपुर प्र.सं 1991
48 हिन्दी के पौराणिक नाटकों के मूल स्त्रोत	शशिप्रभा शास्त्री राजकमल प्रकाशन प्रा०.लि. 8 फैज. बाजार दिल्ली-6 प्र.सं-1973
49 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास	दशरथ ओझा हिन्दी अनुसन्धान परिषद् दिल्ली विश्व विद्यालय के तत्वावधान में

	प्रकाशित
50 हिन्दी नाटक : पूनर्मूल्यांकन	डा० सत्येन्द्र तनेजा ग्रन्थम, रामबाग कानपुर-12 प्र.सं-1971
51 हिन्दी नाटक मूल्यचिन्तन और रंगदृष्टि	डा० ओमप्रकाश सारस्वत शाश्वत प्रकाशन 5452, शिव मार्किट न्यू चन्द्रावल जवाहर नगर, दिल्ली-7 प्र.सं-1997
52 हिन्दी नाटक : सिद्वान्त और विवेचन	सं महेन्द्र साहित्य रत्न भंडार साहित्य कुंज आगरा-2 प्र.सं.-1967
53 हिन्दी नाटक की भूमिका मध्यवर्ग के संदर्भ में	डा० मूलचन्द्र गौतम जागृति प्रकाशन अचल मार्ग अलीगढ- 202001 प्र.सं-1982
54 हिन्दी नाटकों की शिल्पपिधि	गिरिजा सिंह लोकभारती प्रकाशन 15-ए-महात्मा गान्धी मार्ग इलाहाबाद प्र.सं-1970
55हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास	डा० शान्ति मलिक नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23 दरियागंज, दिल्ली-6 प्र.सं 1971
56 हिन्दी नाटकों में पात्र कल्पना और चरित्र-चित्रण	सूरजकान्त शर्मा एस.ई.एस बुक कंपनी 2153/2, चाह इंदारा फव्वारा, दिल्ली-6 प्र.सं 1973
57 हिन्दी समस्या नाटक	डा० मान्धाता ओझा नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2/35,

अनसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली
प्र.सं-1968

पत्र-पत्रिकाएँ

1 आज कल	सितंबर 1982 अंक-5
2 आज कल	सितंबर 1984 अक-5
3 आज कल	जूलाई 1986 अक-3
4 आज कल	सितंबर 1989
5 ज्योत्स्ना	जून 1986 अंक-6
6 नटरंग	अप्रैल- सितंबर 1969
7 युगस्पन्दन	
8 मधुमती	जून 1995
9 संचेतना	
10 साहित्यमण्डल पत्रिका	जनवरी-मार्च -1996
11 साहित्यमण्डल पत्रिका	अप्रैल-मई 1996
12 हिन्दी प्रचार समाचार	